सस्ता-साहित्य-मण्डल

चौथा ग्रन्थ

—

भारत में

व्यसन और व्यभिचार

[शैतान की लकड़ी]

लेखक
बैजनाथ महोदय बी० ए०

प्रकाशक
सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर

मूल्य चौदह आना

प्रस्तावना

कवि-कल्पना आकाश में विहार करती है। वह मनुष्य को अपने साथ लेकर गगन-मण्डल के ज्योतिर्मय प्रदेशों की सैर कराती है। एक से एक भव्य वस्तुएं दिखाई देती है। उन्हें देख कर मनुष्य का चित्त प्रसन्न होता है, हृदय फूल जाता है और आँखें उत्फुल्ल कमल की भाँति खिल जाती हैं। ऐसे रमणीय प्रांत को छोड़कर मुझे आज यह क्या सूझा है, जो मैं पाठकों को शराब, अफीम, तम्बाकू आदि की दुर्गन्ध तथा व्यभिचार की गन्दगी के दृश्य दिखाने के लिए उद्यत हो रहा हूँ?

स्वयं मुझे भी इस बात का पहले ख़याल तक नहीं था कि मैं इस विषय पर कभी क़लम उठाऊँगा। परन्तु भरतपुर के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से लौटते समय पंजाब के एक संन्यासी बाबा का मेरा साथ हो गया। वे साहित्य के बड़े प्रेमी हैं। चुपचाप कुछ समाज-सेवा भी करते रहते हैं। ट्रेन में हम लोग भिन्न-भिन्न विषयों पर बात-चीत करते आ रहे थे कि इतने में एक मुसाफ़िर ने बीड़ी सुलगाई और हमारी बात-चीत का रुख इन व्यसनों की बुराई की तरफ़ पलटा। उसका फल यह हुआ कि मैं लद गया। स्वामी केशवानन्दजी ने (यह उनका नाम था) मुझ से यह वचन ले लिया कि मैं इस विषय पर एक पुस्तक लिखूँ।

वचन देकर उसे निबाहने के लिए एक प्रकार की दृढ़ता और उत्कटता की आवश्यकता होती है। मैं जानता था कि मेरे अन्दर ये गुण यथेष्ट मात्रा में नहीं हैं। इसलिए मैंने वचन बहुत हिचकिचाहट के साथ दिया। किन्तु उन संन्यासी मित्र के आग्रह ने मेरी शिथिलता के दोष की पूर्ति कर दी और बार-बार तकाजा करके उन्होंने आखिर मुझ से वादा पूरा करा ही लिया।

पुस्तक-लेखन का काम अपने हाथ में लेने तक मुझे पता नहीं था कि ये बुराइयाँ, जिनकी ओर हम उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, समाज में किस हद तक फैली हुई हैं। पर ज्यों-ज्यों मैं इस विषय का अध्ययन करता गया, त्यों त्यों उनकी भयंकरता और उनके भीषण प्रचार का असली रूप मेरी समझ में आता गया। जो बात समाज के जीवन पर ही कुठाराघात कर रही है क्या जन-समाज को उसका ज्ञान होना परम आवश्यक नहीं है? वह गन्दी-सी बात भी हुई तो क्या? शरीर के आरोग्य की दृष्टि से उसके गन्दे से गन्दे भागों का भी वही महत्व है जो कि आँख, दाँत या मुख का है। किसी शहर के आरोग्य के लिए यह परम आवश्यक है कि उसके निवासी स्वच्छता का महत्व समझ लें। उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य के लिए भी यह परम आवश्यक है कि वह अपने खान-पान की वस्तुओं के गुण-दोष

जान ले। कम से कम ऐसी चीजों के गुण-धर्म तो अवश्य ही जान ले, जिनसे उसके शरीर को हानि पहुँचने की आशंका है।

शराब और अफीम के विषय मे भारत-सरकार के शासन विवरणात्मक India in-, 26-27 नामक पुस्तक में श्री कोटमन लिखते है—पश्चिमी देशों में जिसे शराब-खोरी की बुराई कहते हैं वह भारत के कुछ हिस्सों को छोड़कर—जहां कल-कारखानों की अधिकता है—कहीं नहीं दिखाई देती।

शराब-खोरी जिस परिमाण में भारत में फैली हुई है, उसका कुछ वर्णन हमने शराबवाले अध्याय में किया है। उसमें भी हमारा आधार तो सरकारी अंक ही हैं। पश्चिमी देशों की तुलना में वह चाहे कितना ही कम हो परन्तु भारत की दरिद्रता, जल-वायु और नीतिशीलता को देखते हुए तो वह बहुत अधिक है। श्री भारतभक्त ऐण्ड्रयूज लिखते हैं-"जब से मै सन् १९०९ के मार्च मे पहले-पहल बम्बई आया, मै बराबर देख रहा हूँ, लगभग सारे देश मे मादकता बढ़ती जा रही है। जब मैं पहली बार बाहर निकला तो मैंने अपनी एक किताब में लिखा था कि 'मैंने भारत मे कभी किसी हिन्दुस्तानी शराबी को सड़क पर पड़ा हुआ नहीं पाया।' मुझे खेद है कि यही बात मैं आज नहीं लिख सकता। मैंने देखा है कि पेरम्बर में और मद्रास के मजदूरो मे मादकता खूब पैर फैला चुकी है। बम्बई में भी शराबियों के दर्शन,

होना कोई असाधारण बात नहीं रही है। कलकत्ते में भी मैंने शराबियों को देखा है। यही नहीं, इस दर्दनाक दृश्य को मैंने दूर देहात् में भी देखा है। इससे भी अधिक दुःख मुझे भारतीय स्त्रियों को पी हुई हालत में देखकर हुआ है।"

अफीम के विषय में श्रीयुत कोटमन लिखते हैं "भारत के अधिकांश भागों में अफीम के रोग का (Opium evil) पता भी नहीं है। केवल बर्मा और आसाम में अफीम पीने की बुराई कुछ अधिक हद तक बढ़ी हुई है"। क्या हम श्रीयुत कोटमन से पूछें कि वे इस प्रश्न की तुलना पश्चिमी देशों के साथ क्यों नही करते! अफीम के प्रचार के विषय में भी हम अफीम के अध्याय में लिख चुके हैं।

श्रीयुत कोटमन लिखते हैं कि पिछले दस वर्षों में (अर्थात् १९१६–१७ से लेकर १९२६–२७ तक अफीम की खेती ७३ फी सैकड़ा घटा दी गई है। देशी राज्यों से १९२४–२५ में ११४०० मन अफीम खरीदी गई थी। पर १९२५-२६ में६५०० मन ही ली गई। और भी अफीम की खेती कम करने की कोशिशें हो रही हैं। सन् १९२६ की जनवरी से अजमेर-मेरवाड़ा में अफीम की खेती रोक दी गई है।

सरकार के कथनानुसार वह Minimum Consumption, maximum Revenue के सिद्धान्त से काम ले रही है। परन्तु

उसकी असली नीति का पता तो मादक द्रव्यों की दूकानो पर पहरा देनेवाले स्वयं-सेवकों की गिरफ्तारियो से ही जनता को लग गया।

भांग-गांजा वग़ैरा के विषय में सरकार की यही नीति है।

एक विदेशी सरकार अपनी प्रतिष्ठा का ख़याल रखते हुए जितनी लापरवाह रह सकती है, हमारे शासक इन मामलों मे उतनी लापरवाही बराबर दिखा रहे हैं।

शराब, अफीम और गांजा ऐसी चीजें हैं, जिन्हे सरकार भी बुरा समझती है। परन्तु चाय-तम्बाकू के विषय में तो बिलकुल जुदी बात है। इन्हे यद्यपि हम चाहे कितना ही बुरा समझें, चूंकि सरकार उनकी खेती वग़ैरा मे कोई बुराई नही देखती, उनकी बंदी अभी कल्पना के बाहर की बात है। व्यभिचार की बुराई की तरफ तो शायद सरकार का ध्यान भी नहीं गया है।

इस तरह जब हम इन बुराइयों के प्रचार को और सरकार की नीति को देखते है तो हमें मजबूरन सरकार से निराश होना पड़ता है।

पर हमारा आधार हमारे प्रयत्न है। शीघ्र ही शासन की बागडोर इस सरकार के हाथों से हमारे हाथों मे निश्चय रूप से आनेवाली है। इसलिए हमें समाज-सुधार के काम को स्वावलम्बन के सिद्धान्त के अनुसार अभी से शुरू कर देना चाहिए।

आज शराब, अफीम आदि नशीली चीजों पर देश का डेढ अरब से अधिक रुपया बरबाद हो रहा है। व्यसनों का शिकार बन जाने पर अन्य तरह से द्रव्य और स्वास्थ्य का जो नाश होता है सो तो अलग। इस सारे विनाश का हिसाब लगाना असम्भव है। अपने देश से इन बुराइयो को हम दूर कर सकें तो कम से कम १,५०,००,००,००० रुपये के घर बैठे लाभ के अतिरिक्त हमारे देश का असीम उत्साह, शक्ति और बुद्धि का बचाव हो कर दूसरे क्षेत्रों में उनका उपयोग हो सकेगा। लाखों एकड़ जमीन जो इन चीजो की पैदावार मे लगी हुई है, वह अनाज वगैरा उत्पन्न करने के काम मे आ सकेगी। और देश समृद्ध हो सकेगा।

पर यह सब युवकों के किये हो सकता है। क्या हमारे युवक भाई देश की इस आशा की पूर्ति करेंगे ?

वैजनाथ महोदय

दूसरे संस्करण की प्रस्तावना

इस पुस्तक का दूसरा संस्करण निकालने मे जो देरी हुई है उसके बारे मे पाठकों से क्षमा चाहता हूँ। मण्डल के बार-बार तक़ाज़ा करने पर भी मैं संशोधन करके पुस्तक शीघ्र न दे सका। इसका कारण था सत्याग्रह युद्ध। अब की बार जेल से छूटने पर कुछ समय निकालकर मैं यह दूसरा संस्करण प्रेस मे भेज रहा हूँ।

मैंने कई स्थानों पर परिवर्तन परिवर्धन किया है। पुस्तक का अधिकांश भाग, रचना, प्रतिपादन वग़ैरा ज्यो का त्यो है। १९३२ तक के अंक बराबर आगये है। 'बुराई का अन्त कैसे हो' वाला अध्याय निकालकर उसके स्थान पर 'भारत में विदेशी शराबों' वाला अध्याय रख दिया है।

व्यभिचार वाले भाग को दूसरी बार नये ढंग से लिखने का मोह कई बार हुआ। पर मैंने उसे ज्यों का त्यों रहने दिया है। उसको दूसरी बार लिखने मे पुस्तक के बहुत बढ़ जाने का भय था। इस विषय पर इन दिनों बहुत-सी पुस्तकें प्रकाशित हुई है। अँग्रेजी साहित्य में तो काम-शास्त्र सम्बन्धी साहित्य की मानों बाढ़-सी आई है। परन्तु मुझे दुःख है उनका वाचन मनुष्य को निर्विकार और संयमी बनाने में सहायक नही होगा। प्राचीन ग्रन्थों मे वात्स्यान के कामसूत्र का स्थान बहुत ऊँचा समझा जाता है। मैंने उसका एक अनुवाद पढ़ा। पर मुझे उससे भी इस विषय में बड़ी निराशा हुई। और मुझे निश्चय है कि संयम मार्ग के प्रत्येक पथिक को होगी। उसने तो मानो विलास और व्यभिचार का रास्ता खुला कर दिया है।

सन्तति नियमन-सम्बन्धी कृत्रिम साधनो का प्रचार पहले की बजाय अब कहीं अधिक हो गया है। पर मेरा अब भी यही ख़याल है कि हमारे राष्ट्र को इस वस्तु से लाभ के बजाय हानि ही अधिक होगी।

वै० म०

व्यभिचार

परिशिष्ट

भारत में

व्यसन और व्यभिचार

व्यसन

१. शराब
२. अफ़ीम
३. तम्बाकू
४. चाय-काफ़ी
५. भाँग-गाँजा इत्यादि
६. कोकेन

शराब

१. शराब अथवा- मद्य

२. सीधे सर्वनाश की ओर

३. भारत शैतान के पंजे में

४. भारत में विदेशी शराब

"माइ लार्ड्स्, ऐशोआराम की चीजों पर कर लगाया जा सकता है पर दुर्गुणों की तो पूरी रोक होनी चाहिए—चाहे कानून की पाबन्दी में कितनी ही कठिनाइयाँ आवें। क्या आप प्रभु ईसा की आज्ञाओं के भंग पर कोई कर लगा सकते हैं? क्या ऐसा करना दुष्टतापूर्ण और निन्दनीय नहीं होगा? क्योंकि इसके तो मानी होंगे जो कर अदा करे शौक से प्रभु की आज्ञाओं का मनमाना भंग करे। (आमदनी के लिए शराब की दूकानों पर कर लगाने की सिफारिश करनेवाला) यह प्रस्ताव उन शर्तों को उपस्थित करता है जिनका पालन करने पर लोग आइन्दा मनमाना व्यभिचार और फ़साद कर सकते हैं जिनके लिए क़ानून का आम परवाना होगा और न्यायाधीश लोग जिन्हें चुपचाप देखते रहेंगे। क्योंकि इसमें कोई शक नहीं कि शासक, जिन्हें कि शराब से इतनी भारी आय होगी, अपने अधिकारियों को शराब की बिक्री बढाने में उनकी मदद करने की प्रेरणा बराबर करते रहेंगे।

"जब मैं इस प्रस्ताव के असली उद्देश्य पर विचार करता हूँ तो मुझे साफ-साफ नजर आता है कि इसका सिवा बीमारियों के बढने, उद्यम के दबने और मनुष्य-जाति के सर्वनाश के और कोई नतीजा न होगा। मैं इसे एक महाभयकर यंत्र समझता हूँ जिसके द्वारा जो लोग मरते-मरते बचेंगे हरतरह से निकम्मे हो जायँगे और जिनके दिमाग़ तन्दुरुस्त हालत में बचेंगे उनकी और इन्द्रियाँ निकम्मी हो जायँगी।"

—लार्ड चेस्टरफील्ड

[१]

शराब अथवा मद्य

शराब आजकल की वस्तु नहीं है, युगों से प्रत्येक देश के लोग किसी न किसी प्रकार का मद्य पान करते ही आये हैं। उसकी मादकता आरम्भ में गुण समझी जाती थी। पर ज्यों-ज्यों मानव-जाति का विकास होने लगा, उसके बुरे-विषैले परिणाम से मनुष्य-जाति परिचित हो गई। प्रत्येक धर्म के आदि-ग्रन्थो में हमे इसके विषय में निषेधात्मक वाक्य मिलते है। वेद, कुरान, मनुस्मृति, धम्मपद आदि सब इसका तीव्र स्वर से निषेध करते आये हैं। फिर भी मानव-जाति इससे अभी तक अपना पिंड नही छुड़ा पाई। समाजशास्त्र के विशेषज्ञ कहते हैं कि कई जातियाँ शराब के व्यसन की शिकार होकर इस पृथ्वी-तल से सदा के लिए मिट गईं। न जाने कितने साम्राज्य इस विष के शिकार हुए हैं ? शराब पीते ही कर्तव्या-कर्तव्य का ज्ञान चला जाता है। भारतीय इतिहास में यादव-साम्राज्य के विनाश का इतिहास, जो खून के अक्षरों में अंकित है, इसी का कुपरिणाम है। रावण जैसे महान शक्ति-शाली और बुद्धिमान राजा की बुद्धि को नष्ट करने तथा उसे पतन की ओर ले जाने का दोष शूर्पनखा को नहीं, यदि शराब ही को दिया जाय तो शायद अनुचित न होगा। कम से कम हमें तो उस प्रबल राक्षस-जाति के पराजय का मूल कारण यही प्रतीत होता है। हम राम-रावण युद्ध का हाल

पढ़ते हैं। राक्षस हमें मदान्ध शराबियों के से लड़खड़ाते हुए, बुद्धिशून्य होकर लड़ते दिखाई देते हैं। रामायण में आद्य-कवि उस राक्षसी सभ्यता का चित्र हूबहू हमारे सामने खड़ा कर देते हैं। आर्य हनूमान के साथ-साथ जब वे हमें लंका और रावण के अन्तःपुर की सैर कराते है, तभी भीतर से अंतरात्मा कह देती है कि इस मदान्ध जाति की अमानुष शक्ति भी मनुष्य किन्तु सतत जागृत रहनेवाले श्रीराम के सामने नहीं टिक पायेगी। हम हिन्दू-साम्राज्य के वैभव-काल का अथवा मुसलमान-साम्राज्य का विहगावलोकन करते हैं तो दोनों की सुरा-वृत्ति में हमे इनके पतन के बीज दिखाई देते हैं। राजपूतों के समान शौर्यशाली जाति पृथ्वी-तल पर और कहाँ होगी ? पर वह भी मदिरा की गुलाम ही थी। मध्यकालीन काव्य-ग्रन्थो मे हमे मदिरा के असीम प्रचार के सबूत दिखाई देते है। राज-पुरुषो के लिए मदिरा एक अनिवार्य वस्तु-सी थी। बिना मदिरा के जीवन अधूरा समझ जाता और विषय-विलास का मजा किरकिरा हो जाता था। भारतीय हिन्दुओ और मुसलमानों ने देवी मदिरा के प्याले पर भारतीय स्वाधीनता को यों न्यौछावर करके विदेशियो के हाथों में सौंप दिया, जैसे युवतियां नव-वधूवरो पर से तीन पाई न्यौछावर करके नाई या ढोल बजानेवाले को दे देती हैं और कहती हैं "भला हुआ मेरे भैया के सिर की बला टली।" हमारा दुर्भाग्य !

परन्तु लक्षणों से तो अब ऐसा जान पड़ता है कि विज्ञान के प्रखर प्रकाश में यहाँ शराब की अधिक दिनों तक दाल न गलेगी। वैज्ञानिक खोजों से पाया गया है कि शराब मे 'अल-कोहल' नामक एक महाभयंकर विष होता है। . . . . . .

शराब का विष×

शुद्ध अलकोहल एक जलने योग्य रासायनिक द्रव है, जो शक्करदार पदार्थों के सड़ने पर उनमें उत्पन्न हो जाता है। ज्ञात होता है कि सामाजिक कार्यों के अवसर पर अभ्यागतों का किसी खाद्य-पेय द्वारा स्वागत करने की प्रथा मानव-जाति में अनादि काल से चली आई है। ये पेय भिन्न-भिन्न फल, नाज और फूलों से बनाये जाते—मसलन् अंगूर, जौ, गेहूँ, मक्का, महुए के फूल इत्यादि से। मनुष्य स्वभावतः आरामतलब है। उसने सोचा हरबार इन पेयों को कौन तैयार करे? त्यौहार पर अभ्यागतों के लिए तरह-तरह के पेय एकदम बनाकर ही क्यों न रख ले? और यही होने भी लगा। पर इस प्रथा के कारण पेय की ताजगी मारी गई। वह सड़ने लगा और उसमें वही अलकोहल नामक विष उत्पन्न होने लगा। परन्तु अलकोहल तो मादक होता है। ज्यों-ज्यो मनुष्य इस पेय को पीता, कुछ दुर्गन्ध भी आती, पर साथ ही एक अजीब प्रकार का आनन्द भी उसे मिलने लगा। फिर क्या था? धड़ाधड़ इसका प्रचार होने लगा। सभी यों पेय बना-बनाकर रखने लग गये। यही शराब का प्राथमिक स्वरूप था। इसके बाद तो इसी प्रथा के अनुसार लोग कई

×संसार में जितने भी मादक द्रव्य है शरीर पर उनकी क्रिया प्रायः एक-सी है। अतः हम पाठकों से अनुरोध करते है कि वे इस अध्याय को ध्यान-पूर्वक समझ लें। पुनरुक्ति-दोष से बचने के लिए हम इस बात को यहाँ ज़रा विस्तारपूर्वक लिख देते है कि शरीर पर शराब के विष का परिणाम कैसे होता है? वही क्रिया न्यूनाधिक परिमाण में अन्य विषों की भी होती है।

प्रकार के सुगंधित और स्वादिष्ट द्रव्य उसमें डालकर बाक़ायदा शराब बनाने लग गये। शराब की मादकता ने इसके भक्तों की संख्या एकदम बढ़ा दी, और शराब के बनाने तथा उसका व्यापार करने वालों का समाज में एक भिन्न वर्ग ही खड़ा हो गया, जो शराब को बड़े पैमाने पर तैयार करने लग गया। मनुष्य की सुख-लालसा ने एक महान् राक्षस को जन्म दे दिया जिसने शीघ्र ही त्रैलोक्य पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। इस पेय को और भी आनन्ददायक बनाने के लिए मनुष्य ने उसका अर्क़ निकाल (डिस्टिल) करके उसके अन्दर अलकोहल का प्रमाण बढ़ाने की तरकीब ढूँढ निकाली। × आज-कल भिन्न-भिन्न प्रकार की स्पिरिट शराबें इसी तरकीब से बनाई जाती है।

वैज्ञानिक जाँच और उसका परिणाम

इधर कई वर्षों से पश्चिमी संसार में शराब-सम्बन्धी खोजों ने बड़ी खलबली मचा दी है। सैकड़ों डाक्टरो ने इस

× जैसा कि ऊपर बताया गया है, अल्कोहल पानी का-सा पतला पदार्थ होता है। ७८ डिग्री (सेन्टिग्रेड) गरम करनेपर वह भाफ बन जाता है। पानी में १०० डिग्री पर उबाल आता है। इसलिए अगर ऐसे मिश्रण को गरम किया जाय कि जिसमें पानी और अल्कोहल दोनों मिले हुए हैं, तो उसका पानी उबलने के पहले ही अलकोहल भाफ बनकर उड़ जायगा। इस तरह अगर सावधानी के साथ एक नली में से इस भाफ को लेजाकर अलग ठंडा कर दें तो शुद्ध अल्कोहल हमें मिल सकता है। शुद्ध अल्कोहल को अलग करने की इस क्रिया का नाम डिस्टिलेशन है।

सड़ाकर बनी हुई शराब से अल्कोहल इसी तरह अलग निकाल लिया जाता है। और शुद्ध अलकोहल मे ज़रूरत के मुआफिक़ थोड़ा या ज़्यादा पानी डालकर तेज़ या हलकी शराब बना ली जाती है।

बात को स्वीकार किया है कि अलकोहल मनुष्य के लिए ही नहीं बल्कि जीव-मात्र के लिए घातक विष है। फिलाडेल्फिया के डॉ० बेंजामिन रश ने अपने एक पत्रक द्वारा इस विषय पर पहले-पहल वैज्ञानिक ढंग से प्रकाश डाला। (१७८३) डॉ० रश रसायन-शास्त्र के प्रोफेसर, अमेरिका की कमिटी ऑव इण्डिपेण्डेस के चेयरमैन, तथा रेवोल्यूशनरी वॉर के मिलिटरी डिपार्टमेण्ट में सर्जन-जनरल थे। वे अपने 'मानव-शरीर पर शराब के दुष्परिणाम' नामक ग्रन्थ मे लिखते है "खींचकर निकाली हुई शरावें मनुष्य के लिए बड़ी घातक हैं।" दुर्भाग्य-वश उन्होने मामूली (फरमेण्टेड) शराबो के विषय मे कुछ नही लिखा, जिनमें भी अलकोहल काफ़ी परिमाण मे होता है। बल्कि उन्होंने तो शराब का "संयम-पूर्वक" सेवन करने तक की सलाह दे डाली है। इसके बाद स्वीडन के डॉ० मगनस हस ने इस विषय पर और भी प्रकाश डाला। उन्होंने अपने ग्रंथ में 'आधुनिक शराब-खोरी' को बहुत हानिकर बताया है और प्रमाणों द्वारा अपने कथन की पुष्टि की है। पचीस वर्ष बाद लंदन के डॉ० बेंजामिन वार्ड रिचर्डसन ने अपने अनेक वर्षों के प्रयोग के बाद यह सिद्ध कर दिया कि अलकोहल उत्तेजक पेय नहीं, बल्कि जीवाणुओं को मारकर शरीर को सुन्न बना देने वाला विष है। उसे जिस किसी रूप और मात्रा मे लिया जायगा, शरीर पर उसका असर विष की तरह घातक ही होगा। इन प्रयोगों के पूर्ण होते ही डॉ० रिचर्डसन ने हमेशा के लिए शराब छोड़ दी। पश्चिम में शराब-बन्दी की हलचल के वे प्रवर्तक समझे जाते हैं।

डॉ० रिचर्डसन के आविष्कारों ने शराब के इतिहास में सचमुच युगान्तर उपस्थित कर दिया। अमेरिका में डॉक्टर नेविस ने इस आविष्कार का खूब प्रचार किया। फल यह हुआ कि सन १९१५ में 'दि ग्रेट कमिटी ऑन दि अमेरिकन फार्मोकोपिया' ने दवाओं की फेहरिस्त से शराब का नाम ही उड़ा दिया। इसके तीन ही साल बाद सन् १९१८ के जून मास में 'नेशनल कन्वेन्शन ऑव दि अमेरिकन मेडिकल असोसिएशन' के 'अध्यक्ष ने समस्त डॉक्टरों से जोरो से अपील की कि वे शराब-बन्दी के आन्दोलन में शरीक हो जायँ, क्योंकि जन-साधारण के स्वास्थ्य-सुधार का यही एक महत्त्वपूर्ण उपाय है।

इसके साथ ही संसार के डॉक्टरो मे एक महान् हलचल हो गई। संसार के तमाम बड़े-बड़े डॉक्टरो ने पृथक्-पृथक् प्रयोग करके शराब की बुराइयो की जांच शुरू कर दी। और सब के सब इसी नतीजे पर पहुँचे कि शराब का विष (अलकोहल) क्षय, न्यूमोनिया, विषम ज्वर, विषूचिका, लू तथा पेट, जिगर, गुर्दा, हृदय, रक्तवाहिनियाँ, स्नायु, तथा मस्तिष्क के कई प्रकार के रोगों का जनक और पोषक है। इन प्रयोगो के कर्त्ता तथा संशोधक डॉक्टरो की नामावली यहाँ देना व्यर्थ है। क्योकि अब यह बात संसार के सभी लोग मानने लग गये हैं। परन्तु उनमें से मुख्य-मुख्य डॉक्टरो के नाम इस प्रकार हैं:—अमेरिका के डॉक्टर क्रॉदर्स, डॉक्टर वेल्क, और डॉ० चिटेण्डन; ग्रेट-ब्रिटेन के डॉ० मूरहेड, डॉ० होर्सली डॉ० वुडहेड; फ्रान्स के डॉ० बर्टिलेन, डॉ० बोडेरान, ग्रॉरडेल, और डॉ० मॅगनन् के अतिरिक्त विएना के डॉ० विचसेलडम, स्टॉकहोम के डॉ० हेन्सचेन, प्रशिया के

डॉ० गॅटस्टेट और स्विट्जरलैंड के डॉ० फॉरेल ।

परन्तु अलकोहल की पूरी-पूरी बुराइयाँ तो पश्चिम मे तब जाहिर हुईं जब श्रमजीवियो की योग्यता अर्थात् काम करने की शक्ति को जॉचने की ज़रूरत पैदा हुई । और इस क्षेत्र मे वैज्ञानिक खोजो ने जो महत्वपूर्ण काम किया है, वह शायद ही और कही किया हो । हर जगह श्रमजीवी की अयोग्यता का मुख्य कारण शराबखोरी ही पाया गया । यह जॉच इतनी संपूर्ण और चौका देनेवाली है कि अब तो पश्चिमी संसार की फ़ौजें, नौ-सेनाऍ, रेलवे तथा अन्य समस्त संस्थाऍ इसी नतीजे पर जा पहुँची है कि अपने-अपने विभाग मे शराब की पूरी बन्दी कर दी जाय । युरोप के तमाम राष्ट्र अब इसी कोशिश में हैं कि जितनी जल्दी हो सके देश को इस शराब-रूपी मोहक विष के पंजे से छुड़ा दिया जाय । विज्ञान डंके की चोट कह रहा है कि शराबखोर राष्ट्रों के सामने केवल दो मार्ग खुले हैं । यदि उन्हे भावी कल्याण की आशा और इच्छा है तो वे शराब को एक-बारगी छोड़ दे, और अपने आपको तथा राष्ट्र को इस अवश्य-म्भावी विनाश से बचा लें । अन्यथा सर्वनाश उन्हे तथा उनके राष्ट्र को ग्रसने के लिए मुँह बाये खड़ा ही है । यदि वे शराब को नहीं छोड़ेंगे तो भूतकालीन साम्राज्यों तथा महान् जातियो के समान वे भी इस पृथ्वीतल से मिट जावेगे ।

शरीर एक सुन्दर राष्ट्र है

प्रकृति मनुष्य की माता और गुरु भी है । आजतक मनुष्य ने जितने आविष्कार किये हैं, सब उसके रहस्यो का

उद्घाटन-मात्र हैं। और अभी उसके गर्भ में ऐसे अनन्त रहस्य हैं जो मनुष्य से छिपे हुए हैं। दूर जाने की जरूरत नहीं। हमारा शरीर ही एक ऐसी आश्चर्यमय वस्तु है कि अभी तक इतने आविष्कारों और खोज-भाल के बाद भी मनुष्य अपने शारीरिक रहस्यों का एक हिस्सा-मात्र ही समझ पाया है। शरीर-शास्त्र के किसी अंगरेज लेखक ने इसे 'ईश्वर का जीवित मन्दिर' (The Living Temple of God) कहा है। यदि मनुष्य इसकी रचना, इसका कार्य और रहस्य समझ ले, तो उसे परमात्मा को अलग खोजने की जरूत ही न रहे। उसकी कृति का, अस्तित्व का यह एक सादा और सुन्दर नमूना है।

हमारा यह छोटा-सा शरीर एक सुसंगठित सुन्दर राष्ट्र है। ऐसा सभ्य, सुव्यवस्थित और सुशासित कि यहाँ की-सी व्यवस्था मनुष्य के बनाये किसी भी राष्ट्र में मिलना असंभव है। यों देखने से हमे शरीर एक संपूर्ण वस्तु-सा मालूम होता है, किन्तु यह असंख्य सूक्ष्म जीवाणुओ से बना हुआ है। वे उसके नागरिक है। एक राष्ट्र मे कई प्रकार के नागरिक होते हैं, और वे भिन्न-भिन्न प्रकार के काम करते हैं, उसी प्रकार इस शरीर के अन्दर भी कई प्रकार के जीवाणु अपने राष्ट्र के शासन-संचालन में लगे हुए हैं। अपने काम को छोड़कर उन्हे न तो बाहरी बातो की ओर ध्यान देने को अवकाश है और न वे कभी इसकी इच्छा ही करते हैं। उनके लिए तो स्व-कर्तव्य ही जीवन है। जीवन कर्तव्य है, और कर्तव्य जीवन। जब राष्ट्र मे भी ये दोनों इसी तरह ओतप्रोत हो जाते हैं, तब वह एक व्यक्ति की तरह काम करने लग जाता है, तब वह स्वतंत्र होता है।

अंग्रेजी में इन जीवाणुओं को 'सेल' कहते हैं । जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इन जीवाणु-संघों ने हमारे शरीर के अंदर उत्कृष्ट श्रम-विभाग के सिद्धान्त के अनुसार, अत्यन्त पूर्णता के के साथ अपने-अपने काम बाँट लिये हैं। कुछ जीविकार्जन में जुट पड़े हैं, जैसे—मुँह, पेट, अन्नाशय, फेंफड़े इत्यादि। वे खाना, पानी और शुद्धवायु को हमारे शरीर के अन्दर पहुँचाते रहते हैं। कुछ इन द्रव्यों को शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में बाँटते रहते है। और बचे-खुचे अवशेष को बाहर फेंक देते हैं। यह काम हृदय, खून, फेफड़े, जिगर, तथा त्वचादि जीवाणु-संघ करते है। इनके अतिरिक्त जो जीवाणु-संघ हैं, वे व्यवस्थापन, राज्य-संचालन, राष्ट्र-रक्षा, आरोग्य-पालन आदि काम करते रहते हैं जैसे मस्तिष्क, रीढ़, स्नायु इत्यादि।

जीवाणु की रचना और जीवन-क्रिया

मानव-शरीर के जीवाणुओं की अपने-अपने गुण-कर्म के अनुसार कई जातियाँ है। सब के सब प्रोटोप्लाजम नामक एक सजीव द्रव्य के बने होते हैं। प्रत्येक जीवाणु (सेल) की रचना यों होती है : एक केन्द्र के आस-पास एक अ-पारदर्शक द्रव लगा रहता है। सेल का (जीवाणु का) जीवन इसी केन्द्र की शुद्धि और नीरोगता पर निर्भर है। केन्द्र शुद्ध और नीरोग होगा तो सेल भी नीरोग होगे और शरीर भी नीरोग एवं बलिष्ठ।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, जीवाणु कई प्रकार के होते हैं। कई केवल एक केन्द्र के होते हैं, जैसे अमीबा; कई मे दो, तीन, चार इस तरह अनेक केन्द्र होते है। यही प्रारम्भिक जीवाणु समस्त प्राणियो के जीवन में अत्यन्त महत्वशाली वस्तु है। इनको

शुद्धि, इनके नीरोग और इनके रुग्ण होने पर ही प्राणियों के शरीर की शुद्धि, नीरोगता और रुग्णावस्था निर्भर करती है।

हमारे शरीर मे इन जीवाणुओ के निर्माण और पुनर्निर्माण की क्रियाएँ आजीवन अनवरत रूप से जारी रहती है। हम अणुवीक्षण यंत्र की सहायता से छोटे से छोटे जीवाणुओं के जीवन-क्रम को भी अपनी आँखों देख सकते हैं। हम ऊपर कह चुके हैं कि कितने ही जीवाणुओं में केवल एक ही केन्द्र का सेल होता है। अमीबा एक इसी प्रकार का जीवाणु है, जो स्थिर जलाशयो मे पाया जाता है। यदि हम इस जलाशय से एक बून्द पानी लेकर उसकी जाँच करे, तो हमे वह साफ तौर से इधर-उधर दौड़ता, खाना और हवा को भीतर लेता और मल का त्याग करता हुआ दिखाई देता है। कुछ देर बाद हम देखते हैं कि उसका केन्द्र बीच मे से दो हिस्सो में बँट जाता है और आस-पास का द्रव इन दोनों केन्द्रो के बीच हो जाता है और शीघ्र ही वह सारा सेल दो भागो में विभक्त हो जाता है। यह नवीन सेल भी पहले सेल की तरह अपनी पृथक् जीवन-यात्रा शुरू कर देता है। कई जीवाणुओ की नव-निर्माण-क्रिया कुछ भिन्न होती है, उदाहरण के लिए यीस्ट (Yeast) नामक सेल को ही लीजिए। इसमें माता सेल स्वयं द्विधा होने के बजाय एक ही बार मे कई नये जीवाणुओ को पैदा कर देती है। प्राणि-जीवन में इस क्रिया को 'बडिंग' अथवा उन्मीलन-क्रिया कहा जाता है।

जिस प्रकार व्यक्ति राष्ट्र के घटक है और उसके जीवन के लिए महत्वपूर्ण तथा आवश्यक वस्तु हैं, उसी प्रकार ये जीवाणु

प्राणियों के शरीर के आद्य संजीव घटक हैं, और प्रत्येक प्राणी का जीवन, मरण, आरोग्य तथा रुग्णावस्था इन्हीं आद्य जीवाणु-संघों की शुद्ध अवस्था पर निर्भर है। अतः यहाँ पर उन सेल अथवा जीवाणुओ के घटक द्रव्य के विषय मे भी कुछ कह देना जरूरी है।

जीवाणु प्रोटोप्लाज्म नामक एक सजीव द्रव के बने होते हैं। यह द्रव स्वयं प्रोटीन से बनता है। और प्रोटीन में नीचे लिखे पदार्थ उनके सामने लिखी मात्रा में होते हैं।

पदार्थ	मात्रा प्रतिशत
कार्बन	.५३
ऑक्सिजन (प्राणवायु)	.२२½
नायट्रोजन	.१६½
हाइड्रोजन	.७

शराब की जीवाणुओं पर क्रिया

अब हम यह देखें कि अलकोहल अर्थात् शराब के विष का हमारे शरीर पर क्या असर होता है।

हमारा सारा शरीर इन जीवाणुओं से भरा है। अन्तर केवल इतना ही है कि बाहरी त्वचा के जीवाणु एक रक्षक पदार्थ द्वारा अधिक सुरक्षित हैं। पर शरीर के भीतर तो वे खुले हैं। यदि हम थोड़ी-सी शराब मुँह में लें और उसे थोड़ी देर तक मुँह में रक्खे रहे तो हमें उसका प्रभाव फौरन मालूम हो जायगा। इसे मुँह में लेते ही जबान तथा मुँह चुरमुराने लगता है और मुँह का सारा भीतरी हिस्सा सफेद हो जाता है। इसके बाद यदि आप

किसी चीज को खावेंगे तो आप देखेंगे कि मुँह का स्वाद जाता रहा है।

इसके मानी क्या हैं ? यही कि मुँह के कोमल जीवाणुओं को शराब ने मूर्च्छित कर दिया है। उनकी चेतना-शक्ति नष्ट हो जाने के कारण वे स्वाद-ज्ञान को अनुभव नहीं कर सकते—इसीलिए शराबी आदमी शराब पीने पर अपनी मूर्च्छित स्वादेन्द्रिय को उत्तेजित या जागृत करने के लिए चरपरे पदार्थ खाता है। बड़ी देर बाद मुँह का स्वाद पुनः लौटता जरूर है, पर उसकी पहली चेतना-शक्ति फिर कभी नही लौटती। शराब को मुँह में केवल थोड़ी देर रखने से जब हमारे मुँह के जीवाणुओ की चेतना-शक्ति को वह इस तरह मूर्च्छित कर देती है, तब पेट में जाने पर, जहाँ वह इतनी देर तक रहती है; वह न मालूम कितना उपद्रव मचाती होगी, कितनी हानि पहुँचाती होगी ?

बात यह है कि अलकोहल उपर्युक्त प्रोटीन द्रव्यों को कड़ा बना देता है। एक अंडे पर यदि अलकोहल डाल दिया जाय तो वह मर जाता है। अलकोहल प्रोटोप्लाज्म नामक उपर्युक्त सजीव द्रव अथवा जीवन-रस से पानी को सोख लेता है। इससे वह उन जीवाणुओं के केवल शरीर को ही हानि नहीं पहुँचाता बल्कि उनकी जीवन-क्रिया मे भारी रुकावट डाल देता है, जिसका प्रतीकार करना उन कोमल जीवाणुओं के लिए असंभव हो जाता है। और यही हानि सब से भयंकर है। क्योंकि इन जीवाणुओं का जीवन ही प्राणी का एकमात्र जीवन है।

एक और प्रत्यक्ष उदाहरण लीजिए। यीष्ट जन्तु का जिक्र ऊपर आ चुका है। यही जंतु शक्करदार पेय पदार्थों से शराब

बनाता है। एक निश्चित समय तक जब वह पेय पड़ा रहता है तब उसमें यह जन्तु पैदा हो जाता है और उसे फरमेंट (सड़ाने) करने लगता है। पाठक ऊपर पढ़ चुके हैं कि इसकी उत्पत्ति की गति बड़ी तेज है। पैदा होते ही शीघ्र ही यह सारे पेय को अपनी प्रजा से भर देता है, और ये सब मिलकर अपना कृमि-जीवन-व्यापार अर्थात् खाना-पीना और पाखाना-पेशाब आदि सब क्रियाएँ उस पेय में ही शुरू कर देते हैं। उस पेय के अन्दर की शक्कर को खाकर अपने शरीर के अन्य द्वारों से वे उसे दो रूपों में बाहर निकाल देते हैं। एक तो होता है गैस अथवा दूषित वायु जिसे डायोक्साइड कहा जाता है, और दूसरा होता है द्रव, जिसे हम अलकोहल कहते हैं। यही अलकोहल भयंकर विष है। अलकोहल उत्पन्न होते ही वह अपने जनक-जीवाणु अर्थात यीस्ट पर ही आक्रमण कर देता है। इस मलात्मक विष की तीव्रता के कारण वह जीव मरने लग जाता है। पेय मे इसकी मात्रा प्रति सहस्र एक होते ही यह घातक क्रिया दृष्टि-गोचर होने लगती है, अलकोहल बढ़ता जाता है तथा जीवाणु घटते जाते है। और *अलकोहल की मात्रा पेय में प्रतिसहस्र चौदह तक पहुँचने पर यीस्ट जीवाणुओं का जीवन असम्भव हो जाता है।* वे मर जाते हैं और फलतः अलकोहल के भी बनने की क्रिया बन्द हो जाती है। जब इससे भी अधिक परिमाण मे अलकोहल की जरूरत होती है तो जैसा कि पहले बताया गया है उस द्रव्य का अर्क निकाल लिया जाता है।

सारी जीव-सृष्टि छोटे-छोटे जीवाणुओं से बनी हुई है। योस्ट भी उनमे से एक है। वह अलकोहल बनाता है। इसलिए यदि

सच पूछा जाय तो अल्कोहल का प्रतीकार करने की शक्ति यीस्ट में सबसे अधिक होनी चाहिए और होती भी है, पर अल्कोहल अपने ही पैदा करनेवाले अर्थात यीस्ट को भी मार डालता है। पाठक अनुमान कर सकते हैं कि फिर वह मानव-शरीर के कोमलतम और अधिक से अधिक उत्क्रान्त (Evolved) जीवाणुओं के लिए कितना घातक होगा। प्राणी-शरीर जितना ही अधिक उत्क्रान्त × होता है, अल्कोहल उसके लिए उसी

× आजकल बहुत से विद्वान यह मानते हैं कि मनुष्य-शरीर शुरू से ही ऐसा उन्नत नहीं था, जैसा कि आज हम उसे देख रहे हैं। अन्य प्राणियों के लिए भी यही बात कही जाती है। उनका कहना है कि इस सृष्टि में पहले पहल ऐसे जीव पैदा हुए जिनकी शरीर-रचना बहुत मामूली थी और धीरे-धीरे उनका विकास होता गया। उदाहरण के लिए डारविन साहिब का ख़याल है कि मनुष्य का आद्यरूप बन्दर था। धीरे-धीरे विकसित होता हुआ वह मनुष्य के इस रूप को प्राप्त हुआ। इस कथन की पुष्टि में ऐसा ख़याल रखनेवाले विद्वान बीच की कई लड़ियां भी बताते हैं। हम भी देखते हैं कि मनुष्य विकास तो अवश्य करता है। अगर उसकी शारीरिक और मानसिक उन्नति के लिए पूर्ण अवकाश और अनुकूलता हो तो वह खूब उन्नत हो सकता है। गुलामी के मानी हैं इस अवकाश और अनुकूलता का अभाव अथवा प्रत्यक्ष रुकावट। इसीलिए हम देखते हैं कि स्वाधीन राष्ट्र के नागरिक गुलाम राष्ट्रों की अपेक्षा हर बात में बढ़े-चढ़े होते हैं। उत्क्रान्ति इसी सर्वाङ्गीण विकास और उन्नति का नाम है, फिर वह चाहे मनुष्य या किसी अन्य प्राणी की हो। इस विषय का जिन्हें विस्तार-पूर्वक ज्ञान प्राप्त करना हो वे सस्तामण्डल में प्रकाशित "जीवन विकास" और "संघर्ष या सहयोग?" नामक पुस्तकें ज़रूर पढ़ें।

मात्रा में अधिक भयंकर और नाशक पाया गया है। मनुष्य ऊँची से ऊँची श्रेणी का प्राणी होने के कारण अल्कोहल का प्रभाव उस पर सबसे अधिक भयंकर होता है। उसके मस्तिष्क, स्नायुकेन्द्र तथा ज्ञानेन्द्रियों पर, जो उत्क्रान्ति की सब से ताजी और श्रेष्ठ उपज हैं, वह और भी तेजी से आक्रमण करता है। वह इन इन्द्रियों को मूर्छित कर देता है। इनके मूर्छित होते ही नीति-अनीति की भावनाओं पर मनुष्य का अधिकार वा नियंत्रण उठ जाता है। ढालू जमीन पर दौड़ने वाली गाड़ी के समान उसका शरीर बेरोक काम करने लगता है। शराबी को कम-से-कम परिश्रम का अनुभव होता है। और वह सोचता है कि मुझमें खूब शक्ति का संचार हो गया है। पर वास्तव में जब उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ अपनी मूर्च्छा से जागती हैं, तब उन्हें पता लगता है कि कोई राक्षस आकर उनके मन्दिर को अपवित्र कर गया और उनकी शक्ति को चुरा ले गया। मूर्च्छा के कारण स्वयं ज्ञानेन्द्रियाँ अथवा विवेक-भावनाएँ भी अपनी पुरानी शक्ति से हाथ धो बैठती हैं। उनकी शासक, वा नियन्त्रण करने की, शक्ति हरबार घटती ही रहती है, और दिन-ब-दिन मनुष्य अधिक अनियंत्रित, निरंकुश वा दूसरे शब्दों मे कहना चाहें तो अनीति-शाली, पतित और पशुवत् बनता जाता है।

शराब पीने पर—

ऊपर बताया जा चुका है कि मुँह में शराब लेते ही वह भीतर की मुलायम लाल-लाल चमड़ी को सुन्न और सफेद बना देती है। इसके साथ ही स्नायुओं पर भी एकाएक आघात पहुँच-

कर रस-निर्माण-क्रिया एकदम अव्यवस्थित हो जाती है। इस आघात के कारण शरीर की और भी कितनी ही मामूली क्रियाओं में बड़ी गड़बड़ी मच जाती है। ठीक तो है। जब कोई बाहरी शत्रु किसी नगर पर आक्रमण करता है तब क्या सब नागरिक अपना मामूली काम छोड़-छोड़कर उसके प्रतीकार के लिए नहीं दौड़ पड़ते ?

इसके बाद शराब का असर उन रक्त-वाहिनियों पर होता है जो शरीर की इस कोमल त्वचा के नीचे या भीतर होती हैं। वे फूलती हैं और शरीर की चमड़ी फैल जाती है। पेट तथा अन्य अवयवों के आस-पास की रक्त-वाहिनियों पर भी यही असर पड़ता है। उनके भीतर का खून जमने लगता है। रक्त-वाहिनी की सजीव त्वचा सुन्न और मूच्छित हो जाती है। उनका लचीला-पन नष्ट होकर वे कड़ी और जल्दी टूट जानेवाली हो जाती है।

जो लोग भोजन के बाद या साथ ही, शराब पीते हैं उनके पेट के नाजुक और महत्वपूर्ण स्नायुओ की जीवन-शक्ति को निःसन्देह वह कमजोर बना देती है और जठराशय के काम में भारी रुकावट पैदा कर देती है। जठराशय का काम है अन्न का मंथन करके उससे नाना प्रकार के रस तैयार करना। पर जब *अन्न के साथ-साथ पेट में शराब भी पहुँचती है तब वह सुन्न हो जाता है और पाचन-क्रिया रुक जाती है।*

यदि शराब भोजन के बाद न ली जाय और जठरा-शय में अन्न का मंथन होकर वह द्रव रूप में कहीं परिणत हो गया तो भी बार-बार शराब पीने के कारण रक्त-वाहिनियों की

दीवारों की त्वचा तो फिर भी सुन्न और कड़ी हो जाती है। तब वे न तो उस द्रव से अपने पोषण के योग्य रसों को सोख सकती हैं और न अपने भीतर की अशुद्ध अवशिष्ट चीजों को बाहर फेंक सकती हैं। इन अवयवों के जीवाणु-संघ, कमजोर और दुर्बल हो जाते हैं और वे अपने नव-निर्माण के अयोग्य हो जाते हैं। शनैः-शनैः अन्नाशय तथा आस-पास की रक्त-वाहिनियों के कोमल त्वचात्मक आवरण निर्जीव होकर गिर जाते हैं। और भीतर से नये आवरण उनका स्थान लेते रहते है। पुनः इस नई त्वचा पर शराब वही क्रिया आरम्भ करती है। फिर और निर्जीव जीवाणु पेट मे इकट्ठे होकर पाचन-क्रिया में असीम रुकावट डालते हैं। इन मृत जीवाणुओ से एक विष पैदा होकर वह भी शनैः-शनैः शरीर में फैलता रहता है। इसकी क्रिया भी प्रायः वैसी ही होती है जैसी गर्भिणी के पेट मे बच्चा मर जाने से होती है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि वह मृतपिंड बड़ा होने के कारण माता के शरीर पर उसका विष बहुत जल्दी और दृश्य-रूप से असर करता हुआ दिखाई देता है। और शराब के कारण होने वाली जीवाणु-हत्या सूक्ष्म होने के करण उसके दृश्य-स्वरूप और फल को हम तत्काल नही देख सकते। लेकिन इसी विष के कारण हम प्रति वर्ष हजारों शराबियों की, भरी जवानी में ही मृत्यु होती देखते हैं।

रक्त-संचालन पर शराब का प्रभाव

पर अन्नाशय का बिगड़ना या सड़ना और पाचन-क्रिया मे गड़बड़ी होना तो शराब से होनेवाले शरीर का केवल श्रीगणेश है।

जठराशय के पाचक रसों में एक भी ऐसा शक्तिशाली रस या क्षार नहीं है जो शराब के विष को—अलकोहल को हजम कर सके। अतः पेट में जाते ही वह प्रतिशत बीस के प्रमाण में सीधा हमारे खून में प्रवेश कर जाता है और शेष अर्थात् प्रतिशत ८० हमारी ऑंतड़ियाँ (Intestines) अर्थात् पाचक तथा शोषक नलिकाओं के जरिये बाद में खून मे जा मिलता है। शराब पीने के बाद कोई ३० से लेकर ९० मिनिट के अन्दर ही शराब खून में जा पहुँचती है।

खून में मिलते ही अलकोहल एकदम अपना जहरीला प्रभाव शुरू कर देता है। खून में से वह ऑक्सिजन (प्राणवायु) तथा पानी को सोखकर प्रोटीन तथा अल्ब्यूमेन को गाढ़ा बना देता है। इससे खून के मुख्य काम मे—अर्थात् पोषक द्रव्यों को शरीर के भिन्न-भिन्न भागो मे पहुँचाने मे बड़ी रुकावट हो जाती है। शरीर की पोषण-क्रिया रुक जाती है। शरीर मोटा-ताजा तो दिखाई देता है [क्योंकि नसे तथा रक्त-वाहिनियाँ सूज जाती हैं और निर्जीव कूड़ा-कचरा शरीर के प्रत्येक भाग में इकट्ठा हो जाता है] पर वास्तव मे मनुष्य बहुत कमजोर हो जाता है। दूसरे अलकोहल उन शरीर-रक्षक फौजी जीवाणुओ पर भी धावा कर देता है, जो हमारे शरीर पर आक्रमण करनेवाले रोग-जन्तुओं से लड़ने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। नतीजा यह होता है कि शरीर रोग-जन्तुओं का प्रतीकार करने मे असमर्थ हो जाता है, और बात-बात मे वह रोगो का शिकार होने लगता है।

'अलकोहल' से बेहोशी जल्दी इसलिए नहीं आती कि उसका सम्बन्ध द्रव पदार्थों से होने के कारण क्लोरोफार्म या ईथर के समान वह चेतना-केन्द्रो तक तेजी से नही जा सकता। परन्तु

एक बात है। जब आदमी शराब से बेहोश हो जाता है तो वह जल्दी होश में भी नहीं आता। बल्कि पाया तो यह गया है यदि बेहोशी दस-बारह घंटे तक नही हटी तो उस आदमी की मृत्यु निश्चित ही समझनी चाहिए।

पहले किसी समय लोगों का खयाल था कि *शराब से हृदय की गति और शक्ति बढ़ जाती है*। यदि ऐसा होता तो क्या ही अच्छा होता। पर इधर विज्ञान के प्रकाश मे जो आविष्कार और संशोधन हुए हैं वे इस बात को बिलकुल निराधार साबित कर रहे है। उन तमाम संशोधनो और आविष्कारो का ब्यौरा देने की हम यहाँ कोई आवश्यकता नहीं देखते। यहाँ तो केवल इतना ही कह देना काफी होगा कि मनुष्य के खून में $\frac{1}{8}$ प्रतिशत अलकोहल पहुँचने पर भी यह देखने मे आया है कि एक मिनिट के अन्दर उसने हृदय की कार्य-शक्ति को घटा दिया। खून मे प्रतिशत $\frac{1}{2}$ अलकोहल के पहुँचने पर वही हृदय की कार्य-शक्ति को इतना घटा देती है कि उसमे इतनी भी शक्ति नही रहती कि वह अपनी रक्त-वाहिनियो को काफी पोषक खून दे सके। इसके कारण हृदय में सूजन आ जाती है, जिससे वह और भी कम खून शुद्ध कर सकता है। फलतः शुद्ध खून के अभाव मे शरीर के भिन्न-भिन्न अंग कमज़ोर होने लगते हैं।

कभी-कभी कहा जाता है कि नियमित रूप से शराब पीनेवाले तो मजबूत और हृष्ट-पुष्ट दिखाई देते है! हां, सत्य ही वे बलवान् और हृष्ट-पुष्ट जरूर दिखाई देते हैं। पर केवल देखने-भर को ही, उनमें वास्तविक शक्ति नहीं होती। एक निर्व्यसनी आदमी के साथ एक शराबी की तुलना करने पर यह भ्रम

दूर हो सकता है। यदि दोनों को कोई कसरत या शक्ति का काम दिया जाय तो शराबी बहुत जल्द थक जायगा।

मांसलता बढ़ने का कारण यह है शरीर में जितने भी पोषक द्रव्य आते हैं, उनका उपयोग करने की शक्ति उसके जीवाणुओं में नहीं होती इसलिए उन द्रव्यो की चरबी बन जाती है और शरीर में स्थान-स्थान पर जीवाणुओं के बीच में वह इकट्ठी होती रहती है। इससे हमें दिखाई तो देता है कि आदमी की शक्ति बढ़ती जा रही है परन्तु यथार्थतः वह बढ़ने के बजाय घटती ही रहती है। इधर तबतक जिगर की भी यही दशा होती है। शरीर में सारा खेल उन जीवाणुओ की आरोग्यता और जीवन-रस की शुद्धि पर अवलम्बित होता है। इनके बिगड़ते ही सारे शरीर में तहलका-सा मच जाता है। फिर जिगर इन दुष्परिणामों से कैसे बच सकता है। मृत्यु का रास्ता साफ़ हो जाता है और प्राणी अपनी शक्ति के अनुसार मृत्युपुरी का प्रवास धीमी या तेज़ गति से शुरू कर देता है।

शराब और ज्ञानेन्द्रियां

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्टतया ध्यान में आ गया होगा कि शराब केवल मानव-जीवन के लिए ही नहीं बल्कि जीव-मात्र के लिए कितनी घातक वस्तु है। कई बार तो आदमी नशे मे इतनी शराब पी लेता है कि उसीसे उसकी मृत्यु हो जाती है। जब ऐसे मनुष्य की मृत्यु के बाद उसके शरीर की जाँच की जाती है, तब अक्सर पाया जाता है कि उसके मस्तिष्क में शेष शरीर की अपेक्षा परिमाण में कही अधिक अलकोहल है। बल्कि विशेषज्ञों का तो यह कथन है कि कई बार तो यहाँ तक देखा गया है कि

शरीर और मस्तिष्क में अलकोहल की मात्रा बराबर आधी-आधी रहती है। इसका कारण क्या है? यही कि उत्क्रान्ति की सर्वोच्च सीमा को पहुँचे हुए कोमल स्नायु-केन्द्रों के प्रति अलकोहल का आकर्षण सब से ज्यादा होता है और मानव-शरीर में मस्तिष्क एक ऐसा ही सर्वश्रेष्ठ अंग है। यही उसकी बुद्धि आदि उच्च मानवोचित गुणों का निवास-स्थल है। स्नायु-प्रणाली (Nervous System) का विकास अथवा उत्क्रान्ति प्राणियों के विकास-क्रम को जाहिर करती है। जिस प्राणी के स्नायु जितने ही अधिक उत्क्रान्त अथवा विकसित होंगे, उत्क्रान्ति-श्रेणी में उसका स्थान उतना ही ऊँचा होगा और उसी परिमाण में उसमें बुद्धि, विवेक, नीति इत्यादि आत्मा-सम्बन्धी गुणों का विकास भी पाया जायगा।

अलकोहल का उत्क्रान्त स्नायु-प्रणाली के प्रति विशेष आकर्षण होने के कारण उन प्राणियों पर उसका विनाशक प्रभाव क्रमशः बढ़ता जाता है, जो क्रमशः अधिकाधिक उच्च-श्रेणी के होते हैं। इसीलिए उसका *विषैला प्रभाव प्राणियों में मनुष्य पर, मनुष्य-शरीर में भी उसके उत्तमाग अर्थात् मस्तिष्क पर, और मानव-जाति में उस मनुष्य के मस्तिष्क पर सब से अधिक घातक होता है, जो अत्यन्त प्रतिभा-सम्पन्न होता है!*

मनुष्य का मस्तिष्क दो विभागो मे विभक्त है एक निम्नस्थ और दूसरा उच्च। मामूली शरीर-संचालन-सम्बन्धी क्रियाओं की व्यवस्था नीचे के विभाग में होती है। और विचार, चिन्तन आदि उच्च मानसिक क्रियाओं का निवास अथवा कर्मक्षेत्र उच्च विभाग है। मामूली बोलचाल की भाषा में कहना चाहे तो ये उच्च और निम्नस्थ मस्तिष्क-केन्द्र क्रमशः हमारी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियो के हेड ऑफिस हैं। बाहर की खबरों की यहाँ

सुनवाई होती है और जैसा आवश्यक होता है, यहाँ से उनके उत्तर में शरीर को निश्चित काम करने के लिए हुक्म छूटते रहते हैं। शरीर के प्रत्येक अंग के लिए यहाँ भिन्न-भिन्न ऑफिस भी हैं। यह भी पाया गया है कि मस्तिष्क मे जिस अवयव (विभाग) का दफ्तर अव्यवस्थित होता है उसके कर्मचारी भी अपना काम ठीक तौर से नही कर सकते।

अलकोहल ऐसा शक्तिशाली और भयानक विष है कि वह सब से पहले हमारी शारीरिक शासन-व्यवस्था के सर्वोच्च केन्द्र को ही जाकर धर दबाता है। ज्ञान, नीति, विवेक आदि विभागों के केन्द्रों को वह मूर्च्छित कर देता है। अपनी मूर्च्छितावस्था में मस्तिष्क के उच्च केन्द्रो को न अपनी अवस्था का खयाल होता है न शरीर की 'हानि' का। और ये उच्चकेन्द्र तो विचार, भावना, निर्णय-शक्ति, आत्मसंयम, इच्छाशक्ति, भक्ति, सदसद्विवेक, न्यायान्याय की भावना, कर्तव्य, प्रेम, करुणा, स्वार्थत्याग, इत्यादि मनुष्य के उच्चतम गुणो के उद्भव और विकास के स्थान है। अतः इनके मूर्च्छित *होते हो सारे शरीर की अवस्था दयनीय हो जाती है।* तरंगो पर बहने वाली नैया के समान फिर मनुष्य का ठिकाना नहीं कि वह किस चट्टान से जाकर टकरायगा। इस तरह *शराबख़ोरी के कारण न केवल मनुष्य का जीवन संकटापन्न हो जाता है, बल्कि उसके सम्बन्धी एवं आश्रित जन भी भारी मुसीबत में फँस जाते हैं।* और सबसे भारी दुर्दैव तो यह है कि प्रतिभा-सम्पन्न पुरुषों पर इस विष का परिणाम महा-

भयंकर होता है। वह बलिष्ठों को कमज़ोर, बुद्धिमानों को मूर्ख, देशभक्तों को नीच, और स्वार्थत्यागी पुरुषों से उनकी बुद्धि और विवेक छीनकर उन्हें महापतित बना देता है। प्रेम और भक्ति मिट्टी में मिल जाते हैं। क्या कोई हिसाब लगा-कर बता सकता है कि इस भयंकर राक्षस ने इस तरह उत्तमोत्तम पुरुषों की बुद्धि को भ्रष्ट करके इस भूतल पर मानव-जाति की कितनी हानि की होगी?

ऊपर कहा जा चुका है कि जीवाणुओं के कमज़ोर होने के कारण वे अन्न से अपने लिए पोषक द्रव्य आकर्षण करने योग्य भी नहीं रह जाते। तब उसकी चरबी बन कर वह जीवाणुओं के बीच मे एकत्र होती रहती है। इस चरबी के कारण मनुष्य की भावना और बुद्धि मे एक प्रकार की रुकावट-सी उत्पन्न हो जाती है। एक तो शराब से मस्तिष्क के केन्द्र मूर्च्छित वा सुन्न हो जाते हैं; दूसरे, स्नायु भी इस चरबी के कारण और पोषक द्रव्यों के अभाव तथा शराब के विष के कारण कुछ बेकाम से हो जाते हैं। चरबी जीवाणुओ के बीच में उसी तरह बैठकर उनकी शक्ति को रोक देती है, जैसे धातु के टुकड़ों के बीच लकड़ी या मिट्टी का-सा अविद्युत-वाही पदार्थ (Non-conductor) बिजली को वही रोक देता है। बाहरी इन्द्रियगत विषयों की खबरें इस चरबी के कारण, जो जीवित संदेश-वाहक अणुओ के बीच पड़ी रहती है, मस्तिष्क के ज्ञान-केन्द्रो तक शीघ्र नही पहुँच पाती; और न वहाँ से छूटे हुए हुक्मों पर तत्परता के साथ अमल ही हो पाता है। एक शराबी आदमी के ज्ञान और काम मे जो

बेहूदापन होता है, उसका कारण यही है। न यह अपने और न अपने मालिक के कामों को ठीक समय पर ठीक तरह कर सकता है। बल्कि अपनी शारीरिक ढिलाई के कारण वह अनेक बार दुर्घटनाओं का भी शिकार हो जाता है।

स्मरण-शक्ति

उत्तम स्मरण-शक्ति के लिए मस्तिष्क के तमाम स्नायु-केन्द्रो का पारस्परिक सहयोग आवश्यक है। पर शराब से खून के बिगड़ते ही मस्तिष्क की अवधान और एकाग्रता की शक्ति बिगड़ जाती है। फलतः ज्ञान ग्रहण करने की शक्ति कमजोर हो जाती है। अतः ज्ञान-संग्रह और संग्रहीत ज्ञान को स्मरण रखना तथा पुनः निर्माण करना (Reproduction) आदि क्रियाएँ लूली हो जाती हैं। इसीलिए किसी शराबी आदमी द्वारा किये गये काम या उसकी कही किसी बात का कोई महत्व नही होता। अत्यधिक और बार-बार शराब पीने के कारण मस्तिष्क के ज्ञान-केन्द्र सड़ जाते हैं। और मस्तिष्क के जीवाणु-संघों (Brain cells) के मरते ही उनमे संग्रहीत ज्ञान भी नष्ट हो जाता है। इस तरह शराबी को कभी किसी बात का पूरा ज्ञान नहीं होता। वह स्वप्न की घटनाओं को सत्य और सच्ची घटनाओं को स्वप्नवत् समझकर ऐसी ऊटपटाग बात बकने लगता है कि तमाम सुननेवालों को उनपर आश्चर्य और बुरी दशा पर तरस आता है।

जब एक शराबी की स्मरण-शक्ति बिगड़ती है, तब वह ताजी बातों को सबसे पहले भूलता है और पुरानी बातों को

क्रमशः बाद में । उसकी विस्मृति में भी एक निश्चित क्रम होता है । पहले वह घटनाओं को, बाद में विचारो को, फिर मनोवेगो को और अन्त में अपने कामों को भूल जाता है । अपनी अन्तिम अवस्था में वह भाषा को भी भूल जाता है । बुद्धि, विवेक और नीति का नियन्त्रण उठते ही वह मनोवेगों के साम्राज्य में विहार करने लगता है । शनैः-शनैः मनोवेगों में भी अधम विकार उसपर अधिकाधिक सिक्का जमाते जाते हैं । इस प्रकार वह क्रमशः प्रौढ़ावस्था, युवावस्था, किशोरावस्था, तथा बाल्यावस्था के विकारों से गुज़रता हुआ पाशविक विकारों का गुलाम बनता जाता है ! और अन्त में उसकी केवल दो ही पाशविक इच्छाएँ-क्षुधाएँ बच रहती हैं । खाना खाना और दूसरी शराब ।

शराब और कल्पना

स्मरण-शक्ति तमाम उच्च मानसिक क्रियाओं का आधार है । उसके बिगड़ते ही कल्पना, मनन, विवेचन, ध्यान, निर्णय, आदि सूक्ष्म मानसिक शक्तियाँ भी अपने आप नष्ट होने लगती हैं । पर यह बात शराबियों के ख़याल में नहीं आती । मस्तिष्क के मूर्च्छित होते ही कल्पना-शक्ति पर से उसका नियंत्रण उठ जाता है, और वह अनेक प्रकार की बेहूदी तथा अश्लील कल्पनाएँ करने लग जाता है । शीघ्र ही शराब उतरती है । विष से होनेवाले दुष्परिणाम के कारण उसे बेचैनी होती है । इस बेचैनी को दबाने के लिए वह फिर शराब पीता है । पर इस बार उतनी

ही शराब से उसे विस्मृति का वह आनन्द नही मिलता। उसे अपनी मात्रा बढ़ानी पड़ती है।

शराब और विचार-शक्ति

शराब के सेवन से शरीर मे जो खलबली और कष्ट-प्रद खलबली मच जाती है, उससे विचार-शक्ति को भी बड़ा आघात पहुँचता है, स्नायुओ की शक्ति घटते ही एकाग्रता, चिंतन, और निर्णय-शक्ति पंगु हो जाती है। विचार-शक्ति का आधार है स्मरण-शक्ति, और स्मरण-शक्ति निर्भर रहती है नीरोग मस्तिष्क तथा शरीर पर। *अतः जब अलकोहल मस्तिष्क के ज्ञान-केन्द्रों को मूर्च्छित और शारीरिक अवयवों को निष्क्रिय बना देता है, तब मनुष्य की विचार-शक्ति अवश्य ही नष्टप्राय हो जाती है।* तब वह ऐसे काम करने के अयोग्य हो जाता है जिनमें हर समय, हर वक्त, सोच-सोचकर आगे बढ़ना पड़ता है। हाँ, वह कुछ दिन तक ऐसे काम जरूर कर सकता है, जिसमें सोचने की जरूरत नहीं पड़ती, बल्कि यंत्र की तरह वही बात रोज या हर समय करनी होती है। पर नवीन जिम्मेदारी सिर पर आते ही वह दीन हो जाता है, दिमाग़ काम नही देता। *सर्वशक्ति की वह कला, जो परिस्थिति पर शासन करने के लिए पैदा होती है, इस शराब के कारण मिट्टी के ढेले की तरह जड़वत् हो जाती है।*

एक बार मनुष्य की अयोग्यता इस प्रकार जाहिर होते ही उस पर न कोई विश्वास ही करता है और न उससे कोई कुछ काम ही लेता है। यदि कोई भूलकर या दया-पूर्वक कुछ काम उसे देता भी है तो वही खुद अपनी अयोग्यता के कारण, फिर विश्वास को

गंवा देता है। शराब अनियमितता, मूर्खता, अयोग्यता, आकस्मिक दुर्घटनाओं का एक महान कारण है।

शराबखोर को धर्म और नीति का सूक्ष्म ज्ञान कहाँ ? वह अपनी मूर्खता के कारण शनैः-शनैः भले आदमियों की संगति के अयोग्य हो जाता है। परन्तु फिर भी उस अभागे को अपने पतन का पता नहीं होता ! वह अपने आपको पहले जैसा ही नीतिमान और बुद्धिमान समझता रहता है। बल्कि नशे से बुद्धि भ्रष्ट हो जाने के कारण वह तो अपने आपको सर्वज्ञ तथा राजा के समान शक्ति-शाली समझने लग जाता है। वह चाहता है कि उसकी बात को सब लोग मानें और उसकी आज्ञाओं का सभी पालन करें। वह हर एक बात में टाँग अड़ाता है और अपनी बातों की अवगणना करने वालों से झगड़ता है। उसे न तो समाज का भय होता है न परमात्मा का। ऐसे अभागे के आश्रय में रहनेवाले स्त्री-पुत्रादिकों की करुण-कहानी क्या कही जाय ! वह तो अपने और अपनों के जीवन को भी संसार में असह्य बना देता है। उसका विवेक और इच्छा-शक्ति नष्ट हो जाती है। वह अपने मनोवेगों का गुलाम बन जाता है और उसके अंतिम दिन एक पागल कुत्ते के समान बीतते हैं।

वह अनिवार प्यास !

आरम्भ में संयम के नष्ट होते ही वह एक प्रकार की स्वाधीनता का अनुभव करने लगता है। मानव-जीवन के प्रारम्भिक विकार और क्रियाएँ निरंकुश हो जाती हैं। शराब पीते ही मनुष्य उस प्रसन्नता का अनुभव करता है जो बच्चों में होती है। वह

उछलता है, हँसता है और निःसंकोच हो नाचता है। और इन सब चेष्टाओं को वह अच्छा समझता है। युवकोचित उत्साह और अहंकार को वह अनुभव करता है। वह बढ़-बढ़कर बातें करता है और दूसरों पर रौब गाँठने का यत्न करता है। शनैः-शनैः यह अहंकार विस्मृति में विलीन हो जाता है। सारी चिन्ताओं, दुःखों, जिम्मेदारियों आदि को वह भूल जाता है। और आराम-तलब हो जाता है। *युवक उस स्वच्छन्द, निरंकुश, पतित, आनन्द के लोभ से शराब पीते हैं और बूढ़े चिन्ता भुला देनेवाली विस्मृति की आशा से। पर अपने शरीर पर शनैः-शनैः अधिकार करनेवाली कमजोरी और मुर्दनी का ख़याल दोनों को नहीं होता। प्रकृति की चेतावनी की ओर वे ध्यान नहीं देते; विनाश की ओर बढ़ते चले जाते हैं।*

शराबी अक्सर व्यभिचारी भी होता है। जब वह यह पाप करके निकलता है तो वीर्य-नाश के कारण वह इस विष की तीव्रता को और भी अधिक अनुभव करने लगता है। कमजोरी, उदासी और जलन से वह जलने लगता है! फिर वह आग को आग से बुझाने की चेष्टा करता है। अब की बार आनन्द प्राप्त करने के लिए—जैसा कि हर एक विष का स्वभाव है—उसे अधिक मात्रा में शराब पीनी पड़ती है। इस बार जब नशा उतरता है तो कमजोरी और भी भयंकर जान पड़ती है। फिर शराब-फिर कमजोरी-फिर शराब-फिर कमजोरी—फिर शराब-फिर दुःख-यातनाएँ,-कष्ट! फिर शराब-विस्मृति,-मूर्च्छा,-अनन्त वेदनाएँ-अंधकार!! फिर शराब और- - -!!!

[२]

सीधे सर्वनाश की ओर !

अभी तक यह बताया गया है कि शराब से प्रत्यक्ष शरीर को क्या हानि पहुँचती है। अब शराब से होनेवाले भिन्न-भिन्न, प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दुष्परिणामों का हम संक्षेप में अवलोकन करेंगे तथा यह देखेंगे कि उसका परिवार, समाज तथा राष्ट्र पर क्या प्रभाव पड़ता है।

यों तो अभी तक उसकी बुराई का जो वर्णन दिया गया है उसके देख लेने पर मानव-शरीर, परिवार अथवा समाज पर होनेवाले दुष्परिणामों को अलग-अलग दिखाने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं रह जाती परन्तु संशोधको की खोज-भाल का कुछ नतीजा भी यहाँ पर संक्षेप में दे दिया जाय तो पाठको के चित्त पर वह और अच्छी तरह अंकित हो सकेगी। अतः अब हम इस विषय में किये गये कुछ संशोधनों का वर्णन संक्षेप में नीचे देते है।

सबसे पहले हम यह देखें कि *यह बुरी आदत मनुष्य को कब और क्यों लगती है?*

डा० ॲबट ने अमेरिका के बेलेव्यू अस्पताल में २७५ शराबियों की जाँच की, उसका परिणाम नीचे लिखे अनुसार है:—

जिस उम्र में आदत लगी	प्रतिशत संख्या
१२ वर्ष के पहले	६.५
१६ ,, ,,	३३
२१ ,, ,,	६८

आदत लगने के कारण:—	प्रतिशत
बेकारी	५
पारिवारिक या धन्धे-सम्बन्धी आपत्ति	१३
पेशे में (जैसे शराब की दूकान, होटल जहाँ शराब बिकती है)	७
सहभोजों में	५२.५

यह बात ध्यान देने योग्य है कि स्वाद के कारण बहुत थोड़े लोग शराब पीते हैं। शराब तो केवल नशे के लिए ही पी जाती है। और इसका मुख्य कारण सहभोज है। अमेरिका की भाँति भारत में भी शराबखोरी बढ़ने का मुख्य कारण जाति-भोज या सह-भोज ही है। और यहीं प्रचार करने से सुधारक अधिक सफल हो सकेंगे। भारत में ऐसी कितनी ही जातियाँ हैं, जिनमें मंगल कार्यों के समय अथवा मृत्यु-भोजों में शरीक होनेवाले जाति-बिरादरी के लोगो को शराब पिलाना अनिवार्य है। ऐसे ही अवसरो पर कितने ही निर्दोष बालक, युवक या स्त्रियाँ भी इस आदत की शिकार बन जाती है।

नव-शिक्षितो मे इंग्लैड में शिक्षा पाये हुए तथा अंग्रेजी तर्ज़ के सह-भोजों में शामिल होनेवाले भारतीयों को अक्सर यह आदत लग जाती है। कितने ही बुद्धिजीवी प्राणी जैसे

प्रोफेसर, वकील, बैरिस्टर, जज, सम्पादक वगैरा मानसिक परिश्रम के बोझ को हलका करने या भुलाने की अभिलाषा से इस राक्षस के पंजे में आ-फँसते हैं।

सम्पत्ति अनेक अनर्थों का मूल है। शराबखोरी बढ़ाने में भी वह अपना हाथ बँटाती ही रहती है।

शराब से स्नायुओं की और फलतः शरीर की कार्यशक्ति बहुत घट जाती है। अतः लोग निर्व्यसनी लोगों, कार्यकर्ताओं या मजूरों को ज्यादा पसन्द करते हैं।

एक ही मनुष्य पर शराब पीने के तथा न पीने के दिनो में प्रयोग किये गये। फल यह पाया गया:—

शराब पीने से (१) उसे १५ प्रतिशत अधिक शक्ति खर्च करनी पड़ी, (२) १६.४ प्रतिशत कम काम हुआ (३) २१.७ प्रतिशत अधिक समय उतने ही काम में लगा (४) और कम काम करने पर भी उसे यह खयाल बना रहा कि वह बड़ी तेजी से और खूब काम कर रहा है।

दूसरे प्रकार के प्रयोगों में देखा गया कि एक ही शख्श

शराब पीने के दिनों में—	न पीने के दिनों में औसतन
३० मे से औसतन ३ निशाने बंदूक से लगा सका	३० में से २४ निशाने लगा सका

और फायर करने का हुक्म मिलने पर थकने के पहले तक:—

शराब पीने के बाद	न पीने पर
२७८ बार फायर कर सका।	३६० बार फायर कर सका

नियम से थोड़ी शराब प्रतिदिन पीने पर भी मनुष्य की कार्य-शक्ति बराबर घटती रहती है।

कार्यशक्ति के घटने से मनुष्य की धनोपार्जन शक्ति पर भी अवश्य ही इसका असर पड़ता है। और गृह-सौख्य नष्ट होता है। वह कौशलवाले कार्यों को छोड़कर ऐसे मजदूरी के काम करने लग जाता है जिनमे दिमाग से काम नहीं लेना पड़ता। बोल्टने मे ऊपर से हट्टे-कट्टे बेकार आदमियों की जॉच की गई जो अपने परिवार का पोषण नहीं कर सकते थे। उनमें से २४३ अर्थात् प्रतिशत ६६ शराबी पाये गये। *शराब आदमी की उपार्जन शक्ति को घटा देती है।*

इसका नतीजा यह होता है कि घर में बीबी-बच्चे भूखे मरने लगते है। स्त्री को बच्चों की माता तथा धनोपार्जन का काम भी करना पड़ता है। यह भारतीय स्त्रियों की विशेषता है। परन्तु पश्चिम में तो स्त्रियां ऐसे पुरुष के पास रहना कभी पसन्द नहीं करतीं जो अपने आप को किसी प्रकार अपनी स्त्री और बच्चों का पालन-पोषण करने में अयोग्य साबित कर देते हैं। अमेरिका में सन् १८८७ से लेकर १९०६ तक केवल शराब के कारण १,८४,५६८ गृहस्थियाँ टूटीं अथवा प्रतिवर्ष ९२२८ गृहस्थियाँ टूटती थीं।

सचमुच शराब गृह-सौख्य की दुश्मन है। शिकागो में गृह-सौख्य के नाश के कारणों की जॉच करने पर १९१३ में पाया गया कि:—

शराब के कारण प्रतिशत ४६ गृहों का गृह-सौख्य नष्ट हुआ
अनीति (इसकी जड़ में भी शराब होती है) } १४ " " ".

रोग	१२	"	"	"
माता-पिता की बुरी आदतें	१७	"	"	"
खराब स्वभाव	११	"	"	"
अन्य कारण	१०	"	"	"

गृह-सौख्य के नाश के कारणो में मदिरा मुख्य है और व्यभिचार का नम्बर दूसरा है। पर व्यभिचार के लिए शराब बहुत हद तक जिम्मेदार है। हम आगे चलकर देखेंगे कि अनीति शराब से कैसे पैदा होती है। गृह-सौख्य के नाश की परम्परा यों है।

शराब
|
कार्यशक्ति का घटना
|
रोजी से अलग कर दिया जाना
|
बच्चों और स्त्री का पालन-पोषण न कर सकना
|
गृह-सौख्य का नाश
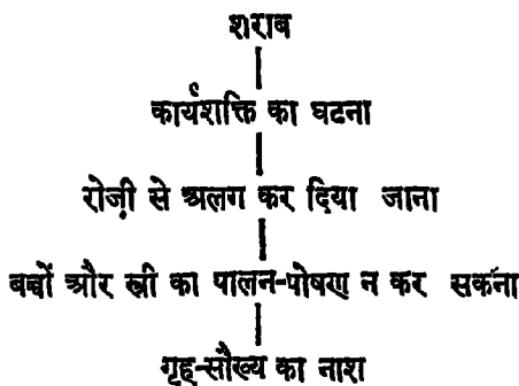
परन्तु इतना होने पर भी धन्य है हमारे पूर्वजों की उच्च संस्कृति को और उज्ज्वल रमणी-रत्नों के उदाहरणो को कि भारतीय स्त्रियाँ सहसा कुमार्ग पर पैर नहीं रखतीं। मैंने देखा है कि कई बार पति के शराबी होनेपर भी उसकी पत्नी तन-तोड़ मिहनत करके अपने बच्चो का, अपना तथा पति का भी पोषण करती हैं। किन्तु शराब बीच में कभी नहीं रुकती। मानव-जाति के सर्वनाश के लिए ही उसकी उत्पत्ति हुई है और इस पर वह तुली हुई है। मनुष्य को इससे अपनी तथा अपनी

सन्तति की रक्षा के लिए हमेशा आँखों में तेल डालकर जागृत रखना चाहिए।

शराब के चक्कर मे आकर आदमी अपना आर्थिक नाश करके ही नहीं रुकता। *शराब और व्यभिचार में गाढ़ी मित्रता है। जहाँ-जहाँ शराब है, वहाँ-वहाँ व्यभिचार भी जरूर होता है। शराब पीते ही नीति-अनीति की भावना तथा आत्मसंयम धूल में मिल जाता है और स्त्री-पुरुष ऐसी-ऐसी चेष्टाएँ करने लग जाते है जो अच्छी हालत में उनसे स्वप्न में भी नही होतीं।* ब्रिटिश रिफार्मेटरीज़ के निरीक्षक श्रीयुत आर० डब्ल्यू० ब्रन्थवेट अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं कि ८६५ पतित स्त्रियों में से प्रतिशत ४० स्त्रियो की अनीति का एक-मात्र कारण शराब और शराब ही थी! क्योंकि यों तो मामूली हालत मे वे बड़ी सभ्य और नीतिशील पाई गई हैं और उन्हे सदा इस बात का भय बना रहता है कि 'कहीं शराब पीकर फिर हमसे कोई पाप न हो जाय।' शराब के अभाव मे अधिक स्त्रियो का नीतिभ्रष्ट होना असम्भव है।

न्यूयार्क के भूतपूर्व पुलिस कमिश्नर श्रीयुत बेंगहॅम कहते हैं—"इस सामाजिक बुराई को (व्यभिचार या वेश्यावृत्ति को) उसकी वर्तमान 'उन्नत' दशा मे बनाये रखने के लिए स्त्रियों की अनीति-वृत्ति और पुरुषो की पशुता को संवर्द्धित और उत्तेजित करते रहना पड़ता है।"

कितने ही स्त्री-पुरुष पहले-पहल, अनीति के मार्ग पर शराब के कारण ही पैर रखते हैं। *कई लड़कियाँ शराब के नशे में वेश्यालयों में लाई जाती हैं और वहा से छुटकारा पाने की*

इच्छा होने पर भी अपने पतन के कारण लज्जित होकर वे बाहर नहीं निकल सकतीं। पर शराब एक दूसरी तरह भी स्त्रियों को व्यभिचार में प्रवृत्त करती है। उसकी परम्परा यों है।

इनसे उत्पन्न होनेवाली निर्लज्जता और 'अब क्या डर है' वाली मनोवृत्ति स्त्रियों को व्यभिचार की ओर ले जाती है जहाँ उन्हें शराब, जीविका और आनन्द (?) भी मिलता है।

यह कोष्ठक अथवा पतन की परम्परा पश्चिमी देशों की दशा को दिखाती है। हमारा ख़याल है कि हमारे देश में स्त्रियों के पतन में शराब का इतना हाथ प्रत्यक्ष रूप से नहीं है। यहाँ उसके

लिए अन्य कारण अधिक महत्वपूर्ण हैं जिनका विचार हम अन्यत्र करेंगे। पर निःसन्देह पुरुषों के व्यभिचार के लिए तो शराब यहाँ भी बहुत जिम्मेदार है। और यही स्त्री-पुरुषों के पतन के कारण होते हैं। उनके पतन की परम्परा यों दिखाई जा सकती है:—

इसके बाद हम देखते हैं पति के अपराध के बदले में स्त्री की वेश्यावृत्ति या छिपा व्यभिचार यह घोर नारकीय जीवन की काली-कलूटी निराशा और दुःखमय रात है।
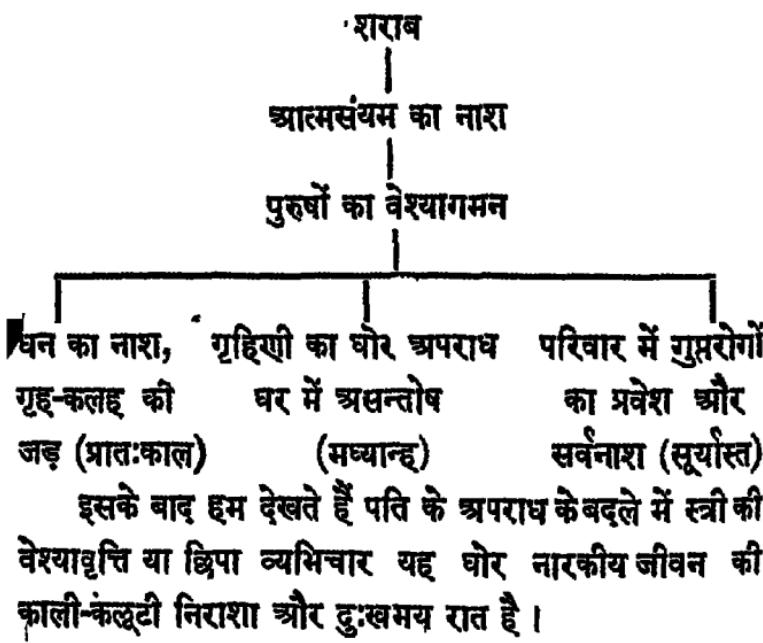
अमेरिका (संयुक्तराज्य) संसार में अपने आपको सबसे नया और कम पतित राष्ट्र मानता है। किन्तु वहाँ सुजाक (Syphilis) से कोई ८०,००,००० मनुष्य पीड़ित हैं। अमेरिका की जन-संख्या करीब १० करोड़ है। हमारे देश में तो ऐसे कोई अंक और हिसाब इकट्ठे नहीं किये गये हैं। परन्तु इससे अनुमान किया जा सकता है कि यहाँ की अवस्था कितनी भयंकर होगी।

अमेरिका, इंग्लैंड और यूरोप के इस विषय के तीन सब से बड़े ज्ञाता और प्रामाण्य-डॉक्टरों की राय है कि शराब नीचे लिखे परिमाण में गुप्त रोगों का कारण है।

डॉ० डगलस (इंग्लैंड) प्रतिशत ८० } मरीज़ों के गुप्त रोग का
डॉ० कोरेल (यूरोप) „ ७६ } कारण शराबखोरी का बुरा
टैवेन इमर्सन (अमेरिका) „ ७५ } व्यसन है।

शराब और रोग

पीछे कहा जा चुका है कि *शराब के कारण मनुष्य के शरीर से रोगों का प्रतीकार करने की शक्ति कम हो जाती है अतः स्वभावतः शराबख़ोर आदमी बात की बात में हर किसी रोग का शिकार हो जाता है।* जॉन हॉपकिन्स युनिवर्सिटी के प्रोफेसर डॉ० विलियम एच वेल्क ने वेलेब्यू अस्पताल मे ९० शराबी पुरुषों और उपस्त्रियों की जाँच की जिसका परिणाम नीचे लिखे अनुसार है:—

	हृद्रोग,	जिगर का रोग	जिगर में चरबी उत्पन्न होने से	उदर रोग
९० पुरुषों में से प्रतिशत	९०	४८	८०	५०
३५ स्त्रियों में से „	९०	३४	७४	५०

इस जाँच में इनकी रक्तवाहिनियाँ, फेफड़े, प्लीहा, गुर्दे, पॅनक्रीज तथा स्नायु-प्रणाली भी रुग्ण पाई गई।

शराबखोर की बीमारी अधिक लम्बी होती है। लिपज़िग (जर्मनी) की सिक बेनिफिट संस्था की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि जब २५-३४ वर्ष का मामूली आदमी ७.५२ दिन

तक बीमार रहता है, तब उसी उम्र का शराबी आदमी १९.२९ दिन तक बीमार रहता है। और ३५-४५ वर्ष की उम्र का मामूली आदमी जब १० दिन तक बीमार रहता है तो शराबी २७ दिन तक बीमार रहता है।

'शराबी बीमार भी ज्यादा होते है' । उसी संस्था की १९१० में छपी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि २५-३४ वर्ष की की उम्रवाले १००० बीमा किये गये लोगों में से, ३६८ मामूली मनुष्य बीमार होते थे। तहाँ शराबियों में ९७३ व्यक्ति बीमार होते थे।

शराबियों की शराब न पीनेवालों के साथ तुलना करनेपर पाया गया कि वे ज्यादा संख्या में बीमार पड़ते हैं अर्थात् रोग का प्रतीकार करने की शक्ति घट जाने के कारण रोगजन्तु फ़ौरन उनके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। नीचे लिखे अंकों से ज्ञात होगा कि वे कितने कमजोर हो जाते हैं।

लिपजिग की सिक बेनेफिट सोसायटी की रिपोर्ट से ये अंक लिये गये हैं।

जहाँ शराब न पीनेवाले १०० मामूली आदमी किसी रोग से पीड़ित होते हैं वहाँ उसी उम्र के शराब पीनेवाले आदमियों की संख्या नीचे लिखे अनुसार है।

रोग का नाम	उम्र २५-३४	उम्र ३५-४४
सभी रोग	२६४	२८३
संसर्ग-जन्य रोग	१४९	१४०
स्नायु प्रणाली के रोग	३७५	४२६
श्वास रोग	२१९	२६७

(Not Tuberculous disease)		
क्षय रोग	६०	८०
(Tuberculosis)		
खून के रोग	२३३	२३०
बदहजमी से होनेवाले रोग	३००	३२१
जख़्म वग़ैरा	३२४	३२३

शराबियों के लिए क्षय और न्यूमोनिया अधिक भयावह है। डॉ० ऑसलर का कथन है कि जाँच करने पर पाया गया कि न्यूमोनिया से पीड़ित होने पर—

नियमित शराबी	२५ प्रतिशत मरते हैं
अंधाधुन्ध शराब पीनेवाले	५२ ,, ,,
निर्व्यसनी पुरुष	१८ ,, ,,

फिलाडेल्फिया की हेन्सी फिप्स इन्स्टिट्यूट में कई वर्षों के एकत्र किये गये अंकों से पता चलता है कि शराब क्षय का रास्ता साफ कर देती है। १९०७ और १९०८ की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि २७७ शराबी और ९३४ न पीनेवाले क्षय रोगियों का व्यौरा नीचे लिखे अनुसार है।

	शराब पीनेवाले	शराब न पीनेवाले
अच्छे हो गये प्रतिशत	२९·५	४९·२
मर गये ,,	२१·८	९·९
असाध्य ,,	४८·५	४०·७

पागलपन

प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क पर शराब का एक-सा परिणाम नहीं होता। तथापि *संसार के सभी देशों के विशेषज्ञ इस बात में*

एकमत हैं कि शराब प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य के मस्तिष्क में ऐसे परिवर्तन कर देती है, जिनका अन्त पागलपन में होता है। नीचे भिन्न-भिन्न देशों के विशेषज्ञों की राय दी है।

अमेरिका—पागलखानों में लिये गये २० से लेकर ३० प्रतिशत पागलो के पागलपन का कारण शराब पाई गई है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में यह प्रमाण ज्यादा है। शायद इसीलिए कि प्रायः पुरुष ही ज्यादा शराब पीते हैं।

न्यूयार्क के सरकारी शफ़ाखाने में फीसदी ६० पागलों की (पुरुषों में) बीमारी का कारण शराब पाई गई और स्त्रियों में फीसदी २० पागलों का कारण शराब थी।

नॉरिसटाऊन—(अमेरिका) के सरकारी अस्पताल की रिपोर्ट से पता चलता है कि ५२० नये पागलों में से प्रतिशत ४४ पागलों के पागलपन का एक कारण मद्यपान भी था।

इस तरह सभी देशों के अंक लेकर यदि हिसाब लगाया जाय तो बड़ी उदारता के साथ अनुमान करने पर भी हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि *प्रतिशत २५ पागलों के पागलपन का कारण प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से शराब है।*

मामूली आदमी किन्हीं झगड़ों-उपद्रवों में सहसा नहीं पड़ता। और यदि कहीं ऐसा मौक़ा आ ही जाता है तो मारपीट करने के पहले परिणाम को सोचता है। परन्तु *शराबी की बुद्धि तो पहले ही मारी जा चुकी है। अतः वह तो पहले मारपीट कर बैठता है। तब कहीं शराब का नशा उतरने पर उसे अपनी बेवकूफ़ी पर पश्चात्ताप होता है।*

शराब से आदमी चिड़चिड़ा हो जाता है, उसकी निर्णय-शक्ति कमजोर हो जाती है और आत्म-संयम भी घट जाता है, जिससे वह अपने गुस्से को रोक नहीं सकता। नीचे लिखे अंको से पाठकों को ज्ञात होगा कि *शराब का इन मारपीटों में कहाँ तक हाथ है।*

हीडेलबर्ग (जर्मनी) की कमिटी ऑव फिफ्टी ने वहाँ रजिस्टर की गई १९१५ वारदातों की जॉच की और नीचे लिखे नतीजे पर पहुँची।

स्थान	प्रतिशत
शराब की दूकानों पर	६६.५
सड़कों पर	८.८
कारखानो में	७.८
घर पर	७.७
अज्ञात स्थानो में	९.२

शराब की दूकानो को छोड़कर बाहर जो मार-पीट या ऐसी ही वारदातें हुई उनमें अधिकांश का कारण शराब ही थी।

संसार के अपराधियों की जाँच करने पर पाया गया है कि ५० से लेकर ९० तक बल्कि इससे भी अधिक अपराधियों के कुमार्गगामी होने का कारण प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से शराब ही थी। या उनकी बाल्यावस्था शराबियो के वायु-मण्डल में गुजरी थी। कई वर्ष हुए हमने 'इण्डियन नेशनल हेरल्ड' में पढ़ा था कि मद्रास इलाके की संयम-परिषद् में भाषण देते हुए वहाँ के एक भूतपूर्व चीफ जस्टिस ने कहा था कि *१७ साल के अनुभव से मै इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि अदालतों में दर्ज होनेवाले*

अपराधों में से प्रतिशत ६५ की जड़ में शराब ही थी ।

शराब पीने से स्नायुओं पर से मनुष्य का प्रभुत्व उठ जाता है और निर्णय-शक्ति पंगु हो जाती है । कारखानों के मालिक और बीमा-कम्पनियाँ इस बात को बड़े ग़ौर के साथ देखती हैं कि शराब का दुर्घटनाओं से कितना गहरा सम्बन्ध है ।

आकस्मिक दुर्घटनाएँ

जूरिच बिल्डिंग ट्रेडस् सिक क्लब की सन् १९०० से लेकर सन् १९०६ तक की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि सप्ताह-भर की दुर्घटनाओं में प्रतिशत २२.१ दुर्घटनाएँ सोमवार के दिन और शेष दिनों में प्रतिदिन औसतन प्रतिशत १५.७ दुर्घटनाएँ होती थीं । इसका कारण यह था कि शनिवार और रविवार को लोग अधिक शराब पीते हैं जिनका असर सोमवार तक बना रहता है ।

लिपज़िग (जर्मनी) के सिक बेनिफिट क्लब की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि मामूली आदमियों *की बनिस्बत दो-तीन गुने अधिक शराबी दुर्घटनाओं के शिकार होते है ।*

वोलकिंनजेन (जर्मनी) फेरॉकलिंगशे आयरन एण्ड स्टील वर्क्स मे पाया गया कि एक सहस्र मजदूरों में ८ शराब न पीने-वाले मजदूर दुर्घटनाओं के शिकार होते थे । और कारखाने के सर्वसाधारण मजूरों में से प्रति सहस्र १२ । इसके मानी यह हुए कि शराब न पीनेवाले मजदूरों में ३३⅓ प्रतिशत दुर्घटनाएँ कम होती है ।

शराब से दुर्घटनाएँ बढ़ जाती हैं, क्योंकि शराब—(१) ज्ञाने-न्द्रियों को मंद कर देती है जिससे आदमी खतरे को देख नहीं पाता । (२) फ़ासले-सम्बन्धी ज्ञान को वह उलट-पुलट कर देती

है। (३) खतरे को किस तरह टालना चाहिए- इस बात का आदमी जल्दी और ठीक-ठीक निश्चय नहीं कर पाता। (४) और अपने हाथ-पैरों पर उसका पूरा-पूरा अधिकार नहीं होता।

इसलिए दुर्घटनाओं का बीमा लेनेवाली कम्पनी कहती है:-

"शराब की आदत तथा ताजे व्यभिचार के कारण कमजोर बने हुए आदमी को, जो अपने शरीर पर काबू नहीं रख सकता, कभी ऐसी मशीनरी पर न काम करने दिया जाय जो खतरनाक हो। वह केवल अपनी जान से ही हाथ नहीं धो बैठेगा बल्कि औरों की जान का भी ग्राहक होगा।"

आत्महत्या

संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में सन् १९०१ से १९१० तक ६२,६६० आदमियों ने आत्महत्या करके प्राण दे दिये। बीमों के मेडिकल डायरेक्टरों की राय को यदि हम मान लें तो इनमें से १४४११ आत्महत्याओं के लिए प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से शराब ही जिम्मेदार थी।

मृत्यु

लिपज़िग के सिक बेनिफिट क्लब की बीमारी और मृत्यु की १९१० की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि जब मामूली आदमी किसी रोग से १०० मरते हैं तब—

शराबी:—

सभी रोगों से	२९१	मरते हैं	जिन मरीजों के ये अंक दिये गये है उनकी उम्र ३४ वर्ष से लेकर। ४५ वर्ष तक थी।
संसर्ग-जन्म रोगों से	१००	,,	
स्नायु-प्रणाली के रोगों से	२६७	,,	
श्वास रोग से (Not tuberculosis)	६६७	,,	
क्षय रोग से (Tuberculosis)	३०	,,	
खून-सम्बन्धी रोग से	१३७	,,	
हाजमे-सम्बन्धी रोग से	२६७	,,	
जख्म वग़ैरा	३००	,,	

लिपज़िग की उसी संस्था की रिपोर्ट हमें बताती है कि १०,००० बीमा किये गये आदमियों में अकाल मृत्यु की संख्या क्रमशः यों थी:—

वर्ष	मामूली	शराबी	स्पष्टीकरण
२५-३४	५३	११२	दो गुने से भी ज्यादा
३५-४४	९७	२८४	क़रीब-क़रीब तिगुनी
४५-५४	१६७	३७२	१२२ प्रतिशत ज्यादा
५५-६४	२९४	३६४	२२ ,, ,,
६५-७४	५८०	७४६	३० ,, ,,

इस तरह शराबी ज्यादा संख्या में बीमार पड़ते हैं, अधिक दिनों तक बीमार पड़े रहते हैं और अधिक संख्या में मरते भी हैं।

अमेरिका के रजिस्ट्रेशन क्षेत्र मे, जिसमें अमेरिका की क़रीब आधी जन-संख्या रहती है, मृत्यु-संख्या के अंक बड़ी सावधानी के साथ रक्खे गये हैं। हिसाब सन् १९०० से लेकर सन् १९०८ तक का २५–६४ वर्ष की आयु के स्त्री-पुरुषों की मृत्यु का है। इन नौ वर्षों में

३३, १८५ मृत्युएँ ऐसे रोगो से हुईं, जिनमें प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष कारण शराब थी।

३२,१६३ मृत्युएं विषम ज्वर से हुईं।

२, २१७ मृत्युएं चेचक से हुईं।

प्रति सप्ताह अमेरिका मे शराब १५०० आदमियों को यमलोक को ले जाती है! *अर्थात् हर आठवें मिनिट में एक जवान स्त्री या पुरुष शराब के कारण अपनी जीवन-यात्रा समाप्त करता है।*

बच्चों पर दुष्परिणाम

मनुष्य अपनी सन्तति को प्राणों से भी अधिक प्यार करता है। वह एक बार खुद मर मिटना पसंद कर लेता है परन्तु उसकी हमेशा यही चेष्टा रहती है कि बच्चों का कहीं बाल भी बाँका न हो। पर शराब इस बात में भी आदमी को घोर पतित बना देती है। अपने बच्चो के सुख-दुःख की परवा न करके कोई काम करनेवाले आदमी को क्या कहा जाय? उसे नर-पशु, नर-राक्षस या नर-पिशाच भी कह दे तो इन भिन्न-भिन्न नामधारी जीवों का अपमान होगा। पशु, राक्षस और पिशाच भी अपनी संतति की कभी ऐसी लापरवाही करते हुए नहीं पाये गये। इस बात मे आदमी शैतान से भी नीच और पतित हो जाता है। कैसे: सो देखिए।

माता या पिता होना एक महान् सौभाग्य और जिम्मेदारी की बात है। इस अमृत-कला का भूतल पर अवतार विषय-विलास की गटरों में लोटने और सड़ने के लिए नहीं हुआ है। हमें यहाँ पर भेजने में परमपिता का हेतु महान, उच्च और उदात्त है। और वह क्या है? वह यही हो सकता है कि हम उसकी दया का दर्शन करें, उसके बच्चों—हमारे अन्य भाइयों की सेवा करें; उनके दुःखो को हलका करें। सब मिलकर अपने परमपिता की गोद में जाकर अनन्त अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त करें। मनुष्य अपने जीवनभर इस ध्येय की अराधना और उपासना करे। जहाँ तक उससे इस आदर्श की सेवा हो सके वह करे और शेष की पूर्ति के लिए संसार में अपना एक प्रतिनिधि परमात्मा से माँगे। उसके मिलने पर उसे वह अपने अनुभव और ज्ञान की थाती देकर उसी ध्येय की अराधना, उसी आदर्श की प्राप्ति की दीक्षा दे और स्वयं चिरन्तन शान्ति को प्राप्त करे।

यह है हमारा वह उच्च और पवित्र आदर्श जिसके लिए हमें अपने आपको तथा हमारे प्रतिनिधि को तैयार करने के लिए प्रतिक्षण प्रयत्न करना चाहिए। अतः हमारी जिम्मेदारी महान् है, सारा संसार इस बात को बड़ी उत्सुकता के साथ देखता है कि हम अपने पीछे हमारे ध्येय की पूर्ति के लिए कैसा प्रतिनिधि छोड़ जाते हैं। यदि वह सत्पात्र होता है तो संसार की आत्मा हमें कृतज्ञता-पूर्वक आशीर्वाद देती है। किन्तु यदि वह कुपात्र साबित हुआ, उसके हाथ संसार की सेवा के बजाय कु-सेवा हुई, संसार के सुख और शान्ति बढ़ाने के बजाय वह दुःख और अशान्ति बढ़ाने का कारण साबित हुआ तो पीड़ित संसार की आहें हमें साक्षात्

स्वर्ग में भी झुलसा डालेंगी और हमें वहाँ से खींचकर धड़ाम से पृथ्वी पर गिरा देंगी। संसार की आत्मा कहेगी, "अपने बेटे को सम्हाल, वह हमारी उन्नति में रुकावटें पेश कर रहा है। हमने इससे सहायता की आशा की थी। पर यह तो उलटा हमें नीचे गिरा रहा है। अब तू इसकी बेहूदी हरकतों को रोक। ऐसे बेटे होने के बजाय तुम लोगों का न होना ही अच्छा था, इत्यादि।" यह है एक माता या पिता की जिम्मेदारी।

परमात्मा की अनन्त शक्तियाँ हमारे आस-पास मँडराती रहती हैं। हमारी ओर से जरा भी मौक़ा मिलते ही वे दृश्य स्वरूप धारण करती रहती हैं। अतः हमें इस बात की बड़ी सावधानी रखनी चाहिए कि उनको संसार में कहीं अकारण अवतार लेने में हम कारणीभूत न हों। प्रत्येक शक्ति उस अनन्त प्रकाश की एक उज्ज्वल रश्मि है। वह हमारे अन्दर से होकर संसार में आविर्भूत होती है। यह प्रकाश वही रंग, वही प्रकृति धारण करेगा जो रंग, जो शुद्धि अथवा अशुद्धि हमारे अन्दर होगी। अतः ख़याल कीजिए कि हमारा उत्तरदायित्व कितना महान् है! इसलिए अपने आपको पवित्र और सतत् जागृत रखने की जरूरत है!

अतः इसके पहले कि ऐसी शक्ति का, ऐसे प्रकाश का जनकत्व हमें प्राप्त हो, हमें अपने आप को उसके शुभजनन और संवर्द्धन के योग्य बना लेना जरूरी है। एक बालक के पाँच जन्मसिद्ध अधिकार होते हैं।

(१) उसके माता-पिता शुद्ध-पवित्र, नीरोग और सच्चरित्र हों। उसका जन्म बिना किसी तकलीफ के हो।

(२) जन्म के समय माता-पिता की हालत ऐसी हो, जिससे वह उनके सम्पूर्ण वात्सल्य प्रेम को प्राप्त कर सके।

(३) उसे अपनी कोमलावस्था में ऊँची संस्कार-शालिनी शिक्षा मिल सके।

(४) ज्ञानावस्था में बुरे पदार्थों, बुरे वायु-मण्डल और कुसंगति से उसकी रक्षा हो और—

(५) सज्ञान होने पर राष्ट्र तथा मानव-जाति की सेवा द्वारा अपना विकास करने के लिए उसे सम्पूर्ण अनुकूलता हो।

वे माता-पिता, वे राष्ट्र और वे बालक धन्य हैं, जिन्हें ये पाँचो अनुकूलताएँ प्राप्त हैं। भावी सन्तति की इन शर्तों को जो स्त्री-पुरुष पूरी कर सकें, उन्हीं का माता या पिता होना धन्य और सार्थक है।

भारत में ऐसे माता-पिता कितने हैं! इसमें से कितनो ने अपनी सन्तति के प्रति इन पुण्य कर्तव्यों का पालन करने की प्रतिज्ञा, चेष्टा या खयाल भी कर के इन अमर शक्तियों का इस भूतल पर स्वागत किया है!—और स्वागत करके उन्हे संसार की सेवा के योग्य बनाया है? हे बाल-भारत और तरुण भारत! हम तेरे घोर अपराधी हैं। परमात्मन् हम आप के दिये विमल-विवेक और अखंड-शक्ति-भंडार को विषय-विलास में बरबाद करने के घोर अपराधी हैं। इन पुण्य-पावन शक्तियों को धोखा देकर इस रौरव नरक मे घसीटने के लिए हम तुम्हारे, उनके और देश के महान् अपराधी हैं!

शराब के विष के शिकार होकर हमने कितना पाप किया है यह अभी कोई नहीं कह सकता। करुणामय की लीला अगाध

है। जब दुःख-वेदना असह्य हो जाती है, तब वह समवेदना-शक्ति का हरण कर लेती है। मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है। और वह दयाघन अदृश्य रूप से उस मनुष्य की विनष्ट शक्ति को दुःख का प्रतीकार करने के लिए जागृत करता रहता है। काफ़ी शक्ति आते ही मरीज़ होश में आ जाता है और पुनः दुःख को दूर करने की चेष्टा की जाती है। भारत की संविद् शक्ति पर परमात्मा ने अभी आवरण डाल रक्खा है। उसके दूर होने पर किसी दिन हमें पता चलेगा कि इस महान् देश की ग़रीब जनता में शराब ने कैसा सर्वनाश किया है। इस समय तो हमें अन्य देशों की दशा देख कर ही अपने देश की दुर्दशा का केवल अनुमान करके रह जाना पड़ता है।

जहाँ-कहीं भी शराब के दुष्परिणामो की विशद् रूप से जाँच की गई है वहाँ यही पाया गया है कि *शराबी माता-पिता* के बच्चे अधिक संख्या में मरते है। बारहवीं इंटरनेशनल कांग्रेस में शराबखोरी के दुष्परिणामों को बताते हुए हेलसिंगफॉर्स युनिवर्सिटी के प्रोफेसर टी० लैटिनेन ने बताया कि जहाँ शराबी माता-पिता के प्रतिशत ८.२ बच्चे कमजोर होते और प्रतिशत २४.८ बच्चे मरते थे, वहाँ शराब न पीनेवाले माता-पिता के प्रतिशत १.३ कमजोर होते और १८.५ प्रतिशत बच्चे मरते थे।

	माता-पिता शराबी	शराब न पीनेवालों के
कमजोर बच्चे प्रतिशत	८.२	१.३
मर गये	२४.८	१८.५
अधूरे हुए	६.२१	०.९४

इसके बाद प्रोफेसर लैटिनेन बताते हैं कि एक दूसरे स्थान पर १९, ५१९ बच्चों की जाँच करने पर नीचे लिखे अनुसार फल पाया गया:—

माता-पिता के	प्रतिशत बच्चे मरे	अधूरे गिरे	और जीवित बचे
शराब न पीने वाले	१.०७	१३	८७
थोड़ी शराब पीनेवाले	५.२६	२३	७७
खूब शराब पीनेवाले	७.११	३२	६८

मतलब यह है कि *ज्यों-ज्यों शराब की आदत बढ़ती गई, बच्चों की मृत्यु-संख्या भी बढ़ती गई।*

डॉ० सॅलिवन शराब पीनेवाली माताओं के बच्चों की करुण-कथा लिखते हुए बताते हैं कि:—

	प्रतिशत बच्चे मर गये
२१ शराब पीनेवाली माताओं के १२५ बच्चों में से	५५.२
तहां	
२८ शराब न पीनेवाली माताओं के १३८ बच्चों में से केवल	२३.९

जैसे-जैसे माता अधिकाधिक शराब पीती जाती है, वैसे-वैसे बच्चों की मृत्यु बढ़ती जाती है, यह बात डॉ० सलिवन की नीचे लिखी तहकीकात से जाहिर होगी।

बच्चे	प्रतिशत	मृत्यु-संख्या	बच्चे	मृत्यु-संख्या
पहले	,,	३३.७	चौथे पाँचवें	६५.७
दूसरे	,,	५०	छठे से दसवें तक	७२
तीसरे	,,	५२.६		

मिरगी के रोगी

बचे हुए बच्चों में से ४.१ प्रतिशत मिरगी के रोगी (Epileptic) थे और शेष कमजोर दिमागवाले ।

शराबी माता-पिता के बच्चों का विकास भी बहुत धीरे-धीरे होता है ।

मनोदौर्बल्य

बिरमिंगघम के खास स्कूलों में पढ़नेवाले २५० दोष-युक्त बालकों की जॉच करने पर उनमें से क़रीब आधे (४१.६ प्रतिशत) के पिता शराबी पाये गये। तुलना के लिए दूसरे स्थान के १०० मामूली बच्चे लिये, उनमें से केवल १७ बच्चे शराबी माता-पिता के पाये गये।

बच्चों में क्षयरोग

शराबी माता-पिता के बच्चे क्षय के शिकार बहुत जल्दी और अधिक तादाद मे होते हैं। प्रोफेसर व्हॉन बुंगे की तहकीकात का फल नीचे दिया जाता है।

माता पिता के			प्रतिशत बच्चे क्षयी पाये गये
कभी-कभी शराब पीने वाले			८.७
प्रतिदिन किन्तु हिसाब से	,,	,,	१०.७
प्रतिदिन बेहिसाब	,,	,,	१६.४
मशहूर शराबी	,,	,,	२१.७

आनुवंशिक सर्वांगीण पतन

बर्न (स्विट्जरलैंड) के प्रोफेसर डेम ने इस विषय में बड़ी लगन के साथ संशोधन किया है। उन्होंने दस-दस परिवारों के

दो संघ लिये। एक शराब पीनेवाला और दूसरा न पीनेवाला। और लगातार बारह वर्ष तक उनका अध्ययन करते रहे। इन दोनों संघों के परिवार केवल शराब को छोड़कर पेशा, रहन-सहन, खान-पान आदि और सब बातों में एक-से थे। उनकी जाँच करने पर डाक्टर डेम ने देखा कि शराबी परिवारों में केवल १० बच्चे (प्रतिशत १७.५) भले-चंगे और शराब न पीनेवाले परिवारों मे ५० बच्चे (प्रतिशत ८२) भले-चंगे थे।

इसके बाद उन्होंने पुश्त दर-पुश्त शराब पीनेवाले परिवारों को लिया। इस जाँच का हिसाब यों बताया जा सकता है:—

पूर्वज	परिवार	अच्छे	बच्चे जल्दी मर गये	दोषयुक्त	कुल बच्चे
सिर्फ पिता शराबी	३	७	७	६	२०
पिता और दादा भी शराबी	६	२	१५	१४	३१
माता और पिता दोनो शराबी	१	१	३	२	६

यही प्रयोग अन्यत्र डॉ० हॉज और स्टॉकर्ड ने क्रमशः कुत्तों और सूअरो पर किया। जिसका फल क्रमशः यों है—

शराब पीने वाला कुत्ता और कुतिया (शराब इतनी नहीं दी जाती थी जिससे नशे के चिन्ह दिखाई दें)	प्रतिशत १७.४ बच्चे जिन्दे रहे। (१५ बच्चे मरे और ८ बदसूरत पैदा हुए, जिनमें से केवल चार जीवित बचे।

शराब न पीनेवाले कुत्ते और कुतिया के बच्चे	एक भी मरा बच्चा पैदा नहीं हुआ। चार बच्चे बदसूरत थे और ४५ मे से ४१ जीवित और स्वस्थ रहे।

डॉ० स्टॉकर्ड ने बड़ी सावधानी के साथ यही प्रयोग सूअरों पर किया। प्रयोग के लिए दोनों नर और मादा सूअर अच्छे हट्टे-कट्टे चुने। परिणाम यह हुआ—

सिर्फ नर शराबी मादा मामूली	२४ बार संयोग करने पर	१२ बच्चे पैदा हुए	जन्म के बाद ७ जल्दी मर गये	५ बुरी हालत में बचे रहे।
नर मामूली मादा शराबी	४ संयोग से	५ बच्चे		२ बचे।
नर-मादा दोनों शराबी	१४ संयोग से	१ बच्चा	पैदा होते ही मर गया।	
नर मादा दोनों शराब से मुक्त	९ संयोग से	१७ बच्चे	सभी स्वस्थ और नीरोग हैं।	

डॉ० लैटिनेन का कथन है माता-पिता की बेवकूफी के कारण पाँच वर्ष की उम्र होने के पहले आधी मानव-जाति इस संसार से चल बसती है।

इसी प्रकार और भी कितने ही अंक और उदाहरण दिये जा सकते हैं। पर अब तो यह बात पूर्णतया सिद्ध हो गई है कि ज्यों-ज्यों स्त्री अथवा पुरुष में शराब की आदत बढ़ती जाती है त्यों-त्यों उसका असर उसकी प्रजनन-शक्ति पर भी पड़ता जाता है। पहले-पहल क्रमशः बच्चों की वृद्धि पर, फिर शरीर

पर इसका असर पड़ते-पड़ते बच्चे अधूरे गिरने लग जाते है और अन्त मे उन दोनों के रजवीर्य की प्रजनन-शक्ति नष्ट हो जाती है। स्त्री-पुरुषों का पारस्परिक और स्वाभाविक शुद्ध प्रेम अशुद्ध हो जाता है। यही नहीं, बल्कि संसार में जितने प्रकार की अनीति और विश्वासघात हैं, वे सब बढ़ते जाते हैं। स्त्री-जाति के सतीत्व और शरीर की रक्षा करने के बजाय पुरुष स्त्री को ओर, और स्त्री पुरुष की तरफ अपवित्र विकार-दृष्टि से देखने लग जाते हैं। और व्यभिचार की दिन-दूनी रात-चौगुनी वृद्धि होती है। इन पापियों को प्रकृति भी सजा देती है। गुप्त रोग पारस्परिक संसर्ग से जाति में बढ़ते हैं और जाति नष्ट होती है।

यह तो स्पष्ट ही है कि प्रत्येक राष्ट्र आचार-पावित्र्य के नियमों की एक निश्चित हद से गिरा नही और वह पराधीन हुआ नही। अनीति और स्वाधनिता बहुत दिन तक साथ-साथ नहीं रह सकते। शराब और स्वाधनिता की तो कभी बनी ही नहीं है

आख़िर आचार-विषयक पवित्रता और उसके कड़े नियम स्मृतिकारो की केवल सनक की उपज नही है। देश और जाति की स्वाधीनता और अस्तित्व उन्हींपर मुख्यतया निर्भर रहते हैं। राष्ट्र की विशेषता देखकर ही जागृति और दूरदर्शी द्रष्टा इन नियमों को गढ़ते हैं। हाँ, कालमान से उनके अन्दर थोड़े-बहुत फेर-फार हो सकते हैं। परन्तु हम उनके अन्तर्गत सिद्धान्तो की तो कभी उपेक्षा नहीं कर सकते। मनुष्य का अधम स्वभाव बार-बार नीति-नियमों के खिलाफ बलवा कर उठ खड़ा होता है। वह

सोचता है कि ये नियम उनके बनाये हुए हैं जो वेदाभ्यास से जड़ बने हुए थे और जिनकी इच्छा विषय-भोगों से पराङ्मुख हो गई थी। वे हमारी परिस्थिति, हम गृहस्थों की दशा, इस जमाने की आवश्यकताओं, लाचारियो आदि को क्या जानें? उन्हे हमारे साथ सहानुभूति होना असम्भव है। उनकी कल्पना कभी इतनी दूर-दर्शी नही हो सकती। हम मानते है कि इस कथन में बहुत अंशो मे सत्य हो सकता है। उनके बताये आचार-नियमों से सम्बन्ध रखनेवाली तफसील की बातो में कुछ फर्क हो सकता है। परन्तु जिस सिद्धान्त को लेकर, राष्ट्र की जिस आवश्यकता और स्वभाव को देखकर उन्होंने ये नियम बनाये थे उनकी उपेक्षा तो हम कभी नहीं कर सकते। अपने बुजुर्गों के अनुभव की उपेक्षा करना महान् मूर्खता होगी। उनके बनाये वे नियम मानव-जाति के अस्तित्व की कुञ्जी हैं। उन्ही के पालन से मानव-जाति अपना अस्तित्व क़ायम रखने की आशा कर सकती है। उन्हीं की सहायता से वह अपने आपको धारण कर सकती है और इसीलिए हमारे आचार्यों ने उन नियमों को धर्म की संज्ञा दी है। उनको भूलना, या उनकी उपेक्षा करना मूर्खता अथवा आत्म-घात करना है। मनुष्य-जाति अपने पूर्वजों के अनुभव को जाँच कर उससे फ़ायदा उठावे, पर यदि वह उसकी उपेक्षा ही करेगी, प्रत्येक बात में श्रीगणेश से ही शुरुआत करेगी, तो प्रगति असम्भव हो जायगी।

शराब और राष्ट्रीय पतन

अब शराब से जो राष्ट्रीय पतन होता है, उसके पृथक् बताने की कोई आवश्यकता नही रह जाती। राष्ट्र व्यक्तियों से बनता है

और हम यह विस्तृत रूप से देख चुके कि शराब व्यक्तियों को कैसे हानि पहुँचाती है ! अतः अब यहाँ तो हम पूर्वोक्त कथन का राष्ट्रीय दृष्टि से सिंहावलोकन ही करना चाहते हैं।

मनुष्य के अनुसार राष्ट्र के भी दो अंग होते हैं। शारीरिक और मानसिक। यदि मनुष्य की मानसिक शक्तियाँ पूर्ण रूप से विकसित हों, नीरोग हो तो शरीर कमजोर होने पर भी वे उस दुर्बल शरीर से ही आवश्यक काम ले सकते हैं। किन्तु यदि शरीर हृष्ट-पुष्ट हो और मनोदशा ठीक न हो तो कोई ठिकाना नहीं कि वह मनुष्य क्या करेगा और क्या न करेगा।

फिर शराब तो मनुष्य के शरीर और मस्तिष्क को भी रोग-ग्रस्त करके राष्ट्र को महान् सङ्कट में डाल देती है। जो राष्ट्र शराब के अधीन होता है, वह *अपनी स्वाधीनता से हाथ धो चुका है समझिए।*

संसार के इतिहासकार ऊँचे स्वर से हाथ उठा-उठाकर कहते हैं कि राष्ट्रों के उत्थान और पतन का कारण संयम और असंयम, नियम-शीलता और विषय-विलास, वीर्य-रक्षा और व्यभिचार आदि ही हैं। और सचमुच जब हम प्रत्येक राष्ट्र या जाति के इतिहास को देखते समय उसके उत्थान तथा पतन-काल का मुकाबला तत्कालीन सामाजिक दशा से करते हैं तब हमे इस कथन की दुःखद सत्यता का अनुभव होता है।

संयमी राष्ट्र बराबर प्रगति करता रहता है। वह अपने बुजुर्गों के अनुभव से लाभ उठाकर उसे नित्य बढ़ाता रहता है। प्रत्येक पुश्त अपनी प्रतिभा से उसे संवर्द्धित, और व्यवहार से दृढ़ करता रहता है। परन्तु जिन राष्ट्रों के अन्दर शराब ने प्रवेश

कर लिया है, उनकी गति उलट जाती है। उनकी प्रगति रुक जाती है। बल्कि उसके सड़े दिमाग़ अपने बुजुर्गों की शिक्षा तथा अनुभव को भी खो बैठते हैं। वे मनुष्य से पशु-कोटि में गिर जाते हैं और किसी बुरे दिन अपनी स्वाधीनता को खो बैठते हैं।

शराब नीचे लिखे अनुसार राष्ट्र का सर्वनाश करती है।

अ. आर्थिक

(१) शराब उस पैसे का हरण कर लेती है जो परिवार के पोषण में लगना चाहिए।

(२) शराब अपने भक्त की कार्य-शक्ति को घटा देती है, जिससे वह परिवार का पोषण करने और राष्ट्र की संपत्ति बढ़ाने के अयोग्य हो जाता है।

(३) फलतः राष्ट्र की उत्पादन-शक्ति भी घट जाती है। और वह क़ंगाल हो जाता है।

आ. शारीरिक

(१) शराब आदमी को कमज़ोर और रोग-ग्रस्त बना देती है।

(२) शराब पीने से आदमी का अपने बदन पर क़ाबू नहीं रहता।

इसलिए सारा राष्ट्र कमजोर और दुर्बल हो जाता है। उसकी सेना किसी विपक्षी सेना का सामना करने योग्य नहीं रह जाती। और न वह व्यापारी प्रतिस्पर्धा मे टिक सकता है।

इ. मानसिक

(१) शराब मनुष्य की उच्च भावनाओं, तथा विचार-शक्ति के निवास-स्थान मस्तिष्क को मूर्च्छित करके उसके अधम विकारों को उभाड़ देती है।

(२) फलतः मनुष्य अपने अधम स्वार्थ या विषय-विलास का शिकार बनकर, अपने आपको तथा समाज को, पतित बना देता है। समाज भीरु, कायर, मूर्ख या निरंकुश तथा दुःसाहसी हो जाता है।

(३) और फिर किसी भी उच्च आदर्श का वह अनुसरण नही कर सकता और न उसके लिए लड़ सकता है। दया, प्रेम और आत्मोत्सर्ग की भावनाएँ जाती रहती हैं और निष्ठुरता, पारस्परिक द्वेष, ईर्ष्या और अधम स्वार्थ उनका स्थान ग्रहण कर लेते हैं।

यह परिस्थिति एक सत्तात्मक-शासन वाले तथा प्रजासत्तात्मक शासन-पद्धति वाले राष्ट्रों मे भी एक-सी हो जाती है। कह नहीं सकते कि इन दोनों में से किसकी अवस्था अधिक भयंकर होगी। क्योकि जहाँ एक सत्तात्मक शासन-पद्धति वाले राष्ट्र मे देश एक व्यक्ति के वश में होता है तहाँ प्रजासत्तात्मक-शासन वाले राष्ट्र में ऐसे लाखों व्यक्तियों मे शासन की जिम्मेदारी बॅटी रहती है।

राजा यदि शराबी होता है तो प्रजा में भी शराबखोरी की सीमा नही रहती। राजा यदि व्यभिचारी हुआ तो यहां भी प्रतिदिन मोटरों में स्त्रियां उड़ना शुरू हो जाती हैं।

शराब पीने पर जो-जो खेल होते हैं उनका तो कहना ही क्या? प्रजा के धन की और अपने स्वास्थ्य तथा वीर्य की

होली करके प्रतिदिन दिवाली मनाई जाती है। जहाँ यह हाल है वहाँ का जीवन पशु-जीवन है। न स्वाधीनता है, न वहाँ सद्गुणों के विकास को ही कोई मौका मिलता है। जहाँ देखिए पतन का मसाला मौजूद है। वह राष्ट्र कभी उन्नति नहीं कर सकता। विदेशी उसे घर दबाते हैं। अधिकारी विदेशियो के हाथ की कठपुतली हो जाते हैं और प्रजा दीन पशु !

परन्तु प्रजासत्तात्मक राज्यो की दशा क्या होती है ? शराब से स्वभावतः मनुष्य के ऊँचे मानवोचित सद्गुण लुप्त हो जाते हैं और वह पशु के समान हो जाता है। वही विकार, वही अन्धापन, वही विषय-क्षुधा, वही द्वेष, वही क्रोध, सब कुछ वही। जो अपना ही शासन नही कर सकता, वह दूसरे का क्या करेगा ? छोटी-छोटी बातो पर वे उभड़ जाते हैं, और ऊटपटांग काम करने लग जाते हैं। विकार उनमें बहुत बढ़ जाता है। पतन की सामग्री अपने अन्दर बनाये रखकर मनुष्य बने रहने की आशा करना व्यर्थ है। यह कैसे हो सकता है कि शराब अविरत रूप से, मनुष्य के उदात्त भावो की हत्या करती रहे, उसकी ऊँची भावनाओं को जला-जलाकर खाक करती रहे, उसके हृदय को काम, क्रोध, और लोभ का अड्डा बनाती रहे और हम उससे शान्ति और सदाचार की ही आशा करें ? *भारत में अछूत कहे जाने वाले हरिजनो को भी हम तब तक नहीं उठा सकते जब तक उनके अन्दर शराब की रोक नहीं हो जाती।*

शराब से मनुष्य पशु बन जाता है। उसे न बच्चों का खयाल रहता है, न स्त्री का और न अपने स्वास्थ्य का ही। नहीं, उसे तो अपनी आजीविका का भी खयाल नही रहता। भूखे बच्चे

और स्त्री घर पर सोचते हैं कि वह मजदूरी लेकर आएगा तो उससे सामान खरीदकर रोटी बनेगी। पर वह अपनी मजदूरी को बरबाद करके आता है और नशे में धुत्त होकर देता है अपने बीवी-बच्चों को लात, घूँसे और गालियों का पुरस्कार। यह दशा है उन वर्गों की जो हमारे समाज के आधार हैं। जबतक इस दशा में से हम उन्हें बाहर नहीं निकाल देते तबतक हमारा विद्या-वैभव भी किस काम का ? क्या यह काफी है कि हम खा-पीकर विषय-विलास में लोटते रहें, या भगवद्भक्ति का नाम लेकर अपने-आप को समाज में उच्चकोटि का नवीन अस्पृश्य वर्ग बनाये रक्खें ? हमारे सारे राजनैतिक आन्दोलन तबतक पंगु रहेंगे जबतक हम इस बुराई की जड़ पर ही कुठाराघात नहीं करेंगे; वह बुराई जो भारत की दरिद्र जनता की दरिद्रता को बढ़ा रही है और उसके स्वास्थ्य गृह-सौख्य और राष्ट्रीय जीवन को नष्ट करती जा रही है।

३

भारत, शैतान के पंजे में

यह बताने के पहले कि भारत-सरकार की शराब के विषय मे क्या नीति है, यह आवश्यक है कि हम पहले पूर्वस्थिति का गरुड़ावलोकन कर लें। वेद-काल में हमे शराब के विषय मे कोई साहित्य या उल्लेख नहीं मिलता। तथापि कितने ही पश्चिमी विद्वान् सोम को ही शराब समझकर यह विधान करते हैं कि वेद-काल में भी शराब का व्यवहार होता था। परन्तु इस विषय पर विद्वानो का मत-भेद है। बात इतनी पुरानी हो गई है कि उसके विषय मे ठीक-ठीक कहना कठिन है। ×

हाँ, यह जरूर कहा जा सकता है कि इसके बाद के स्मृति तथा पौराणिक साहित्य में शराब का खूब उल्लेख मिलता है। शराब भी एक प्रकार की नही, कई प्रकार की होती थी। और उसके नाम भी ऐसे भिन्न-भिन्न होते थे, जिससे लोक-रुचि का स्वयं पता चल सकता है। अन्य सभी देशों के प्राचीन साहित्य के समान भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य मे भी शराब के गुणो का वर्णन पाया जाता है। उसे प्रसन्ना, अमृता, वीरा, मेधावी, मोदिनी, सुप्रतिभा, मनोज्ञा, देव-सृष्टा आदि × कहा गया है। परन्तु ये तो वे नाम थे जिनसे वह जन-साधारण में परिचित

× परिशिष्ट देखिए।

थी। किन्तु आयुर्वेद तथा स्मृतिकार इसकी बुराइयों से अपरिचित नहीं थे। बल्कि उन्होंने कड़े से कड़े शब्दों मे उसकी निन्दा की है। भगवान् मनु ने अपने सुरा-प्रकरण मे—

यक्षरक्षःपिशाच्चान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्

कहा है और ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य को सुरापान से परावृत किया है। भगवान् पाराशर "अगम्यागमन" तथा "मद्य-गो-मांस भक्षणादि" के लिए चांद्रायण का प्रायश्चित्त बताते हैं। महाभारत में शुक्राचार्य ने कहा है कि सुरा पीनेवाला 'ब्रह्म-हा' (ब्रह्म-हत्या का पातकी) होगा। बुद्ध-काल में भगवान् बुद्ध ने अपने संघ के पाँच नियमों में मद्यपान-निषेध को आवश्यक बताया है। अशोक के समय देश प्रायः सुरापान से मुक्त-सा हो रहा था। परन्तु आगे चलकर मध्यकाल में फिर मदिरा का प्रभाव बढ़ गया। मुसलमान आक्रमणकारियों के साथ सुरापान की भी भारी बाढ़ आई। राजपूत भी भगवान् मनु की आज्ञा को ताक़ में रखकर सुरापान करने लग गये। इस समय लिखे हुए काव्य-ग्रन्थों में तत्कालीन समाज का खासा चित्र दिखाई देता है। इतिहास कहता है कि अलाउद्दीन को जब एकाएक शराब से वैराग्य हुआ तो उसने राजमहल की सारी शराब फेंकवा दी। सड़कों पर शराब का कीचड़ हो गया। जहाँगीर की शराबखोरी प्रसिद्ध ही है। औरङ्गजेब जरूर उससे दूर रहता था, किन्तु उसके उत्तराधिकारियों को अपने भाग्य-रवि के अस्त के दुःख को भुलाने के लिए शराब का ही आसरा लेना पड़ता था। इस समय सारे देश में अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो रहे थे। क्रांति की लहरों से देश आन्दोलित हो रहा था। जनता का जीवन संकट में था।

अंग्रेजी राज्य की स्थापना के समय देश एक तरह से क्रान्ति में से गुजर रहा था अतः शराब पर राज्य की तरफ से उतना कठोर नियंत्रण नहीं था। हाँ, समाज की धाक जबरदस्त थी। परन्तु शराब पीनेवाले शासकों के आने पर उनकी सभ्यता का शासितों पर असर पड़ना स्वाभाविक था। सन् १८३०-३२ में कामन्स-कमिटी ने हॉल्ट मैकेन्जी नामक एक गवाह से पूछा था "अंग्रेजों की बस्तियों के पास-पड़ौस में रहनेवाले भारतीयों पर अंग्रेजों की रुचि, रहन-सहन और आदतो का भी कोई असर पड़ा या नहीं ?"

हॉल्ट मैकेन्जी ने कहा—"अगर कलकत्ता पर से अन्दाज लगाया जाय तो निःसन्देह भारतीयों मे अंग्रेजी विलास-सामग्री की रुचि काफी बढ़ रही है। अपने मकानात वे वैसे ही सजाने लग गये हैं, कई घड़ियाँ रखते हैं और सुना है *शराबें भी पीने लग गये हैं।*"

इसी बुराई को देखकर पीड़ित हो महामना केशवचन्द्रसेन कहते हैं "शराब ने समाज को इतना पतित, व्यभिचारी और नास्तिक बना दिया है कि उसका सुधार करना बड़ा कठिन हो रहा है। एक तो अंग्रेजी शिक्षा के कारण भारतीयों की अपने धर्म पर से श्रद्धा हट गई और दूसरे शराब की दूकानों की वृद्धि हो गई।"

भारत के प्रत्येक महान् धर्म ने शराब की निन्दा ही की है। यहाँ पर शराब की बुराई इतनी नहीं फैलती यदि एक ओर से जनता को शराब की दुर्गन्धभरी शिक्षा देकर उसकी श्रद्धा को चूर-चूर न कर दिया जाता और दूसरी ओर सुगठित रूप से

उसके सामने प्रलोभन न खड़े किये जाते ।

सरकार ने अपनी आबकारी नीति शुरू से ऐसी रक्खी है जिससे "*गैर क़ानूनी रूप से शराब बनाने के लिए जनता को उत्तेजित न करते हुए कम से कम शराब से ज्यादा से ज्यादा आय ली जाय।*" अपने हाथों में ज्यों-ज्यों देश के शासन-सूत्र आते गये, उसने आबकारी विभाग को भी सुसंगठित करना शुरू कर दिया ।

अंग्रेजों के पूर्व-शासकों के जमाने में भारत मे ठीके की प्रथा थी । निश्चित प्रदेश में शराब बनाने और बेचने के ठीके नीलाम होते और जो सब से अधिक दाम देता उसे उस प्रदेश में शराब बनाकर बेचने का अधिकार दे दिया जाता । ब्रिटिश सरकार अपनी आवश्यकता और समयानुसार इस पद्धति में परिवर्तन करती गई । शराब की आय को अपने उपर्युक्त उद्देश के अनुसार बढ़ाने तथा शराब की उत्पत्ति को और खपत को नियन्त्रित करने के लिए सरकार ने एक नवीन पद्धति शुरू की । उसने देखा कि उपर्युक्त पद्धति में जिसे 'फार्मिङ्ग या आउट स्टिल' पद्धति कहते हैं, शराब पर वह काफी नियन्त्रण नहीं रख सकती । और उत्पन्न भी गिना-गिनाया मिलता है । इसलिए सरकार ने शराब बनाने तथा बेचने के काम को भी अपनी देख-भाल में कराने की व्यवस्था की । इसे कहते हैं "डिस्टिलरी" पद्धति । इसके अनुसार सरकार एक निश्चित स्थान में अपनी डिस्टिलरी—शराब का कारखाना बना देती है और फी गैलन निश्चित फीस लेकर किसी से अपनी देख-भाल में शराब बनाने के लिए कहती है । इस पद्धति में शराब के बनाने और बेचने के दोनों अधिकार कभी

एक ही व्यक्ति को नहीं दिये जाते। दोनों पद्धतियों में शराब की दूकानों की संख्या और स्थान सरकार स्वयं निश्चित कर देती है। आउट स्टिल पद्धति में सरकार को भी नुकसान होता था और प्रजा को भी। क्योंकि प्रतिस्पर्धा के कारण ठीके की क़ीमत बहुत चढ़ जाती और उस हालत में ठीकेदार शराब की बिक्री बढ़ा करके अपना नफ़ा बढ़ाने की कोशिश करते। फलतः इधर जनता अधिक पतित होती और सरकार को भी गिने-गिनाये रुपये मिलते। दूसरी पद्धति से सरकार का फ़ायदा बढ़ गया। किन्तु जनता की भारी हानि होती है। क्योंकि, शराबख़ोरी को न बढ़ाने की अपनी नीति उद्घोषित करने पर भी शराब का बनाना और बेचना दोनों काम सरकार के हाथों में आ जाने के कारण उसे हमेशा अधिक पैसा प्राप्त करने की इच्छा बनी ही रहती है।

हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों में शराबख़ोरी मना होने के कारण यदि इस बुराई को सरकार मिटाना चाहती तो फ़ौरन मिटा सकती थी। किन्तु उसके सामने तो था धन का सवाल। और क्यो न हो ? आबकारी की आय एक तो जल्दी इकट्ठी की जा सकती है। दूसरे उसे इकट्ठा करने मे खर्च भी बहुत कम लगता है। लोगो पर जबरदस्ती भी नहीं करनी पड़ती जैसी कि जमीन का लगान इकट्ठा करते समय करनी पड़ती है। इसलिए अधिकारी स्वभावतः इस तरह सरकार की आय बढ़ाने के लिए झुक पड़ते थे।

"बल्कि, आबकारी विभाग के अधिकारियों को समय-समय पर सरकारी आय बढ़ाने के लिए सरकार की ओर से प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से सूचना भी मिल जाया करती थी।

जिन अधिकारियों के हलके से कम आय होती उनकी वार्षिक रिपोर्ट में निन्दा की जाती। उनका इस महकमे में रखना न रखना अक्सर इन रिपोर्टों पर निर्भर रहता था। मि० केन ने सन् १८८९ में हाऊस ऑव कामन्स में सरकारी रिपोर्टों से ऐसे कई उदाहरण बताये थे जिनसे पता चलता था कि किस तरह अधिकारियो को सरकारी आय बढ़ाने के लिए उत्साहित किया जाता है।" ×

फल वही हुआ जो होना था। सरकार सब जगह सेंट्रल डिस्टिलरी पद्धति को शुरू नहीं कर पाई थी। कहीं यह पद्धति काम करती थी तो कहीं "आउट स्टिल पद्धति।" सेन्ट्रल डिस्टिलरी पद्धति सरकार ने शुरू तो कर दी, पर वह महँगी पड़ी। बग़ैर आय बढ़ाये चारा नहीं था। इधर ठेकेदार लोग भी प्रतिस्पर्धा के कारण पूरी तरह निचोड़ लिये जाते थे। उन्हें भी अपने नफे की चिन्ता तो रहती ही थी। वे क़ीमत कम कर-करके शराब की खपत बढ़ाकर अपना नफ़ा सीधा करने की कोशिश करने लगे। प्रजा पर दोनों ओर से प्रयोग शुरू हुए। सरकार की ओर से दूकाने कम तो की गई किन्तु बड़ी चतुराई के साथ। नई दूकानें, बाजार, देहात का रास्ता या सड़क तथा मिल-कारखानो के पड़ौस में ही खोली जातीं। फलतः जनता में शराबखोरी जोरो से फैलने लगी। यह देख उन्नीसवीं सदी के अन्तिम हिस्से मे अनेक "संयम-संस्थाएँ" खुलने लगीं। देश में मद्यपान-निषेधक साहित्य की बाढ़ आ गई। इस विषय पर नाटक, प्रहसन, उपन्यास आदि लिखे जाने लगे। शराबख़ोरी

× फांयनेंशियल डेवेलपमेंट्स इन मॉडर्न इण्डिया।

को दूर करने को भारत-सरकार से कई बार प्रार्थना की गई। परन्तु व्यर्थ। अन्त में मामला इंग्लैण्ड की साधारण-सभा तक पहुँचा। हाऊस ऑव कामन्स ने तारीख ३० अप्रैल १८८९ को एक प्रस्ताव द्वारा इस बुराई की ओर भारत-सरकार का ध्यान आकर्षित किया और तत्काल भारतीय जनता की अशान्ति को मिटाने के लिए आज्ञा दी।

तब जाकर भारत-सरकार को अपनी तमाम नीति मे नीचे लिखा संशोधन करना पड़ा।

(१) शराब तथा सब प्रकार के मद्यों पर जितना हो सके कर बढ़ा दिया जाय।

(२) इसके व्यापार पर उचित नियंत्रण रख दिया जाय।

(३) प्रत्येक स्थान की सुविधा के अनुसार मद्य और मादक पदार्थों के बेचनेवाली दूकानो की संख्या को नियमित कर दिया जाय।

(४) लोकमत को जानने की कोशिश की जाय। और उसके जान लेने पर उसकी ओर एक उचित सीमा तक ध्यान भी दिया जाय।

लोकमत का उल्लेख करते हुए भी पाठकों की नजर से उसकी अवहेलना की ध्वनि न छूट सकेगी! लोक-कल्याण का तो बात ही दूर है। परन्तु लोकमत की ओर ध्यान देने मे भी उचित और अनुचित सीमा का ख़याल किया जा रहा है।

इस नीति पर अमल करने के लिए नीचे लिखे उपाय काम मे लाना तय हुआ।

(१) आउट स्टिल या फार्मिंग पद्धति को बन्द करना।

(२) सेन्ट्रल डिस्टिलरी पद्धति को शुरू करना।

(३) देशी शराब पर ज्यादा से ज्यादा कर लगाना। सिर्फ इस बात का ख़याल रहे कि विदेशी शराब पर लगाये गये कर से यह कर ऊँचा न बढ़ने पावे।

(४) दूकानों को कम करना।

यह सुधार भारत-सरकार ने अपने ४ फरवरी १८९० के डिस्पेच में लिखकर साम्राज्य सरकार के पास भेजा था।

अब हम देखें कि इस नीति का सरकार की आय तथा शराब की पैदावार पर क्या प्रभाव पड़ा ?

वर्ष	कुल उत्पन्न करोड़ों में	असल आय करोड़ों में
१८६१	१.६	१.५
१८६५	२.	१.७
१८६९	२.२	१.९
१८७३	२.२	२.१
१८७७	२.४	२.३
१८८१	३.४	३.३
१८८५	४.१	४.०
१८८९	४.८	४.७
१८९३	५.३	५.१
१८९७	५.४	५.२
१९०१	६.०	५.८
१९०५	८.४	८.१

इस आय की वृद्धि का कारण क्या है ? सरकार की ओर से कहा जाता है कि महकमा आबकारी अधिक अच्छी तरह से

सुसङ्गठित होने के कारण शराब की गैर-क़ानूनी पैदायश रुक कर सरकार की देखभाल मे खोली गई दूकानो में वह बढ़ गई। और दूसरे जन-संख्या की वृद्धि के कारण भी तो कुछ आय बढ़नी चाहिए ? परन्तु वास्तव में हमें तो इस वृद्धि का कारण सरकार की धन-लोभ की वृत्ति ही दिखाई देती है ! जबतक वह बनी रहेगी—जबतक सरकार भारतीय जनता के व्यसनो से अपने खजाने भरने की नीयत रक्खेगी, शराब की खपत कम न होगी।

इसके बाद सरकार के अर्थ-विभाग की ओर से ता: ७ सितम्बर १९०५ को नीचे लिखी नीति घोषित की गई:—

"सरकार उन लोगों की आदतों में हस्तक्षेप करना नहीं चाहती जो शराब का परिमित उपयोग करते हैं। सरकार इसे अपने कर्तव्य से बाहर समझती है ! उसकी राय में यह ज़रूरी है कि उनकी आवश्यकताओं को पूरी करने की व्यवस्था कर दी जाय। पर सरकार यह ज़रूर चाहती है कि जो लोग शराब नही पीते उनके मार्ग मे जहाँ तक हो सके प्रलोभनो को कम किया जाय। अतिपान की वृत्ति को भी रोका जाय और इस नीति पर अमल करने के लिए सरकार आय के विचारों को बिलकुल गौण समझे। इस नीति पर अमल करने का सब से बढ़िया तरीक़ा यही है कि जहाँ तक हो सके करों को बढ़ा दिया जाय। पर इस बात का ख़याल रहे कि करों के बढ़ाने के कारण शराब की ग़ैर-कानूनी उत्पत्ति को कहीं उत्तेजन न मिलने पावे या लोग इस सौम्य शराब के बदले अधिक विषैले पदार्थों का सेवन करने न लग जावें इसी नीति को ध्यान मे रखते हुए शराब की दूकानो की संख्या भी जहाँ

तक हो सके घटा दी जाय। साथ ही प्रलोभनों को कम करने के ख़याल से समय-समय पर इस बात की कड़ी जाँच होती रहनी चाहिए कि शराब की दूकानें कैसे स्थानों पर हैं। जहाँ तक हो सके इस में लोकमत के अनुकूल रहा जाय। इस बात की ओर विशेष ध्यान देने की ज़रूरत है कि दूकानो पर शराब अच्छी रक्खी जाय, न कि खराब जो स्वास्थ्य को हानि पहुँचावे।" ×

समझदार पाठक जान गये होंगे कि इस चिकनी-चुपड़ी भाषा के भीतर कैसा निर्दय लोभ छिपा हुआ है। सम्पूर्ण शराब-बन्दी को अपने कर्तव्य से बाहर बताने में अर्थ-विभाग को तिल-भर भी संकोच नहीं हुआ। यह घृणित गुलामी हमें क्या-क्या न सुनायेगी। अपने स्वार्थ के लिए एक महान राष्ट्र को नशे के जाल मे फँसाकर उसे दीन-दुर्बल, मूर्ख और गुलाम

× तुलना कीजिए इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री श्रीरैमसे मॅकडोनल्ड के इन वचनों से—"कुछ लोग कहते हैं हम जनता को पार्लमेण्ट द्वारा क़ानून बनाकर व्यसनों से मुक्त नही कर सकते। जनता की आंखों मे धूल डालनेवाली ऐसी बेवक़ूफ़ी भरी, ग़लत दलीलों से मैं घृणा करता हूँ। इन्हें ऐसे लोग पेश करते हैं जिनके कोई दिमाग़ नहीं होता और मूर्ख लोग ही इनमें विश्वास भी कर सकते है। समस्त संसार का अनुभव निश्चित, असंदिग्ध और अकाट्य है और वह यह है कि पार्लमेण्ट में क़ानून बनाकर हम औरतों को और मर्दों को ज़रूर व्यसनो से मुक्त कर सकते हैं।"

× × × ×

"शराब का व्यापार समाज के जीवन के लिए अब ख़तरनाक सीमा तक पहुँच गया है और वह देश की राजनीति को दूषित करने लग गया है।"

बनाये रखने में भला लोभी को कैसे संकोच हो सकता है! सरकार शराबी की शराबखोरी को उसका 'हक़' मानती है। उसे व्यसनों से मुक्त करने के अपने कर्तव्य की उसे क्यों परवा होने लगी! पर इसपर अधिक लिखना व्यर्थ है। इन वर्षों में शराब की दूकानो पर सत्याग्रह करनेवाले हज़ारों स्वयं-सेवकों को गिरफ्तार करने और उनपर लाठियाँ बरसानेवाली सत्ता की नीति और नीयत के विषय में भी क्या अब किसी को शक रह सकता है! शराब न पीनेवालों के मार्ग में प्रलोभन न रखने, अतिपान की वृत्ति को रोकने, दूकानों की संख्या घटाने और "जहाँ तक हो सके लोकमत के अनुकूल रहने की" सारी बातों में अब कौन विश्वास कर सकता है? "अतिपान को रोकने के लिए करो को बढ़ाना" और उसमें इस बात का ध्यान रखना कि "कहीं गैर-कानूनी शराब की उत्पत्ति को प्रोत्साहन न मिलने पाये" अपने व्यापार को नियमित रूप से चलाने के एक ढंग के सिवा और क्या है? इसीलिए अमेरिका के विख्यात सुधारक श्री पुसीफुट जानसन ने अपने एक भाषण में कहा था—

"शराब की समस्या का अध्ययन करने के लिए मैंने तीन बार संसार की यात्रा की है। पर मैंने यह कहीं न देखा कि शराब के बेचनेवालो ने उनके द्वारा पालन करने के लिए बनाये गये क़ानूनों को माना हो। लोगों को संयम की शिक्षा देने के हेतु शराब बेचना जनता को कमख़र्ची सिखाने के लिए जुआ-घर खोलने अथवा गृह-सौख्य को क़ायम रखने के लिए व्यभिचार की इजाजत देने, और ब्रह्मचर्य या सतीत्व की रक्षा के लिए वेश्यालय खोलने के समान है। ऐसी बेवकूफी भरी

योजनाएँ कभी सफल नहीं हो सकतीं। न कभी सफल हुई हैं और न आगे होंगी।"

श्री राजगोपालाचार्य अपने प्रोहीबिशन मेन्युअल में लिखते हैं—

"अनुभव तो सरकार के इस दावे का समर्थन नहीं करता कि वह "शराब के व्यापार का नियन्त्रण कर रही है और साथ ही कम से कम खपत और अधिक से अधिक आय के सिद्धान्तानुसार प्रसंगवश यों ही थोड़ी आय भी कर देती है। भारत में जो बात सर्वत्र दिखाई देती है वह सरकार का शराब पर वास्तव में नियन्त्रण नहीं, एकाधिकार है और वह एकाधिकार भी ऐसा जो अधिकांश प्रान्तीय सरकारों को उनकी कुल आय का एक चौथाई हिस्सा कमाकर देता है। यहाँ तो सरकार की स्थिति में शराब बनानेवाली कम्पनी की-सी है। इसलिए इससे तथा ठीकों की बिक्री से मिलनेवाले पैसों की वजह से इस व्यापार को अनुदिन बढ़ाने की सरकार की रुचि और इस "कम से कम खपत" का मेल ही कैसे बैठ सकता है? नाबालिग आदि को शराब न देने के कुछ नियन्त्रणों को छोड़कर कि जिनपर बहुत सख्ती से अमल नहीं किया जाता परवानों के अनुसार जिसे जितनी चाहे शराब बेची जा सकती है। इस तरह शुरुआत तो पहले-पहल "शराब पीने की इजाजत" से होती है। पर आगे चलकर उनकी "रक्षा" होने लगती है और धीरे-धीरे नौबत पहुँचती है जाकर ठेठ शराब के प्रचार तक।" सरकार भले ही कहती रहे कि "लोकहित के लिए आय-सम्बन्धी तमाम विचारों को गौण स्थान दिया जाय" पर भारतवर्ष में अब

हरएक शिक्षित और समझदार आदमी जानता है कि इन बातों पर कितना विश्वास करना चाहिए। अपने दिवालिये शासन को चलाने में होनेवाली कठिनाइयों का सामना करने के लिए कभी-कभी कर भी बढ़ाने पड़ते हैं तो कहा जा सकता है बढ़ते हुए अतिपान को रोकने के लिए यह किया जा रहा है, और बिक्री कम होते ही यह कहकर कर घटा भी दिये जाते हैं कि कहीं लोग गैर-कानूनी शराब न बनाने लग जायँ। खैर उपर्युक्त नीति को अंगीकार करने के बाद के अंक करोड़ो में यों हैं।

वर्ष	आय करोड़ो में	वर्ष	आय करोड़ो में
१९०५	८.४	१९२०	२०.४
१९०७	९.४	१९२२	१८
१९११	११.४	१९२४	१९.५
१९१४	१३.२	१९२६	२०
१९१७	१५.१	१९२८	२३.५

इस बढ़ती हुई आय का कारण हमारी सरकार की ओर से बताया जाता है लोगों की बढ़ती हुई सम्पत्ति ×।

उपहास की सीमा होती है। यह अंधापन है या अज्ञान? यह इस दरिद्र गुलाम देश के दुखित हृदय पर किया हुआ मर्मोपालम्भ है या विदेशियों को अंधा बनाने के लिए उनकी आँखो में फेंकी हुई धूल! हरसाल करोड़ों रुपये ले जाकर इस देश को निस्सत्व बनानेवाली कठोर-हृदय सरकार के मुँह में ही यह

× (देखिए Decennial Report, Moral and Material Progress of India 1911-12 पृष्ठ २०५-०६ और भारत-सचिव का भारत-सरकार को भेजा सरकारी पत्र २९ मई १९१४)

घृणित असत्य शोभा दे सकता है। अब हमें यहाँ पर भारत की दरिद्रता को सिद्ध करके नहीं दिखाना है। यह प्रयास इसी देश के भाइयो के लिए है, जिन्हें भारत की दरिद्रता पुस्तक-ज्ञान की नहीं, अनुभव की वस्तु है। तथापि पाठक यह न समझें कि यह आय केवल कर के बढ़ जाने के कारण है। नीचे लिखे नक़शे से ज्ञात होगा कि शराब की उत्पत्ति और व्यवहार भी यहाँ बढ़ गया था। खूबी यह कि शराब की दूकानों की संख्या तो घटती गई है परन्तु शराब की तादाद बढ़ती गई है। इसके मानी यह हैं कि घाटा पहुँचानेवाली दुकानों को सरकार बन्द करती गई और आकर्षक जगहों पर नई दूकानें क़ायम करके अधिकाधिक शराब बेचकर अपनी आय बढ़ाती गई। शराब की वृद्धि के साथ कर भी बढ़ना चाहिए था न ? परन्तु पाठक करों के कोष्ठक में कुछ और ही पायेंगे। पहले यह देखें कि दूकानें किस प्रकार घटीं।

शराब और मादक पदार्थों की दूकानों की संख्या

वर्ष	शराब की दू०	मादक द्र० दू०	कुल
१८९९-१९००	८२,११७	१९,७६६	१,०१,८८३
१९०५-१९०६	९१,४४७	२१,८६५	१,१३,३१२
१९१०-११	७१,०५२	२०,०१४	९१,०६६
१९१५-१६	५५,०४६	१७,३१६	७२,२६२
१९१८-१९	५२,६८३	१७,१५२	६९,८५३
१९२६-२७	—	—	४३,०००

समस्या दिन-ब-दिन मुश्किल

त्रैमासिक प्रोहिबिशन (शराब-बन्दी) के सम्पादक लिखते हैं—

"सरकार के पक्षवाले चाहे जो कहते रहे, पर इसमें कोई शक नहीं कि उसने किसानों और कारखानों के मजदूरों को लुभाने के लिए समस्त देश में शराब की दूकाने प्रत्येक सड़क के किनारे और शहरों में अच्छे मौके की जगहो पर खोल रक्खी है। इन दूकानों पर शराब बेचने के हक को सरकार नीलाम करती है और वह उसी को दिया जाता है जो सबसे अधिक टके दे। बेचारा यह ठेकेदार भी अपने टके वसूल करने के लिए सालभर ग्राहक बढ़ाने की फिक्र में रहता है जिससे अगले साल उससे भी अधिक ऊँची बोली लगानेवाले को वह खड़ा कर देता है। इस तरह बुराई हर साल तेजी से बढ़ती ही जाती है। और सरकार के इस नियन्त्रण का कोई अर्थ नहीं रह जाता कि बिक्री ऐसे ही लोगों द्वारा कराई जाय जिन्हें बिक्री बढ़ाने का लोभ न हो। सरकार ने शराब-बन्दी की समस्या को इन ६० वर्षों में १०० गुना ज्यादा मुश्किल बना दिया है। सन् १९०० मे केवल ६ करोड़ रुपयों के लिए वह शराब पर निर्भर थी। पर आज तो अपनी बजट की पूर्ति के लिए वह २५ करोड़ इस व्यापार से इकट्ठा करती है। इस हिसाब से १८७० में शराब-बन्दी जितनी आसान थी वह १९०० में न रही और १९०० में जो बात थी वह आज न रही"।

दूकानें जरूर घटती गई हैं पर शराब की खपत बराबर बढ़ती गई है:—

देशी शराबों की खपत प्रूफ× गैलनों में

प्रान्त	१९०१-०२	१९११-१२	१९१८-१९
बम्बई और सिन्ध	१७,१७,७७५	२९,३७,०३४	२६,७०,१५४
मद्रास	८,७५,७५५	१६,२८,१७८	१६,७२,४९२
पंजाब	२,४८,५२४	४,५९,७९६	४,५६,८३७
मध्यप्रदेश बरार	२,६६,१८०	१०,६६,८८०	१२,२१,१३७
युक्तप्रान्त	१२,१४,७९८	१५,३८,५०४	१४,६८,६२०
बंगाल, बिहार और उड़ीसा	६,०८,२९८	१८,७६,३१९	२०,६९,९०९
आसाम		२,३८,९४७	२,२५,५७१
ब्रह्मा		२६,७८६	१,२४,४०९
विदेशी शरावे और डि० पद्धति से बनी देशी श० } लिक्विड गैलनो मे		४९,६१,१४६	५७,१८,१३७

× "प्रूफ स्पिरिट" मे पानी और अलकोहल दोनो बराबर मात्रा में (आधा-आधा) होता है ।

"ओवर प्रूफ" शराब मे पानी के बजाय अल्कोहल अधिक होता है । "अण्डर प्रूफ" शराब में अलकोहल के बजाय पानी अधिक होता है । डिग्रियाँ "केवल अल्कोहल की प्रतिशत मात्रा" बताती हैं । शराब की शुद्धाशुद्धता से उनका कोई सम्बन्ध नहीं ।

प्रान्तवार आबकारी आय

प्रान्त	रकबा १००० मीलों में	जन-संख्या लाखों में	प्रति वर्ष आय लाखों में								
			१९००	१९११-१२	१७-१८	१९-२०	२१-२२	२३-२४	२७-२८	२८-२९	३१-३२ (बजटसे)
मद्रास	१४२	४२३	१३६	३०१	४०४	५३६	४८९	५११	५३४	५५१	४९६
बम्बई	१२४	१९३	१०१	२०३	३२०	४०२	३४७	४११	३९४	३८४	३१२
बंगाल	७७	४६७	१४४	१३४	१५६	१८१	१८४	२१०	२२५	२२६	२०७
युक्तप्रान्त	१०६	४५४	६९	१११	१४३	१७४	१४५	१३२	१४४	१३४	१२२
पंजाब	१००	२०७	२६	६४	८५	१२४	१०८	१०६	१२६	१२६	१०८
बिहार उड़ीसा	८३	३४०	—	१०१	११८	१२९	१२४	१८३	१९७	१९०	१६१
मध्यप्रदेश	१००	१३९	१८	९१	११५	१४८	१०४	१३१	१२२	१२५	९४
आसाम	५३	७६	२९	४४	५४	६७	६२	६२	७०	६६	५८
ब्रह्मा	२३४	१३२	५०	७३	६२	१०४	९८	११०	१२४	१३४	१०९

अख़बारों से ज्ञात हुआ है कि ३१–३२ के आन्दोलन के कारण बंगाल-सरकार को इस विभाग में २४ लाख की घटी रही।

वास्तव में जिस प्रान्त मे शराबखोरी बढ़ती हुई नजर आती वहाँ उसे रोकने के लिए सरकार को उसी या उससे कुछ अधिक परिमाण में कर बढ़ाना चाहिए था। परन्तु कर बढ़ाये गये इस परिमाण में:—

प्रान्त	प्रतिशत शराब की वृद्धि	कर-वृद्धि प्रतिशत
बम्बई	५१	३८
सिन्ध	३५	२२
मद्रास	८६	३१
पंजाब	८१	३३
युक्तप्रान्त	२०	३४
मध्यप्रदेश	३००	५४

जनता की प्रत्यक्ष हानि

पर किसी प्रान्त की आबकारी से होनेवाली आय को देखकर हम यह नहीं कह सकते कि इस प्रान्त के लोग इतना धन शराब या मादक द्रव्यों पर बरबाद करते है। यह तो उसका एक अंश-मात्र है। वास्तव में लोग इससे कई गुना अधिक खर्च करते हैं। सरकारी आय तो उस धन-प्रवाह का एक हिस्सा-मात्र है, जिसे लोग कलवार की दूकान पर दे आते हैं। देखिए, मदरास इलाके में सरकार की आबकारी आय है ५ करोड़ १० लाख रुपये। पर वास्तव में जनता का कितना रुपया बरबाद होता है—

	तादाद (गैलन)	कीमत
ताड़ी	१५,००,००,०००	१२,७५,००,०००
(१० हजार से ऊपर दूकानो में)		
बीयर	९,००,०००	८,००,०००
तेज स्पिरिट	२६,८६,०००	३,२२,००,०००
अफीम और अन्य मादक द्रव्य	पौंड १६७,९००	७८,००,०००
		१६,८३,००,०००

इसमें से सरकार को करो से जो आय होती है बाद कीजिए	५,००,००,०००
शराब और मादक द्रव्यो पर कुल व्यय	११,५०,००,०००

अब तुलना कीजिए

मदरास प्रान्त में ज़मीन का लगान	७,५०,००,०००
" " शासन-व्यय	२,५०,००,०००
" " न्याय पर व्यय	१,००,००,०००
" " पुलिस विभाग	२,००,००,०००
" " शिक्षा-विभाग लगभग	१,५०,००,०००
" " रोग-निवारण और आरोग्य लगभग	१,५०,००,०००
" " अकाल पीड़ितों की सहायता वगैरा	७,००,०००

इसी प्रकार समस्त भारत मे सरकार को शराब और मादक द्रव्यो के कर से लगभग २५ करोड़ रुपये की आय होती है।

आबकारी आय का भार

	फी आदमी × सन १९२७-२८	
बम्बई	२६५	पाई
मद्रास	२४०	,,
ब्रह्मा	२०१	,,
आसाम	१७९	,,
मध्यप्रदेश	१६३	,,
पंजाब	११३	,,
बिहार-उड़ीसा	१०६	,,
बंगाल	९२	,,
सीमाप्रान्त	८४	,,
युक्तप्रान्त	६०	,,

इन विषों का शिकार हर एक आदमी शराब या मादक द्रव्य खरीदते समय जो कीमत देता है उसमें नीचे लिखे हिस्सेदार हैं।

(१) शराब तथा अन्य मादक पदार्थों की बनावट मे लगनेवाले द्रव्यो की क़ीमत

(२) परिश्रम

(३) देखभाल की फी

(४) वितरण व्यय

× भारत में अनेक जातियाँ शराब नहीं पीती इसलिए वास्तव में शराब पीनेवाली जातियों पर शायद पचासों गुना इससे अधिक भार है। जिसके कारण वे बरबाद हो रही हैं।

(५) मादक द्रव्य की पैदायश की तादाद पर लगाया गया सरकारी कर

(६) ठीकेदार के नीलाम द्वारा सरकार को मिलनेवाले रुपये और

(७) ठीकेदार का नफा

इस प्रकार देखा जाय तो ऊपर बताये हुए २५ करोड़ की अपेक्षा जनता को कहीं अधिक रुपये मादक द्रव्यों पर बरबाद करने पड़ते हैं। इस विषय के विशेषज्ञ श्री राजगोपालाचार्य तथा दीनबन्धु ऐण्ड्रयूज साहब का कथन है कि भारत में शराब और मादक द्रव्यों पर १ अरब से भी कहीं अधिक रुपये प्रतिवर्ष बरबाद होते हैं।

जरा तुलना कीजिए:—

शराब और मादक द्रव्य	१,००,००,००,०००
सैनिक व्यय	५८,००,००,०००
शासन व्यय समस्त प्रान्त और ब्रह्मदेश सहित	२३,००,००,०००
पुलिस	१२,००,००,०००
शिक्षा-विभाग	१३,००,००,०००
न्याय-विभाग	५,६४,००,०००
भूमि-कर	३७,००,००,०००
आयकर	१७,००,००,०००
रेल की आय (मुसाफिरों से)	४०,००,००,०००
,, ,, (माल द्वारा)	७९,००,००,०००

हमारे
पाप का पहाड़
तुलना कीजिए !
और शर्म से सर नीचा
झुकाइए !
शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक हानि अपार
शराब और मादक द्रव्य पर १,००,००,००,००० रुपयों की होली
सेना व्यय ५८,००,००,०००
लगान ३७,००,००,०००
आयकर
१७०००००००
शासन व्यय २३ करोड़
पुलिस १२
करोड़
शिक्षा १३
करोड़
न्याय
५

शराब के बनाने में भी जिन खाद्य पदार्थों (नाज या फल,का उपयोग होता है उनकी सारी पोषक शक्ति नष्ट होकर एक महा भयंकर विष मे परिणत हो जाती है। इसलिए शराब के बनाने मे लगने वाला धन, परिश्रम और समय देश की प्रत्यक्ष एक जबरदस्त हानि है। यों तो भारत में कई प्रान्तो में "ताड़ी" बनती है परन्तु अकेले मद्रास प्रान्त में प्रतिवर्ष २७००००० नारियल खजूर और ताड़ के पेड़ठोके पर दिये जाते हैं जिससे केवल वहाँ कम से कम ११,००,००,००० रुपये के नारियलों की हानि होती है। जरा सोचिए कि इस अभागे देश मे—जहाँ लोग दाने-दाने के लिए तरसते हैं कितनी खाद्य-सामग्री ताड़ी और दूसरी तरह की शराबों मे बरबाद करके लोगो को शराब पिलापिलाकर उनके शरीर और मन की शक्तियों को नष्ट किया जा रहा है !!!

भारत मे जिस श्रेणी के लोग प्रायः शराब पीते हैं, उनकी दशा को देखकर हृदय मे करुणा और बड़ा दुःख उत्पन्न होता है। वह अभागा इन दूकानो की ओर उसी तरह आता है जिस तरह पतिंगे दीपक पर आत्मनाश के लिए दौड़ते हैं। जिस समय उनके बच्चे मारे भूख के तड़पते हैं और स्त्री मातृ-प्रेम से व्याकुल होकर बच्चो के पेट की चिंता में जलती हुई पति की राह देखती रहती है, यह अभागा अपनी दिन-भर की कमाई खोकर कहीं मार-खाकर, कभी सिर से पैर तक कीचड़ मे लथ-पथ हो कर, तो कभी खून से नहाता हुआ अपने शराबी दोस्तों के साथ रात के दस-दस बजे घर पहुँचता है। कुटुम्ब का पालन-पोषण करनेवाले अपने पति की यह दशा देखकर उस

बेचारी गृहलक्ष्मी की क्या हालत होती होगी सो तो वही जाने। एक के बाद एक बुरा वर्ष आता जाता है, जीवन-संघर्ष अधिकाधिक भीषण हो रहा है और उसमें भी यह शराब का शैतान एक ग़रीब आदमी की आय को निगल जाता है। फिर भी हमारे शासकों को यह भद्दा मज़ाक सूझता है कि लोग सम्पन्न होते जा रहे हैं इसलिए शराब की बिक्री बढ़ रही है। हाँ, इंग्लैंड में भले ही यह बात सत्य साबित होती होगी। मगर यहाँ तो बेचारे ग़रीब लोग प्रायः अपने जीवन की भयंकरता को भुलाने के लिए ही शराब पीते हैं और पीते हैं होश मे आने पर उस भयंकरता को और भी नग्न रूप मे देखने के लिए! कैसा दैव-दुर्विपाक है? देश की इस भीषण परिस्थिति की उपेक्षा तो केवल धनलोलुप विदेशी सरकार ही कर सकती है। हाँ, और उपेक्षा कर सकते हैं अपने उत्तरदायित्व, बल, पौरुष, सम्मान, स्वाधीनता और सर्वस्व को खोकर गुलामी की खाई में सड़नेवाले उससे भी अधिक ग़ैर जिम्मेवार एवं अपने अधम स्वार्थों के लिए अन्धे बने हुए लोग भी।

[४]

भारत में विदेशी शराबें

पाठको को शायद यह खयाल न रहा होगा कि अभी तक हमने जो अंक दिये हैं वे केवल देशी शराब के हैं जो सरकार के आबकारी विभाग द्वारा बिकतीं है। परन्तु इसके अलावा भी इस देश का अपरिमित धन प्रतिवर्ष विदेशी शराबो के लिए बाहर भेजा जाता है।

अंगरेजी सभ्यता के पुरस्कारस्वरूप केवल कोट. पतलून और बूट ही हिन्दुस्थानियो ने नही अपनाये बल्कि अनेक दूसरी चीजे भी, जिनमे वहाँ की शराब भी एक महत्वपूर्ण वस्तु है। ऊंची अंगरेजी शिक्षा पाने पर जब हिन्दोस्तानियो को ऊंची-ऊंची नौकरियां भी मिलती हैं तब उन्हे अपने प्रभुओ के यहाँ कभी-कभी खाना खाने या चाय पीने के लिए भी जाना पड़ता है। और ऐसे अवसरो पर शराब पीने का शुभ संस्कार भी सम्पन्न हो जाता है। किसी के यहाँ खाना खाने के लिए जाने पर यजमान को कोई चीज लेने से इन्कार करना निरा जंगली-पन कहलाता है, इस भावना से कितने ही युवक इस "देवदुर्लभ" चीज का स्वागत करते हैं। गोरी फौजे, फौजी अफ़सर, मुल्की अफसर, राजा-रईस, ठाकुर, और इनके अन्य आश्रित एवं प्रभावित लोग मिलकर भारत मे करोड़ों रुपये विदेशी शराबो के पीछे स्वाहा कर जाते हैं। और चीजों की भाँति देशी शराब

में भी तो देशी भद्दापन है न ! कौन इज्जतदार आदमी उन गंदी—खराब दूकानो पर जाकर शराब पीयेगा । क्या विदेशी शराब सभ्यता की निशानी नही है । और सुविधा कितनी ?—जहाँ चाहो बोतल और वह खूबसूरत सुन्दर प्याला ले जाओ । और सबसे बड़ी चीज तो है सोसायटी ! कहाँ वे "अपढ़, गधे-हिन्दुस्तानी किसान" और कहाँ ये सुसभ्य आंग्ल देशीय युवक-युवतियाँ ! नौबत अब यहाँ तक पहुँच गई है कि जो विदेशी शराब पीना नही जानता, असभ्य समझा जाता है । चार मित्र इकट्ठे होते हैं तब अगर "जेनरल इंटरेस्ट" की कोई बात-चीत छिड़ती है तो यही—"अच्छा बताइए मिस्टर आप "बायनोना" पीते हैं या "बोवरिल" ! बोवरिल के बाद अगर सीजर मिल जाय तो कहना ही क्या ?"

पर हममें से कितने ही लोग तो इन विदेशी शराबों के नाम सुनकर ही चकित हो जाते हैं । साधारण आदमी नही जानता कि बीयर, रम, ह्विस्की, वाइन आदि में क्या भेद हैं । इसलिए यदि यहाँ पर इन भिन्न-भिन्न शराबों का परिचय भी दे दिया जाय तो अनुचित न होगा ।

बीयर—जौ अथवा इसी तरह के नाज से यो बनाई जाती है—जौ पानी मे भिगोकर उगने तक गरम जगह मे रक्खे जाते है । कुछ रोज बाद उन्हे सेककर पीस लिया जाता है । फिर एक बड़े चौड़े बरतन में रखकर उन्हे सड़ने देते हैं । फिर बड़े-बड़े हौजो मे डालकर उन्हे साफ कर लेते हैं । बाद मे स्वाद तथा मादकता बढ़ाने के लिए हॉप्स वग़ैरा चीजे डाल दी जाती हैं । (हॉप्स मे वही विष होता है जो गांजा-भांग या चरस मे होता है)

एल } यह भी बीयर ही हैं। सिर्फ स्वाद और सुगन्ध
पोर्टर } भिन्न होती है।

पोर्ट
शेरी } अंगूर के रस से बननेवाली शराबे।
शैम्पेन

ह्स्की—गेहूँ, जौ, राई, आदि से। बड़ी तेज होती है।

सायडर—ऐपल—सेबफल के रस से बनती है।

रम—गन्ने के गुड़ से बनाई जाती है।

ब्रैण्डी—अंगूर के रस से बनी शराब है परन्तु इसमें अलकोहल की मात्रा कहीं अधिक होती है।

पर ब्रैण्डी तथा अन्य तरह की शराबें दूसरे ढंग से पानी या दूसरे पेयों में अलकोहल मिलाकर ब्रॉण्डी की-सी खुशबू या स्वाद बनाकर—भी तैयार की जा सकती हैं।

१३ प्रतिशत से अलकोहल की अधिक मात्रा रखनेवाली शराबे "फॉर्टीफाय" करके अर्थात् उनमे शुद्ध अलकोहल ऊपर से मिलाकर तैयार की जाती हैं। शराबो के नाम उनके बनने के स्थानों के अनुसार भी होते हैं।

नाज या फल के सड़ने पर उसकी सारी पोषण-शक्ति नष्ट हो जाती है। इसलिए यह कहना कि शराबे पौष्टिक होतां हैं लोगो को सरासर धोखा देना है।

प्रतिशत अलकोहल	नाम शराब
४ से ८	बीयर, एल या पोर्टर
८—१२	ताड़ी
१०—२५	वाइन्स
२५—३५	अरक या देशी शरावें
३५—४०	स्पिरिट
लगभग ५०	जिन, रम, ब्रैण्डी, ह्विस्की

स्पष्ट ही प्रत्येक शराब की मादकता उसके अन्दर रहने-वाले अलकोहल की मात्रा तथा प्रत्यक्ष शराव के परिमाण पर निर्भर है। जो परिणाम एक ड्राम अरक से होगा उसके लिए कहीं अधिक ताड़ी की मात्रा की दरकार होगी।

तमाम पौष्टिक या शक्ति-वर्द्धक कही जानेवाली शरावों मे १५ से २५ प्रतिशत अलकोहल होता है। इसी कारण तमाम अच्छे-अच्छे डाक्टर उनकी निन्दा करते हैं और उन्हे आदमी के शरीर और दिमाग के लिए हानिकर बताते हैं।

लन्दन-अस्पताल के डॉक्टर हचिन्सन इनके बारे में लिखते हैं—"इन शरावों का इस्तेमाल करने की सिफ़ारिश किसी हालत में नहीं की जा सकती।' बल्कि तमाम डाक्टरों को चाहिए कि इनकी उत्पत्ति और प्रचार को हर तरह से रोकें।"

सन् १९१४ में इंग्लैंड की साधारण सभा ने पेटेण्ट दवाओ की जॉच के लिए एक सिलेक्ट कामटी की नियुक्ति की थी। पूरी जाँच के बाद उसने अपनी रिपोर्ट में लिखा है—

"इसमे कोई सन्देह नहीं कि बहुत से आदमियों को इन शरावों और पौष्टिक पेयों के पीने से ही शरावखोरी की लत

लग जाती है।"........भिन्न-भिन्न प्रकार की शराबो और पेयो मे नीचे लिखे अनुसार अलकोहल विष की मात्रा होती है—

बोवरिल शराब	२० प्रतिशत
लेमको शराब	१७ ,,
विनकारनिस	१९.६ ,,
बेप्डल्लूस वाइन	२० ,,
ग्लेरिडनिग्स वाइन	२०.८ ,,
ऐम्ब्रेक्ट्स कोका शराब	१५ ,,
स्वायर और पौण्ड की शराब	१७ ,,
कोलमन की कोका शराब	१७ ,,
सावर की शराब	२३ ,,
हाल की शराब	१७.८ ,,
विन मैरिआनि	१६ ,,
सेन्ट रैफ़ल टॉनिक शराब	१६ ,,
कैरिक्स लिकिड पेप्टोनोइडस	२० ,,
पैना पेप्टोन	२० ,,
आर्मर्स न्यूट्रिटिव एलिक्सिट ऑव पप्टोन	१५ ,,
कार्नो विन	१५ ,,
जूनोरा	११.९ ,,
वायन्नोना	१९ ,,
लीडिया पिरबास विजिटेबल कम्पाउण्ड	२० ,,

हाल की शराब मे इसके अलावा कोका पत्तों का अर्क़ (अर्थात् कोकीन) होती है।

बहुत कम लोग जानते हैं कि 'भारत में विदेशी शरावें कितनी खपती है। आबकारी आय में इसका कहीं जिक्र तक नहीं मिलेगा। सायर के अंकों से पता चलता है कि विदेशों से आनेवाली शराब पर सरकार को सिर्फ करों से नीचे लिखे अनुसार आय होती है:—

	रुपये
१९२६–२७	३५२८६०००
१९२७–२८	३६६९९०००
१९२८–२९	३५७१६०००
१९२९–३०	३७६६३०००
१९३०–३१	३३१७६०००

पर इससे तादाद का ठीक-ठीक पता नहीं लग सकता, वह इस प्रकार है। अंक गैलन के हैं।

	बीयर आदि लिकर्स	वाइन	स्पिरिट	डिनेचर्ड स्पि.
१९२३–२४	२८४६३१६	२२५३३६	१३००२४९	३६६३८८
१९२७–२८	४४९९८१४	३०४१४१	१४०३३८८	९१११२५

१९२९–३० कुल ७५७९००० गैलन }
१९३०–३१ कुल ७१८२००० „ } ५ प्रतिशत कमी शायद आंदोलन के कारण

१९२३–२४	१९२७–२८
२८४६३१६	४४९९८१४
२२५३३६	३०४१४१
१३००२४९	१४०३३८८
३६६३८८	९१११२५
४७,३८,२८९	७१,१८,४६८

इन अंकों पर सरसरी नजर दौड़ाने से पता चल जायगा कि सन १९२३-२४ के बजाय इन ४-५ वर्षों में विदेशी शराब की आयात कहीं अधिक बढ़ गई है। १९२३-२४ में ४७३८२८९ गैलन से एकाएक ७११८४३८ गैलन पर संख्या पहुँच गई। और १९३०-३१ मे आन्दोलन इतना जोरों पर होने पर भी इसकी बिक्री पर हम अधिक असर नही डाल सके। जरा ध्यान से अध्ययन कीजिए; पिछले साठ वर्षों में इस घृणित वस्तु के व्यापार ने इस देश में किस तरह तरक्की पाई है—

वर्ष	विदेशी शराब—गैलनों में
१८७५—७६	७०११७७
१९०४—०५	१२९७६११
१९२७—२८	७११८४३८

पच्चीस-तीस वर्ष पहले सन १९०५—६ में शराब वग़ैरा चीजों की खपत की जाँच के लिए एक कमेटी मुक़र्रर हुई थी उसने इन विदेशी शराबो के सम्बन्ध में लिखा था—"सरकार नहीं चाहती कि इन विदेशी शराबो का प्रचार भारत की आम जनता में हो। इसलिए इनकी बिक्री उन्हीं जगहो मे शामिल है जहाँ इसका इस्तेमाल करनेवाली युरोपियन और पारसी बस्तियाँ हैं।" पर पता नही आजकल सरकार की क्या नीति है। आजकल तो निःसन्देह विदेशी शराबो की बिक्री केवल इन्हीं लोगों के लिए सीमित नही है। इससे साधारण आदमी तो सिवा इसके और क्या अनुमान लगा सकता है कि सरकार इस व्यापार को मनमाना बढ़ने देना चाहती है और जितनी अधिक आय मिल सके वसूल करना जानती है।

प्रान्तीय सरकारें और भी आगे बढ़ रही हैं। उन्होंने विदेशी ढंग की शराबें यहीं पर बनवाकर तमाम जनता को बिना रोकटोक बिकवाना भी शुरू कर दिया। यह देखिए १९२६-२७ के अंक हैं (इंपीरियल गैलनों में)

प्रान्त	स्पिरिट	माल्ट शराबें
पंजाब	२५५६५	१४८६९३१
मद्रास	२६५१८	५४०६७६
सीमा प्रान्त	८७७८	२२४०३४
ब्रह्मा	५१७५	१७०१२५
मध्यप्रदेश	५२४१	९६१७२
युक्तप्रान्त	२१२६७	९०६५०
बम्बई	३२२५१	४४४०३
सिन्ध	१३१	४८५६
बिहार-उड़ीसा	१८५९	१८३

कई प्रान्तो की सरकारों ने स्थानीय नई शराब की बिक्री बढ़ाने और बाहर से आनेवाली शराबों का मुक़ाबला करने के लिए उनकी बिक्री पर रु० २१-१४-० से महसूल घटाकर १७-८-० कर दिया है। फलतः करों की आय और शराबों की खपत का बढ़ना स्वाभाविक ही है। अकेले पंजाब में इनकी ९० प्रतिशत बिक्री बढ़ गई जिसके लिए सरकार ने १४३ नई दूकाने खोलीं ताकि विदेशी शराबों की बिक्री पर "कुछ नियन्त्रण हो।"

परन्तु वह वैदेशिक व्यापार भी बराबर ज्यो का त्यों जारी ही है। ज़रा इन अंकों पर नजर डालिए

(गैलन)

	२३-२४	२७-२८
एल, बीयर और पोर्टर	२८३६७९३	४४८७१७८
ब्रॉण्डी	३४८४०८	४२५६९३
जिन	८५१८२	११४१०८
लिकर्स	१३९०५	१६३९३
रम	१२३१४२	९०६५९
ह्विस्की	५२६८१३	५४७३५९
कुल	३९३४२४३	५६८१४२६

पाँच वर्ष मे १७४७१८३ गैलन बढ़ गये !!

क्या ये अंक ही सरकार की नीति को स्पष्ट करने के लिए काफी नही हैं। वह तो टके कमाना चाहती है। लोग देशी शराब पीयेंगे देशी देंगी, विदेशी मांगेंगे विदेशी दी जायगी। आप हज़ार टीकाएँ कीजिए यहाँ कोई परवा नही है। लोगो की "उचित जरूरत" (Legitimate need) को पूरी करना प्रत्येक सरकार का काम ही जो है !

भारत में विदेशी शराबों की आयात (गैलनों में)

	१९२४-२५	२५-२६	२६-२७	२७-२८	२८-२९
बीयर	३३३८२९४	३४९८३४५	३८२००४८	४४८७१७८	४३७०४०२
सायडर	११३४९०	१२५२४	९९८४	१२७३६	१२२४२
स्पिरिट	१६५९१११९	१९०९९[illegible]२	२१३५४९१	२२१४५०३	२११४९१३
वाइन	६०९७३६	२७२४५५	२९५७२०	३०४१४१	२९८०६२

सरकारी कर से आय (रुपयों में)

बीयर-सायडर	१६२३१६८	१८०१४२०	१९४८४६२	२९१२३९१	२१५९१.५
स्पिरिट	२१९९८७४७	२५१९०३८९	२२६६४३५२	२१५२३६६९	२११८३०२५
वाइन	१४१०२८४	१४०७२२४	१५१८६६८	१४५००८२	१४७६५८७

('आवकारी' जुलाई १९३० से)

विदेशी शरावें वेचनेवाले ठेकेदारों की संख्या सन १९२६-२७ में इस प्रकार थी—

सीमाप्रान्त	२२६	पंजाब	७०८
मदरास	५५९	ब्रह्मा	६७४
बम्बई	१९७	बिहार-उड़ीसा	१९६
बंगाल	६९६	मध्यप्रदेश बरार	२५९
युक्तप्रान्त	१०२०	आसाम	१२४

कुल ४६५९

'फारेन लिकर्स इन इण्डिया' नामक लेख में श्री हरबर्ट ऐण्डरसन साहब लिखते है—"इस विषय के अध्ययन से हम अखीर में इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि विदेशी शराबों की बिक्री देश मे बेहद बढ़ती जा रही है। इस बुराई के लिए भारत सरकार जिम्मेवार है पर वह न तो खुद अपने क्षेत्र में इसे रोकने के लिए कुछ कर रही है और न प्रान्तों में।"

यह कहना व्यर्थ है कि अब यह विभाग मंत्रियो के हाथो में आ गया है। १०० वर्ष के शासन के बाद सारी असली सत्ता अधिकारियों के हाथों में चली गई है। पचीस वर्ष पहले भारत-मंत्री से प्रार्थनाएँ की गई थी। तब वही सलाहकार बोर्ड और लायसेंसिगबोर्ड बने। पर इन बेचारो के हाथो में भी सत्ता का नाम नहीं।

१०६

अफ़ीम

[१]

परिचय और इतिहास

"अहिफेनं गरलमेव"

भारतवर्ष अफीम के लिए संसार में बहुत विख्यात है। किन्तु आजकल यहाँ इसकी पैदायश बहुत कम कर दी गई है। इसलिए कितने ही लोग इसकी उत्पत्ति का हाल भी नही जानते। वस्तुतः अफीम एक पौधे के फल के छिलकों से निकाला हुआ रस है। इसका पौधा कोई तीन-चार फुट ऊँचा होता है। इसकी पत्तियाँ कंगूरेदार और फूल बड़े ही सुन्दर होते हैं। फल भी आकार में कम सुंदर नहीं होते। इनके अन्दर वे छोटे-छोटे दाने होते है जिन्हे हम खस-खस कहते हैं। खस-खस खाने मे मधुर और शक्ति-वर्द्धक होती है। अफीम के पौधे कई प्रकार के होते हैं जिनके फूलों के रंग भी चित्र-विचित्र पाये जाते हैं। परन्तु भारतवर्ष मे केवल दो ही प्रकार के पौधे देखे गये हैं। एक सफेद और दूसरे लाल फूल वाले। सफेद फूलवाले पौधे में अफीम अधिक होती है और लाल फूलवाले पौधे में बीज ज्यादा होते हैं। भारत में अक्सर सफेद फूल वाली अफीम ही अधिक होती है। बंगाल, युक्तप्रान्त, पंजाब, बिहार, मालवा और गुजरात में अफीम की खेती होती है। इनमें से मालवा और बिहार की अफीम विदेशों मे भेजी जाती है। भारतवर्ष से प्रायः ८।९ करोड़ रुपये क़ीमत की अफीम और ६०-६५ लाख रुपये

की खसखस प्रतिवर्ष विदेशों में जाती है। भारतीय अफीम के वैदेशिक व्यापार का मनोरंजक इतिहास आगे दिया गया है।

अफीम की खेती के लिए बड़ी उपजाऊ ज़मीन की जरूरत होती है। वर्षाकाल में खेत को खूब जोतकर उसमें खाद वग़ैरा डालने के बाद कार्तिक मे बीज बोया जाता है। माघ में पौधे फूलने लगते हैं। फूलों के झड़ जानेपर उसमे फल लगते हैं। इन सड़े हुए फूलों को किसान इकट्ठा कर लेते हैं और मिट्टी के ठीकरे मे उन्हे कुछ गरम कर लेनेपर उनकी रोटी बना लेते हैं। आगे चलकर इसी रोटी में अफीम के गोले लपेटे जाते हैं। फूलों के झड़ जानेपर कोमल फल आते हैं। तब किसान बड़े सबेरे उठकर चाक़ू से फल के छिलके को दो-तीन जगह लम्बा-लम्बा चीर देते हैं। उसीके द्वारा दूध बह-कर बाहर निकलता है। दूसरे दिन किसान उस दूध को निकाल-कर मिट्टी या चीनी के बरतन में तेल डालकर उसमे रखते है। बरतन में इतना मीठा तेल डाल दिया जाता है कि वह दूध या रस तेल मे डूब जाय। सब पौधो का रस इकट्ठा हो जाने पर उस मीठे तेल मे मलकर उसके गोले बनाकर बेचा जाता है या सरकार को दे दिया जाता है।

भारतवासियो को यह बताने की जरूरत नही है कि अफीम कितनी विषैली चीज है; इसके 'गुणो' को तो भारत का अदने से अदना आदमी जानता है। कितनी ही ग़रीब औरतें अपने दुखो जीवन से ऊबकर अफीम खा लेती हैं और आत्महत्या कर लेती है। सच पूछा जाय तो अफ़ीम भारत मे आत्म-हत्या का एक उपाय ही बना लिया गया था। पर लोगो का यह ग़लत ख्याल

बन गया है कि जो विष इतना भयंकर है वह थोड़ी-थोड़ी मात्रा में देने से मनुष्य की बीमारी को अच्छा कर सकता है। इसी भ्रम में पड़कर कितने ही लोग अफीम खाना शुरू कर देते हैं और सदा के लिए इस बुरी आदत के शिकार बने जाते हैं। *अफीम बीमारी को तो दूर नहीं करती। परन्तु शरीर को सुन्न करके हमारे दर्द को मिटा देती है। अगर मृत्यु मानी बीमारी का मिट जाना हो तो अफीम बड़ी उपकारी चीज़ है।* पर जान-बूझकर मृत्यु को कौन बुलाने की इच्छा करेगा? बेचारे अपढ़-कुपढ़ लोग अपने अज्ञान के कारण यही करते हैं। डाक्टर भी जब रोगी के दर्द को खूब बढ़ा हुआ देखते हैं, वह छटपटाता है, नींद नहीं आने पाती, तब उसे अफीम का इन्जेक्शन दे देते हैं। थोड़ी देर के लिए वह बेहोश हो जाता है और बाद नशा उतरने पर फिर वही छटपटाहट शुरू हो जाती है।

अफीम में मैकोनिक एसिड, मार्फिया, कोडाइया, थिबाइया अथवा पैरे मार्फिया और नार्कोटिन नामक भयंकर विष होते हैं।

प्राचीन इतिहास

पहले-पहल अफीम के पौधे का आविष्कार यूनान के निवासियों ने किया। होमर आदि यूनानी कवियों के काव्य-ग्रन्थो में इसका वर्णन पाया जाता है। किन्तु यूनानियों ने इसके उत्तेजक (?) और मादक गुणो का आविष्कार किया उससे कहीं पहले अरब लोगो ने अफीम की जानकारी ठेठ चीन तक फैला दी थी। ईसवी सन की तीसरी सदी मे इसके गुणों की खोज यूनान में होने लगी। यूनान के थियोफ्रेस्टस, वर्जिल, प्लिनी, डियोस्कोराइड्स

वग़ैरा लेखकों ने मौके-मौके पर इसके गुणविशेष और क्रिया का उल्लेख किया है। रोमन-साम्राज्य के समय सिर्फ एशिया मायनर की अफीम का ही संसार को पता था।

भारत में आठ सौ वर्ष पहले लिखे "भाव-प्रकाश" में अफीम के विषय मे यों उल्लेख पाया जाता है:—

"उक्तं खसफलक्षीरमाफूकमहिफेनकं ॥"

और "आफूकं शोषणं ग्राहि श्लेष्मघ्नं वातपित्तलं ॥"

शार्ङ्गधर मे इसकी क्रिया पर लेखक यों अपना मत प्रकट करता है:—

"पूर्वं व्याप्याखिलं कार्यं ततः पाकंच गच्छति।"

"व्यपायि तद्यथा भङ्गा फेनंचाहि समुद्भवं ॥"

परन्तु ईसा की सोलहवी सदी के पहले भारत मे अफीम के विषय में कोई जानकारी नही पाई जाती। ज्ञात होता है कि बिहार में कोई दो-ढाई सौ वर्ष पूर्व अफीम की खेती शुरू की गई थी। सोलहवीं सदी में भारत में अफीम की पैदायश अच्छी तरह होने लग गई थी। बल्कि मालवा में तो अफीम की खेती और उसका व्यापार और कारखाने एक महत्वपूर्ण वस्तु बन बैठे थे।

मध्यकाल में अफीम के उपयोग के विषय मे संसार मे बड़ा भ्रम रहा है। चीनी लोग इसे "ईश्वरीय रस" कहते थे। भारतवर्ष में भी इसे बच्चों और बूढ़ों के लिए एक अमूल्य औषधि समझा जाता था। किन्तु अब तो संसार में इसकी भयंकरता पूर्णतया सिद्ध हो गई। भारतवर्ष से चीन में प्रतिवर्ष हजारों पेटियाँ जाती थीं। जब चीन को इस वस्तु की भीषणता का

पूरा-पूरा खयाल हुआ तब उसने एक स्वर से इसका विरोध करना शुरू किया। किन्तु भारत मे इसका प्रचार कम नहीं है। आइए, पहले हम यह देख लें कि भारत में अफीम का व्यवहार किस तरह होता है।

[२]

प्रयोग और परिणाम

प्रयोग

अफीम का कई तरह से प्रयोग होता है। बहुत से लोग तो सिर्फ कच्ची अफीम की गोलियाँ बनाकर खाते है। कुछ लोग तमाखू की तरह उसे पीते भी हैं। डॉक्टर लोग अफीम का इञ्जेक्शन देते हैं और बहुतेरी दवाइयो के असर की छाप ग्राहको पर डालने के लिए, धूर्त वैद्य और डॉक्टर थोड़ी अफीम भी उनमे डाल देते हैं। कई पेटेण्ट दवाइयाँ इस तरह की होती हैं।

पर दवा के स्थान पर तो अफीम का बहुत कम उपयोग होता है। उसका व्यवहार अक्सर नशे के लिए अधिक होता है, और इस उपयोग की बुराई के विषय मे कही दो मत नहीं है। कलकत्ता की नेशनल क्रिश्चियन कौंसिल के श्रीयुत् पैटन देशभर के नामी-नामी डॉक्टरों से जानकारी प्राप्त कर के अपनी "ओपियम इन इण्डिया" नामक पुस्तक मे लिखते है कि भारत मे अफीम का नीचे लिखे अनुसार व्यवहार होता है।

(१) भारत मे बच्चो को प्राय. अफीम दी जाती है।

(२) थकावट और जाड़े को भगाने के लिए भी उसका उपयोग किया जाता है।

(३) किसी बीमारी को रोकने या भगाने के लिए लोग अफीम का सेवन करते हैं।

(४) और कई शुद्ध व्यसन के बतौर उसको नित्य खाते या पीते हैं।

जाँच करने पर पाया गया है कि भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक हिस्से में बच्चों को अफीम की छोटी-छोटी गोलियाँ देने की प्रथा है। जबतक बच्चा दो या तीन साल का नहीं हो जाता, यह प्रथा शुरू रक्खी जाती है। उपर्युक्त संस्था को अबतक जो सबूत मिला है उसके आधार पर श्रीयुत् पैटन का कथन है कि यह कुप्रथा देश मे बहुत फैली हुई है। बच्चो को अफीम देने के कारण कई हैं। बम्बई की विख्यात महिला डॉक्टर श्रीमती जीवान् मिस्त्री L. M. S. उपर्युक्त संस्था को भेजे अपने पत्र में लिखती हैं—"नीचे लिखे कारणों से अफीम भारत में बच्चो को प्रायः दी जाती है और यह उसका सब से भयंकर दुरुपयोग है।

(१) अफीम बच्चों को इसलिए दी जाती है कि वे रोने न पायें। यद्यपि रोने का कारण कई बार उचित ही होता है। मसलन् माता का दूध काफ़ी न होना।

(२) जब माता को घर से बाहर कहीं खेत या कारख़ाने में काम के लिए जाना पड़ता है तो वह बच्चे को इसलिए अफीम दे देती है कि वह चुपचाप पड़ा रहे।

(३) इस ग़लत ख़्याल से भी माता-पिता बच्चों को अफीम खिलाते हैं कि वह उनकी बढ़ती और स्वास्थ्य के लिए फ़ायदे-मन्द है।

(४) झाड़ा, क्षय, वग़ैरा को रोकने के लिए।

(५) क्योंकि अफीम कब्ज करती है. मामूली तौर से भी बच्चा बार-बार टट्टी न फिरता रहे और उसको उठाने के लिए अपना काम छोड़कर माता को न दौड़ना पड़े इसलिए लोग बच्चों को अफीम खिला दिया करते है।"

माताओ को जिन कारणों से बचो को अफीम देनी पड़ती है उससे हमारे देश की दरिद्रता और हमारी विषय-लालसा प्रकट होती है। ऊँचे वर्ग के लोगो को तो समाज को प्रत्यक्ष देखने का शायद ही कभी मौक़ा मिलता है। पर हम मध्यमवर्ग के लोग भी अपने और अपने पड़ोसी के सुख-दुःख से बेख़बर और उदासीन रहे तो काम कैसे चलेगा ? यदि संतति इनी-गिनी हो तो न उनकी माता दुर्बल होगी न बच्चे ही दुर्बल होगे। दुबले बच्चे खाते भी खूब है और टट्टी भी खूब जाते है; उनमे अन्न का सत्व खीचने की शक्ति नही होती। संयमी माता-पिता के बच्चे सुंदर सतेज, बलिष्ठ और हँस-मुख होते है। पर जब मनुष्य संयम के सुखमय किन्तु मुश्किल पाठ को भूलकर विषय-सेवन की आसान राह को पकड़ता है, तो वह फ़ौरन अपने और अपने बच्चों के लिए एक सम्पूर्ण नारकीय जीवन बना लेता है। सारा मकान और मकान के सारे वस्त्र बचो के मैले के मारे बदबू करने लग जाते हैं। क्योंकि जब एक, दो, तीन, चार, पॉच, छः, सात इस तरह साल-साल डेढ़-डेढ़ साल मे बालको की पैदायश होने लगे, तो क्या तो इन बचो में सत्व होगा और क्या उस माता में उनको सम्हालने की शक्ति होगी ? इस तरह से यदि कार्य जारी रहे तो धन-कुबेर भी दो दिन मे सुदामा हो जायगा। बचो को सम्हालने के लिए घर मे कोई मनुष्य न हो, नौकर रखने और उनके

खाने की चीजें खरीदने या बनाकर रखने के लिए पैसा न हो और साथ ही उसके भाई-बहन बढ़ाने के मोह को रोकने की शक्ति भी न हो तो नतीजा क्या होगा ?—सिवा इसके कि खिलाया बच्चे को जहर और लिटा दिया उसे चीथड़ों पर ? ऐसे निःसत्व बालक न भूख को बरदाश्त कर सकते, न टट्टी को एक मिनट रोक सकते। खाना खाया कि उनके लिए रसोई-घर से बाहर निकलना भी मुश्किल हो जाता है। उनकी बुद्धि मंद होती है। शरीर काँटे का-सा होता है और आगे चलकर वे नीति और सदाचार मे भी दुर्बल होजाते है। अस्तु।

अफीम का प्रचार देश में बहुत बड़े पैमाने पर है। डॉ० मिस्त्री का कथन है कि हिन्दुओं मे फीसदी ९० और मुसलमानो में फीसदी ७० बच्चो को अफीम दी जाती है ।× खंभात के एक डॉक्टर का कथन है कि उनके प्रदेश में आनेवाली अफीम में से क़रीब-करीब तीसरा हिस्सा बच्चो मे खर्च होती है। मध्यप्रदेश की एक महिला डॉक्टर कहती हैं कि फीसदी ८० बच्चो को यहाँ अफीम दी जाती है।

इससे बच्चों पर जो दुष्परिणाम होते हैं उनपर हम विस्तृत रूप से आगे लिखेंगे।

× इसमें डॉ० मिस्त्री से हम नम्रतापूर्वक अपना मत-भेद प्रकट करते हैं। हमने भी समाज का कुछ अवलोकन किया है। उसके आधार पर हमें श्रीमती मिस्त्री का कथन सारे समाज के लिए अत्युक्तिपूर्ण प्रतीत होता है। सम्भव है बम्बई और अहमदाबाद की मज़दूर जनता से उनका कथन सम्बन्ध रखता हो।

अफीम का दूसरा उपयोग किया जाता है थकावट या जाड़े को मिटाने के लिए। इसे आधा डॉक्टरी उपयोग कहा जा सकता है।

उपर्युक्त कौन्सिल मे जिन-जिन डॉक्टरों की रायें आई हैं वे सब इस कारण को सरासर झूठा और बनावटी बताते है। कलकत्ता के डॉ॰ म्योर का कथन है कि ऐसे मामलो मे मनुष्य को शुरू से ही किसी मर्ज को शिकायत होती है और वह थकावट को दूर करने के लिए नहीं, बल्कि इस डर से अफीम लेता है कि कही थकावट के समय मे अथवा जाड़े के समय वह मर्ज ज्यादा जोर न पकड़ ले। कुछ डॉक्टरो का कथन है कि यह केवल थोथा कारण है। अफीम का इस्तेमाल करनेवालों की अपेक्षा उन लोगो पर थकावट का या जाड़े का कोई अधिक बुरा असर नहीं पाया गया जो अफीम नहीं खाते। कुछ लोग तो महज लज्जा के कारण कोई न कोई कारण ढूँढ़कर बता देते है। वास्तव मे उन्हे अफीम खाने की आदत ही होती है।

कहा जाता है कि खांसी, दमा, क्षय, झाड़ा, मधुमेह, प्लीहा के रोग, रक्तार्श, संधिवात, फसली बुखार इत्यादि रोगों पर अफीम का दवा के समान उपयोग होता है। इसका कारण यही है कि जनसाधारण को डॉक्टर को सहायता नही मिल सकती। क्योकि वह बहुत महँगी पड़ती है। जनता मे अफ़ीम कई रोगो के लिए भूल से एक अक्सीर दवा भी समझी जाती है। इसलिए इस ग़लत सामाजिक धारणा तथा मित्रो की सलाह के कारण ऐसे लोग भी अफ़ीम का उपयोग करने लग जाते हैं, जो डॉक्टरी इलाज से फ़ायदा उठा सकते हैं।

परिणाम

अफीम के सेवन के परिणामो को दिखाते हुए श्रीयुत् विलियम पैटन लिखते है कि बच्चों पर अफीम का इस तरह परिणाम होता है:—

(१) मालूम होता है कि मर्ज थोड़ी देर के लिए कम हो गया। किन्तु कुछ समय बाद वह और भी अधिक भीषण रूप मे दिखाई देता है। एक रोग मे कई दूसरे रोग भी मिल जाते हैं— बच्चे को मंदाग्नि हो जाती है। अफीम खानेवाले बच्चे अक्सर कम खाने वाले होते है।

(२) बदन का खून सूख जाता है। बच्चे की बढ़ती रुक जाती है। दिमाग़ कमज़ोर हो जाता है। मध्यप्रदेश के एक डॉक्टर का कथन है कि हमारे प्रान्त के पिछड़ने का ख़ास कारण बच्चो मे यह अफीम की आदत ही जान पड़ती है। एक शिक्षिका दावे के साथ कहती हैं कि मैं स्कूल में बच्चो की एकाग्रता-शक्ति के अभाव को देखकर बिला पूछे बता सकती हूँ कि किस बच्चे को अफीम दी गई थी।

(३) बच्चे निःसत्व हो जाते हैं। रोगों के बहुत जल्दी शिकार होने लग जाते हैं। दवाओ का उनपर ठीक तरह से असर नहीं होता। और बड़ी देर में बीमारी से उठते हैं।

माता-पिताओं को चाहिए कि वे अपने बच्चों के कल्याण के ख़याल से उन्हे (१) अफीम देना बन्द कर दें और ख़ुद भी संयम-पूर्वक रहने लग जावें। जिससे मौजूदा बच्चों के सामने अच्छी मिसाल बनी रहे; न अधिक बच्चे पैदा हो, न उनको सम्हालना भारी पड़े और न उन्हे अफीम देनी पड़े। (२) डॉ० मिस्त्री सूचित

करती हैं कि जिन बहनों को अपने बच्चो को घर पर छोड़कर खेत में या मिल में काम करने के लिए जाना पड़ता है उनके बच्चो के लिए हर एक स्थान या गाँव में एक धात्री-गृह होना चाहिए। वहाँ माताएँ बच्चों को छोड़कर अपने काम पर जावें। यह सूचना भी अच्छी है। उपर्युक्त दो सूचनाओं में से जिनके लिए जो व्यवहार्य हो उसपर वे अमल करें। परन्तु, यदि भारत में ऐसे धात्री-गृह हो सकते हों तो भी बच्चों की फ़ौज की फ़ौज पैदा करके धात्री-गृह मे उन्हे छोड़ने के बजाय संयमपूर्वक रहना अधिक श्रेयस्कर है। जो हो पर किसी प्रकार वे अपने बच्चों को इस भयंकर विष से जितनी जल्दी हो सके बचावें।

जो थकावट और जाड़े से बचने के लिए अफीम का व्यवहार करते हैं उन्हें अफीम खाने की आदत हो जाती है। कुछ लोग ऐसे जरूर होते हैं जो इस आदत के वश नहीं हैं। पर साधारणतया लोगो का यही अनुभव है कि उससे बचना बहुत मुश्किल है। इसलिए अच्छा यही है कि समझदार आदमी अफीम के फेर में न पड़ें। अपनी थकावट या जाड़े को भगाने के लिए वे किसी दूसरे ऐसे साधन का उपयोग करें जो सचमुच फ़ायदेमन्द हो।

ऊपर कहा जा चुका है कि अफ़ीम दवा के बतौर भी खाई जाती है। जैसा कि श्रीयुत पैटन ने लिखा है, उसमें एक बात बड़ी मार्के की है और उसपर ध्यान देना बहुत जरूरी है। इस तरह के उपयोग के फीसदी ९० उदाहरणों की जड़ में एक भारी ग़लती पाई जाती है। बेशक अफ़ीम दर्द को मिटा देती है। और एक अपढ़ आदमी के लिए तो दर्द ही बीमारी है। इसी-

लिए कितने ही लोग अफीम को कई रोगों पर रामबाण दवा समझते हैं।

पर वास्तव मे दर्द का मिटना और बीमारी का हटना दो जुदी-जुदी बातें हैं। बात यह है कि अफ़ीम बीमारी को कभी नहीं मिटाती। वह तो सिर्फ़ दर्द को रोक कर बीमारी के असली लक्षणों को ढँक देती है। वह एक विष है और विष दर्द करनेवाले हिस्से के जीवाणुओं को मूर्च्छित कर देता है। इसका नतीजा यह होता है कि आदमी अपनी बीमारी का ठीक-ठीक इलाज भी नहीं कर पाता। कलकत्ता के डा० म्योर लिखते हैं कि "एक मामूली देहाती में इतनी बुद्धि नहीं होती कि वह जाकर डॉक्टर से अपने मर्ज़ का इलाज करा ले। उसे तो डॉक्टर के इलाज की अपेक्षा अफीम की ख़ुराक ही ज्यादा फ़ायदेमंद मालूम होती है। वह तो तात्कालिक फ़ायदा देखता है। आगे की राम जाने। नतीजा यह होता है कि अफीम से रोग के चिन्ह दब जाते हैं। पर अफीम का विषैला प्रभाव दूर होते ही फिर वही लक्षण और भी भीषण रूप मे दिखाई देते हैं। मामला बिगड़ने पर मेरे पास ऐसे कई लोग आते रहते हैं। पर तब उनका इलाज करना बड़ा कठिन होता है। यद्यपि शुरू-शुरू में मामूली इलाज से भी काम चल जाता है।"

यह देहातियों के अज्ञान का परिणाम तो होगा ही। परन्तु हमें इसका कारण भारत की भीषण दरिद्रता मालूम होती है। साधारणतया मध्यम वर्ग के लोगों के पास भी डाक्टर की फीस देने को पैसे नहीं होते। बेचारे ग़रीब किसान और मजूर तो फिर इतने पैसे कहाँ से लावें?

श्रीयुत पैटन लिखते हैं कि नियमित तौर से अफीम का व्यवहार करने पर नीचे लिखी बीमारियाँ मनुष्य को हो जाती हैं—

१ क़ब्ज़ा,
२ रक्त की न्यूनता,
३ मंदाग्नि,
४ हृदय, फेफड़े और
५ गुर्दा के रोग
६ स्नायुजन्य कमजोरी,
७ फुर्तीलेपन का अभाव,
८ आलस्य और निद्रालुता, चित्तभ्रम
९ Halucintein
१० नैतिक भावना का बोदा होना
११ काम का भार आ पड़ने पर ची बोल देना
१२ साधारण नैतिक अविश्वास
१३ मृत्यु

अफीमची के दिमाग़ पर भी उसका असर तो पड़ता ही है। डॉक्टर म्योर की राय हम ऊपर लिख ही चुके है। अपने-अपने प्रान्त के प्रसिद्ध अफीमचियों की कथाएँ प्रायः प्रत्येक प्रान्त के लोग जानते ही हैं। कथाएँ अनेक हैं, स्थानाभाव के कारण हम उन्हे नहीं लिख सकते। इसलिए अफीम के विशेष गुण-अवगुण जानने के लिए तो पाठक उन अफीमचियों का ही अध्ययन करें तो उन्हे बहुत-सी शिक्षा प्राप्त होगी।

यह कथन ग़लत है कि अफीम की आदत कभी छूट ही नहीं सकती। हाँ, जिनकी आदते बहुत मज़बूत हैं, उन्हे ज़रा देर लगेगी। पर वे भी छूट तो ज़रूर सकती हैं। इसके उदाहरण जेलों मे बहुत मिलते हैं। कई क़ैदियों की अफीम खाने की आदतें छूट गई हैं और वे स्वस्थ, नीति-शील और बुद्धिशाली हो गये है।

भारत में अफीम बहुत बड़े पैमाने पर नहीं पी जाती है। कही-कही राजपूताना में और कच्छ में यह पाया जाता है। कल-

कत्ता में बसनेवाले कुछ चीनी इस तरह अफीम पीते हैं। कहीं-कहीं साधू-बैरागियों तथा ग़रीब मुसल्मानों में भी इसके प्रचलित होने की बात कही जाती है। अफीम का धुआँ सेवन करने की मुमानियत १९११ में ही कर दी गई है। और पीने योग्य अफीम का बेंचना भी तभी से बन्द कर दिया गया है। पर पीनेवाले तो घर पर भी ऐसी अफीम बना लेते हैं। जबतक अफीम उन्हें मिलती रहेगी इसका छूटना प्रायः असम्भव है।

कलकत्ता की नैशनल क्रिश्चियन कौन्सिल ने इस बात पर भी डाक्टर की राय ली कि अफ़ीम खाने और उसका धुआँ पीने में क्या फ़र्क़ है।× उनमें से प्रायः सभी ने अफीम पीने को महा-भयंकर व्यसन बतलाया। अफीम खानेवाले की अपेक्षा अफीम पीनेवाले का शरीर अधिक दुर्बल होता है। उसके दिमाग़ पर भी ज्यादा बुरा असर पड़ता है। परन्तु कई डाक्टर अफीम खाने को अधिक भयंकर बताते हैं। क्योंकि पीने में तो उसका सत्त्व जल जाता है, कुछ धुँए के रूप में भीतर जाने पर भी फौरन निकल जाता है। यद्यपि अफीम खाने के दुष्परिणाम इतने स्पष्ट न दिखाई दें, पर उसमें सारी अफीम शरीर के अन्दर रह जाती और वह निस्सन्देह अपना बुरा प्रभाव शरीर पर डालती रहती है। जो हो इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि अफीम खाना और पीना दोनों बुरे हैं।

श्रीयुत गोविट अपनी पुस्तक ("The Survey on two Opium Conferences of Geneva") में लिखते हैं—

"औषधि और वैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए फी आदमी नीचे लिखे अनुसार नशीली चीजों की जरूरत होती है:—

× आगे लखनऊ की 'ओपियमडेन' का वर्णन पढ़िए।

प्रतिवर्ष अफीम ४५० मिलिग्राम (क़रीब-क़रीब ७ चावल के बराबर)
कोकेन ७॥ मिलिग्राम

यदि हम मानलें कि संसार की १, ७४,००,००,००० जन-संख्या में से ७४४०००'००० मनुष्यों को पश्चिमी ढंग के अनुसार शिक्षा पाये हुए डाक्टरों का इलाज नसीब हो सकता है, तो सारे संसार के लिए नीचे लिखे अनुसार औषधि के लिए मादकद्रव्यों की जरूरत होगी।

अफीम १७० टन (स्थूल मान से एक टन २८ मन का होता है)
माफीइन १३६ "
कोडाइन ८४ "
हिराइन १५ "
कोकेन १२ "

३४७

परन्तु संसार में उपर्युक्त द्रव्यों की उत्पत्ति ८६०० टन की जाती है। कोकेन की उत्पत्ति किसी प्रकार १०० टन से कम नहीं होती होगी।

शेष नशीली चीजों का क्या होता है? निश्चय ही उनका अनावश्यक और हानिकर उपयोग हो रहा है।

खेती का व्यवसाय करनेवाली जनता जिन प्रान्तों में घनी है वहाँ अफीम का प्रचार उतना नहीं है। परन्तु जिन प्रान्तों में पश्चिमी ढंग के कल-कारख़ाने ज्यादा हैं वहाँ अफ़ीम की खपत ज्यादा है। हम ऊपर देख चुके हैं कि अफीम की खपत ऐसे स्थानों में भी अधिक है जहाँ चीनी अथवा ब्रह्मी लोगों की बस्ती

ज्यादा है। आसाम के कुछ ज़िलों में फी १०००० अफीम की खपत २३७ सेर तक बढ़ जाती है। इसी प्रकार बम्बई की एक शिशु-प्रदर्शिनी में लेडी विलसन ने कहा था कि बम्बई की फी सैकड़ा ९८ माताएँ काम पर जाने से पहले अपने बच्चों को अफीम खिलाकर जाती हैं। पाठक देखेंगे कि पश्चिम के कल-कारखानों की बदौलत जिन शहरों का विकास हुआ है उनमें अफीम की खपत बहुत ज्यादा बढ़ी हुई है। भारत के कुछ खास-खास शहरों में फी १०००० आदमी अफीम की खपत नीचे लिखे अनुसार (सेरों मे) पाई गई:—

शहर	अफीम सेरो में	शहर	अफीम सेरों में
कलकत्ता	१४४	बम्बई	४३
रंगून	१०८	भड़ौच	५१
फिरोजपुर	६०	सोलापुर	३५
लुधियाना	४९	क़राची	४६
लाहोर	४०	हैदराबाद (सिंध)	५२
अमृतसर	२८	मदरास	२६
कानपुर	२९	कटक	४५
अहमदाबाद	४२	बालासोर	५६

तमाखू के असाधारण प्रचार ने अफीम को पीछे हटा दिया है। परन्तु अब भी वह हमारे देश मे किस भीषण रूप में फैली हुई है यह उपर्युक्त अंकों से मालूम हो सकता है। अफीम की भयंकरता और इसके इस प्रचार को देखते हुए भारतीयों को सावधान हो जाना चाहिए। बल्कि हम तो जोरों से इस बात की

सिफारिश करेंगे कि सर्वसाधारण के लिए इसकी क़ानूनन बन्दी हो जाना ही सर्वोत्तम मार्ग है।

सम्भव है कि इस तरह अफ़ीम की बन्दी करने से उन लोगों को कुछ कष्ट होगा जो उसके अधीन हो गये हैं। हमारी समझ में ऐसे लोगों के भी कुछ वर्ग कर दिये जायँ। अफीम के अत्यंत पुराने सेवकों को जो चालीस या पचास वर्ष के ऊपर हो थोड़ी मात्रा में अफीम दी जाय। दूसरे वर्ग को, जो उतना पुराना सेवक नहीं है, निश्चित समय के अन्दर अपनी आदत को छोड़ने की सूचना दे दी जाय और उतने समय के भीतर तक अफीम कम करते-करते उसे यह भयंकर आदत छोड़ने पर मजबूर किया जाय। निश्चित समय खतम होते ही उसे अफीम देना बन्द कर देना चाहिए। और तीसरे वर्ग को जो नया है अफीम देने से एक दम इन्कार कर दिया जाय। शेष सब लोगों को जिन्हे दवा के लिए अफीम की जरूरत हो सिर्फ डाक्टर या प्रतिष्ठित वैद्य की आज्ञा मिलने पर ही वह दी जाय अन्यथा नहीं। अफीम लेने वालों के नाम रजिस्टर में दर्ज हों, और उनमे कभी नवीन लोगों को शामिल न किया जाय। बच्चो को अफीम देना भी एकाएक बन्द हो जाना नितान्त आवश्यक है।

[३]

मित्र-द्रोह

अथवा

हमारे लज्जाजनक इतिहास का एक पृष्ठ

"The Curse of opium in some ways is more deadly to the Soul of India than intoxicants, because it has its effects chiefly on a neighbouring and friendly people—the Chinese. It is thus at once more cruel and more selfish than the curse of drink."

C. F. Andrews.

पिछले अध्याय से पाठकों को कुछ-कुछ ख्याल हो गया होगा कि हमारे देश में अफीम का कितना प्रचार है। परन्तु हमारा पाप यहीं समाप्त नहीं होता। गुलाम देश को शासक अपने पापों में भी शरीक करते हैं। दूसरे देशों की स्वाधीनता का हरण करने के लिए केवल भारत के सिपाहियों का ही उपयोग नहीं किया जा रहा है। बल्कि भारत की अफीम का भी इस काम के लिए उपयोग करने में हमारे शासको को संकोच नहीं हुआ। चीन-जैसे एक शान्तिप्रिय राष्ट्र को अफीमची बनाकर भारत-सरकार ने दो पाप किये और हमे उनमें शरीक होने के लिए मजबूर किया। एक तो यह कि चीन अफीमची हो जाय तो उसको जीतने और भारत की तरह निगल जाने में सुविधा हो, दूसरे यह कि अफीम

की बिक्री से जो धन मिले उसकी सहायता से फौजें रखकर स्वयं भारत को भी पराधीन बनाकर रक्खा जाय। भारत के इतिहास मे अफीम का व्यापार एक बहुत बड़ा कलंक है। आज भी यदि संसार का लोकमत इस घृणित व्यापार के इतने जोरों से विपक्ष में न होता तो सरकार अपना व्यापार शायद ही रोकती। अब भी कहां रोका है? पाठक आगे पढ़ेंगे कि इस समय भी धन कमाने की गरज से कितनी अफीम बाहर भेजी जाती है।

भारतभक्त ऐण्ड्र्यूज अपनी पुस्तक (The Drink and Opium Evil) मे लिखते हैं—

"अफीम की बुराई भारत की आत्मा के लिए कुछ अंशों में मादक द्रव्यों की अपेक्षा भी अधिक भयंकर है। क्योंकि उसका परिणाम खासकर हमारे पड़ोसी और मित्र राष्ट्र चीन पर पड़ रहा है। इसलिए यह शराब की बुराई की अपेक्षा अधिक दुष्ट और स्वार्थी है।"

आगे चलकर एण्ड्र्यूज साहब एक पुस्तक से भारत सरकार की चीन-सम्बन्धी अफीम की नीति पर यह उद्धरण देते हैं—

"भारत और चीन के बीच अफीम के व्यापार का जो अन्यायपूर्ण और दुष्ट एकाधिकार (Monopoly) स्थापित किया गया था उसका उद्देश केवल धन जोड़ना ही था।

"यह बात किसी से छिपी हुई नहीं थी कि चीन के लिए अफीम पीना हर तरह से एक शाप था। अफीम की आदत धीरे-धीरे मनुष्य के शरीर और आत्मा को भी खा जाती है। जिन जिलो मे अफीम पीने की आदत है, वहाँ का सारा पुरुषवर्ग

निकम्मा हो जाता है। इससे कोई मेहनत का काम नहीं होता। वह धीरे-धीरे व्यभिचारी होता है और अंत मे निराश जीवन व्यतीत करते हुए यम-लोक को सिधारता है। पर इससे अंग्रेज व्यापारी, पूंजी-पति और राजपुरुषो को क्या ? यहाँ तो थोड़ी पूंजी पर बेहद पैसा कमाने का आसान तरीका हाथ लग गयाथा। अफीम के एकाधिकार से भारत के कोष को भी सहायता मिल जाती थी इसलिए अफीम अच्छा व्यापार बन गया।"

पाठक जरा दिलथाम कर इस करुण-कहानी को पढ़ें और देखें कि किस शास्त्रीय ढंग से चीन को भारत की अफीम की चाट लगाकर हमें उस पाप मे शरीक किया गया।

हम पहले लिख चुके हैं कि मुग़ल-साम्राज्य के स्थापन-काल से ही भारत में अफीम की खेती होती थी और यहाँ के लोग उसका व्यवहार भी करते थे। पूर्व के देशों मे भी अफीम का व्यवहार कम-अधिक मात्रा में होता ही था। और भारत का उनसे व्यापारी सम्बन्ध प्राचीन काल से चला आया है। भारत से चीन को भी अफीम जाती थी। हमें यह क़बूल करना पड़ेगा कि अफीम की बुराइयाँ एशिया के लोगो से छिपी नहीं थीं। परन्तु जबतक पश्चिम के साहसी देशों ने पूर्व में अपने व्यापार का जाल नही फैलाया, ये बुराइयां बड़े पैमाने पर नही फैली थी। पहले-पहल ई० स० १५३७ मे पुर्तगीजो ने और बाद में यूरोप के अन्य राष्ट्रो ने चीन से व्यापारी सम्बन्ध कायम किये और इस महान् बुराई को सुसंगठित रूप से बढ़ाने का प्रयत्न होने लगा। शनैः-शनैः चीन मे यह बुराई जड़ पकड़ती गई। यहाँ तक कि ईसवी सन् १७२९ में चीन की सरकार को यह आज्ञा

जारी करनी पड़ी कि चीन में कोई अफीम के धुएँ का सेवन न करे। पर इसका कोई परिणाम नहीं हुआ, तब अन्त में ई० स० १७९९ में चीन-सरकार को दूसरी आज्ञा जारी करके अफीम की आयात को ही बन्द करना पड़ा। पर इसका भी कोई नतीजा नहीं निकला। अफीम का छिप-छिप कर चीन में प्रवेश होता ही रहा।

१७२९ मे चीन मे केवल २०० पेटियाँ गई थी, तहाँ सन् १८०० में यह संख्या ४००० के लगभग बढ़ गई। इसका कारण अंगरेज व्यापारी ही थे। चीन अफीम का सबसे अच्छा बाजार था। और वहाँ भारत की अफीम भेजना जरूरी था। आखिर चीन के ही लिए तो भारत में अंग्रेजों के द्वारा अफीम की खेती इतने बड़े पैमाने पर हो रही थी और प्रतिवर्ष बढ़ाई जा रही थी। यहाँ पर यह कह देना जरूरी है कि यह सब अफीम ईस्ट-इण्डिया कम्पनी की अधीनता मे ही तैयार नही होती थी। ईसवी सन् १७५८ में बंगाल और बिहार को अपने अधीन करने पर ईस्ट-इंडिया कम्पनी ने अफीम की पैदायश पर अपना अधिकार कर लिया था। परन्तु अभी वैदेशिक व्यापार को उसने पूर्णतया अपने अधीन नही किया था। ईस्वी सन् १८३० के लगभग कलकत्ता मे कोई ४००० पेटियाँ नीलाम की गई थी। चीन मे अफीम ले जानेवाले व्यापारियों की मांग तो बढ़ती ही जा रही थी। शेष मांग को मालवा के देशी राज्य पूरी करते थे। अब कम्पनी का ध्यान इन देशी राज्यो की ओर गया। उन्नीसवी सदी के आरम्भ में मालवा के अफीम के व्यापार पर इसका प्रभाव पड़ने लग गया। अंग्रेजो ने इस बात की विशेष सावधानी

रक्खी कि मालवा की अफीम सीधी समुद्र तक पहुँचने ही न पावे। क्योंकि समुद्र किनारा तो उस समय अंग्रेजों के अधीन आ गया था। अलावा इसके ब्रिटिश प्रजा को तथा ब्रिटिश जहाजों को इस तरह की हिदायतें भी मिल गई थीं कि वे मालवा से अफीम-संबन्धी कोई व्यापार न करें। मालवा के देशी राज्य भी उस समय इस विषय मे कुछ नही कर सकते थे, क्योंकि उस समय वहाँ अशान्ति छाई हुई थी। अन्त में १८१८ में मालवा के देशी राज्यों से कंपनी की सुलह हो गई। कंपनी को अपनी नीति जरा शिथिल कर देनी पड़ी। कंपनी सरकार ने मालवा के अफीम के व्यापार को अपने अधीन करने की गरज से वहाँ अफीम खरीदने के लिए अपने आदमी भी रक्खे। परन्तु देशी व्यापारियो की प्रतिस्पर्धा में वे टिक न सके। तब सरकार ने देशीराज्यो से अफीम की पैदायश को घटाने और भारत-सरकार के हाथ मे सारा वैदेशिक व्यापार सौंप देने के लिए देशी नरेशों से कहा। परन्तु इससे देशी राज्य भारत-सरकार से और भी अधिक असंतुष्ट हो गये। अतः यह चाल भी व्यर्थ हुई। अन्त में १८३० मे सरकार ने ट्रान्जिट ड्यूटी सिस्टम शुरू की। अर्थात् बंगाल की अफीम के भाव को विदेशी बाजारों में बनाये रखने की ग़रज से उसने मालवा की अफीम पर कर लगा दिया। यह भी बन्दोबस्त कर दिया गया कि वह बिना कर दिये समुद्र तक न पहुँच सके तथा अंगरेजी प्रदेश मे वह किसी प्रकार छिप कर भी प्रवेश न पा सके।

साथ ही मालवा को अधिक फायदा न मिलने पावे इस गरज से कंपनी-सरकार ने बंगाल में अफीम की खेती बढ़ाना

शुरू किया। शीघ्र ही वहाँ पहले की अपेक्षा दुगुनी बल्कि चौगुनी जमीन में अफीम की खेती होने लग गई।

इस प्रकार भारत में अफीम के व्यापार को अपने हाथों में लेकर अंगरेज व्यापारियों ने छिप-छिपकर चीन में अफीम भेजना शुरू किया। परन्तु फिर भी कमजोर और शस्त्रसामर्थ्य न होने पर भी चीन ने इसका काफी विरोध किया। अंग्रेजों ने सन् १८३४ और १८३६ में चीन से घनिष्ट राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने की बात चलाई। परन्तु चीनी लोग इन युरोपियनों की नीति से एकदम अपरिचित नहीं थे। वे भारत, ब्रह्मा, जावा सुमात्रा आदि देशों की हालत देख चुके थे। उन्हें अपनी स्वाधीनता प्रिय थी। इसलिए वे जानते थे कि ऐसे मित्रों को दूर से ही नमस्कार करना भला है। फलतः चीन की सरकार ने ऐसे सम्बन्ध स्थापित करने से इन्कार कर दिया। इसका परिणाम अंग्रेजो के व्यापार पर भी पड़ा। ×कैंटन के किनारे पर सन् १८३९ में अंग्रेजी जहाजों पर २०,००० पेटियाँ पड़ी रह गईं। चीन के बादशाह को भय था कि अगर अंगरेजों से यह अफीम छीनकर नष्ट न कर दी जायगी तो वे चुरा कर उसे चीन के लोगों में बेच देंगे। अतः उसने अपने लिन नामक एक अधिकारी को आज्ञा दी कि वह अंगरेजो से यह अफीम छीनकर उसे नष्ट कर दे। लिन ने यही किया।

×इससे पहले भारत से चीन को अफीम का निकास क्रमशः यों था।

१७९० में ४००० पेटियाँ
१८२० में ५००० ,,
१८३० में १६८७७ ,,
१८२८ मे २०६१९ ,,

चीन ने जो कुछ किया था उचित था। उसने अपने आपको इस विष से बचाने के लिए अपने दरवाजे पर खड़े हुए विष बेंचनेवाले से विष छीनकर नष्ट कर दिया। अंगरेजों को चीन पर अपनी अफीम जबरदस्ती लादने का कोई अधिकार नहीं था। पर धन का लोभ बड़ी बुरी चीज होती है। उसने अंग्रेजों को इसी बहाने चीन से युद्ध-घोषणा करने को मजबूर कर दिया। अंगरेजों के जंगी जहाज आये और एक के बाद एक चीन के बंदरगाह लेने लगे। यांगत्सी नदी के मुहाने से होकर वे चीन के अंदर घुस गये और ग्रेंड कनाल की राह से जो शाही खजाना पेकिंग को जा रहा था उसे छीन लिया। बेचारे चीन की हड्डी-पसली ढीली हो गई। उसे लाचार हो १८४२ में सुलह करनी पड़ी। और अपने अपराध (?) के दण्ड-स्वरूप ब्रिटेन को हांगकांग अर्पण करना पड़ा और ऊपर से दक्षिणा-स्वरूप २१ मिलियन डालर अर्थात कोई सवा छः करोड़ रुपये देने पड़े। इसके अतिरिक्त कैंटन अमॉय, फूचू, निंगपो और शंघाई नामक बन्दरगाहों को "ट्रीटी पोर्ट्स" के बतौर अफ़ीम के व्यापार के लिए खोल देना पड़े। यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि *इस युद्ध का खर्चा भारत से ही लिया गया।*

ब्रिटिश सरकार ने इस बार बड़ी कोशिश की कि अफीम का व्यापार चीन की सरकार द्वारा क़ानूनी क़रार दे दिया जाय। लार्ड पामर्सटन ने ब्रिटिश प्रतिनिधि को लिखा था कि "छिपकर चीन में अफीम लेने वाले के प्रलोभन को तोड़ देने की गरज से वह चीन की सरकार से मिलकर चीन में अफीम की आयात पर कानूनी मंजूरी ले ले। परवा नहीं; अगर चीन उसपर थोड़ा कर

भी लगा दे ।" परन्तु चीन के सम्राट तो इसके बहुत ही खिलाफ थे । चीन के कमिश्नरो को उनसे इस विषय मे बातचीत करने की हिम्मत भी नही हुई । उन्होने अंग्रेजों की बात को नीचे लिखे गोलमोल शब्दों मे कबूल कर लिया । चीन न तो इस बात की तहकीकात करेगा और न कानूनी कार्रवाई करेगा कि भिन्न-भिन्न देशों के जहाज अफीम लाते हैं या नही" (ओपियम कमिशन पृ० २११)

खैर, पंद्रह वर्ष तक व्यापार बराबर बढ़ता रहा । बीचबीच में चीन-अफीम का प्रतीकार कर ही रहा था । १८५८ मे भारत से चीन के लिए ७०,००० पेटियों का निकास हुआ पर ब्रिटिश-सरकार को केवल इतने से संतोष नही था । वह अफीम को एक बार में कानूनी वस्तु बना देने के लिए बड़ी उत्सुक थी । लॉर्ड क्लेरेण्डन ने लॉर्ड एलिगन (वाइसराय) को लिखा कि "इस तरह अव्यवस्थित रूप से व्यापार चलाने की अपेक्षा अफीम पर कुछ कर मंजूर करके उसे कानून के आधार पर मजबूत बना देना अधिक अच्छा होगा । इससे होनेवाले फायदे स्पष्ट है ।"

शीघ्र ही दूसरी बार युद्ध छेड़ने के लिए भी कारण मिल गया । इस बार भी अभागा चीन सशस्त्र ब्रिटिशो के मुकाबले में न टिक सका । ब्रिटेन और उसकी अफीम की विजय हुई । और ६०,००,००० डॉलर का दण्ड दे कर ब्रिटेन के लिए चीन को पांच अधिक ट्रीटी पोर्ट खुले करने पड़े । सुलह १८५८ के जून महीने मे टिएन्टसिन मे हुई । पर उसमें अफीम से प्रत्यक्ष संबन्ध रखनेवाली कोई बात नहीं थी । हां, चीन के करो मे संशोधन करने की बात जरूर तय हो गई थी । बाद में इसी वर्ष के नवम्बर

महीने में दोनों सरकारों के बीच यह तय हो गया कि प्रत्येक पेटी पर प्रतिशत पाँच के हिसाब से कर लिया जाय। इस तरह अन्त में अङ्गरेजों ने पशुबल की सहायता से चीन मे अफीम के प्रवेश को कानूनी रूप दिलवा ही दिया। पर इसमे भी चीन ने एक शर्त अपनी ओर से रख दी। शर्त यही थी कि बंदरगाह पर अफीम आनेपर वह देश में चीनियो द्वारा ही लाई जाय। चीनियों का उद्देश यह था कि देश के भीतर यह व्यापार विदेशियों के हाथो मे न जाने पावे। बल्कि पूरी तरह चीनियो के अधीन रहे। इस समय चीन मे भारत से जानेवाली अफीम की पेटियों की संख्या ७०००० तक बढ़ गई थी। वह १८३० तक ४०२० थी।

इस तरह जब चीन ने देखा कि व्यसन किसी प्रकार रुकता नहीं है तब उसने बजाय इसके कि यहाँ का पैसा विदेशों मे जाय, अपने यहाँ ही अफीम की खेती शुरू कर दी। विशाल प्रदेश इसके लिए खुले कर दिये गये। जहां अच्छे-अच्छे पोषक नाज बोये जाते, वहाँ विष के पौधे लहराने लगे। परन्तु फिर भी वे भारत की अफीम को न रोक सके। चीन की अफीम यहाँ के जैसी अच्छी न थी। हाँ, इससे एक फायदा हुआ। लोगों को दो प्रकार का विष मिलने लगा। सस्ता और महंगा, और सभी अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार सस्ता या महँगा विष खाने लगे।

१८५८ में भारत में कम्पनी के हाथों से सरकार ने अपने हाथों में शासन-सूत्र ले लिये। और उसके साथ-साथ अफीम के व्यापार को भी।

ई०स० १८६८ में करों का संशोधन करने के लिए फिर बात-चीत छिड़ी। चीन के अधिकारियों ने इस बात पर बड़ा जोर

दिया कि भारत से अफीम का निकास बन्द करके अफीम के व्यापार का अन्त कर दिया जाय। पर यह तो कुछ नहीं हुआ। इसके बदले उन्हे कह दिया गया कि आप अपने कर बढ़ा सकते हैं। १८७६ में फिर चेफू कन्वेंशन की बैठक हुई। उसने तत्कालीन परिस्थिति को और भी मजबूत कर दिया। और चीन में अफीम का कर इकट्ठा करने की पद्धति का संशोधन करके उसे अधिक सुसंगठित बना दिया। पर इसे मंजूर होने मे बड़ी देर लगी। १८८५ में उसमे एक और बात जोड़ दी गई। अबतक आयात-कर के अतिरिक्त देश के भीतर अफीम पर कई कर लगाये गये थे। अब की बार उन सबको मिलाकर प्रत्येक पेटी पर ११० टेल्स कर लगा दिया गया। अब ब्रिटिश सरकार एक तरह से निश्चिन्त हो गई। उसने अपने संगीन की नोक को भी चीन पर से हटा दिया। और सन् १८९१ मे अप्रैल की १० वीं तारीख को वैदेशिक मंत्री (Foreign Secretary) ने इंगलैंड की सधारण सभा मे बादशाह की ओर से यह जाहिर कर दिया कि अब चीनी जब चाहे एक साल की सूचना देकर सुलह का अन्त कर सकते हैं। यदि वे अपनी रक्षा करना चाहे तो वे विदेशी अफीम की बन्दीं भी कर सकते हैं। मैं यह भी कह देता हूँ कि यदि चीन-सरकार कर को यहाँ तक बढ़ा दे कि विदेशी अफीम का चीन मे जाना असंभव हो जाय अथवा उसके प्रवेश को ही रोक दे, तो यह देश चीन को अपनी भारतीय अफीम लेने पर मजबूर करने के लिए एक भी सिपाही की जान न खोएगा और न एक पौंड बारूद ही जलाएगा।" जलावे भी

आत्मघात करने पर तुला हुआ है और मोहन-सोहन उसको विष देकर अवश्य मार डालेंगे फिर धनपत ही उसे विष देकर क्यों न दो पैसे सीधे कर ले ? बंगाल में अफ़ीम की खेती करने वाले तो सरकार के आदमी थे। अगर वे अफीम के बदले नाज बोते तो उन अकाल के वर्षों में निःसन्देह देश का फायदा होता। देशी राज्य भी तो सरकार के अधीन ही थे। यदि उनके सामने यह मानवोचित नीति रखी जाती तो सम्भव नहीं कि वे उसे मानने से इन्कार कर जाते। सच्ची बात तो यह है कि सरकार के सामने धन का सवाल ही जबरदस्त था। और इसके मानी यही है कि सरकार ने भारत के शासन-यंत्र को इतना क़ीमती बना दिया है कि उसको सुचारु-रूप से जारी रखने के लिए सरकार के लिए ऐसे नीति-हीन मार्गों से धन इकट्ठा करना आवश्यक हो गया है।"

रायल कमीशन की सिफारिशों को पूर्ण महत्व दिया गया। चीन से अफीम के व्यापार के सम्बन्ध में कुछ न किया गया। और वह महान् देश दिन-ब-दिन शैतान के जाल में अधिकाधिक जकड़ता गया।

पर ईसवी सन् १९०६ मे एक ऐसी बात हो गई कि जिसकी किसी को कल्पना भी नहीं थी। और न होता था किसी को विश्वास। चीन की जनता ने अब की बार अफीम को क़तई छोड़ने का अटल प्रण कर लिया। चीन ने ब्रिटेन से सुलह की कि वह अपने देश में प्रतिवर्ष १० हिस्सा अफीम की खेती कम करता जाय। और ब्रिटेन भी भारत से प्रति वर्ष अपने निकास का १० वाँ हिस्सा घटाता जाय। इस तरह १० वर्ष में चीन मे

अफीम की खेती और भारत की अफ़ीम के व्यापार का भी एक साथ अन्त हो जाय। किसी को कल्पना न थी कि ऐसे प्रस्ताव का भी पालन हो सकता है। परन्तु परमात्मा की दया से दोनो ओर से इसका पालन करने की भरसक कोशिश हो रही थी। चीन तो हृदय से अफीम से छुटकारा चाहता था। और ब्रिटेन मे भी इस समय उसके अफीम के व्यापार के खिलाफ बड़ी-खलबली मची हुई थी। ब्रिटिश-सरकार उसका नैतिक दृष्टि से कोई जवाब नही दे सकती थी। इस कारण उसे हेठी लेनी पड़ी। चीन का मार्ग सरल हो गया। यदि एक बात न होती तो यह चीन की विजय अपूर्व होती। परन्तु एक देश-द्रोही आदमी की गलती ने सारे राष्ट्र के उत्साह और शुद्धि पर पानी फेर दिया। किस्सा यह है:—

इस समझौते का अन्तिम दिन १९१७ के अप्रैल मास की १ली तारीख था। महीनो पहले से जाहिर कर दिया गया था कि उस दिन सारे-देश में उत्सव मनाया जाय। स्थान-स्थान पर बड़ी-बड़ी तैयारियाँ होने लगी। पर इधर विघ्न-कर्ताओ की मण्डली भी अपने काम में मशगूल थी। भारत और चीन के कृतघ्न स्वार्थी व्यापारी-मंडल इस बात के लिए तन-तोड़ मिहनत कर रहे थे कि इक़रार की मीआद नौ महीने और बढ़ा दी जाय। उनका कहना था कि 'हमारे पास अभी थोड़ी-सी अफ़ीम पड़ी हुई है। तबतक हम इसे ख़तम कर देंगे।' "शंघाई ओपियम कम्बाइन" (उस मण्डल का नाम था) ने चीन मे रहने वाले अंग्रेज अधिकारियो से अपील की, लंदन में भी अपील की! पर ब्रिटिश-सरकार ने भी उनकी एक न सुनी। और इस कार्य के

लिए ब्रिटिश-सरकार चीन और भारत की जनता के धन्यवादों की पात्र है। बात यह थी कि यदि इस मीयाद को एक बार भी बढ़ा दिया जाता तो उसे फिर बार-बार बढ़ाने के लिए लोग अपीलें करते रहते। अंत में "शंघाई ओपियम-कम्बाइन" की दाल जब अपनी सरकार के पास न गली तब उसने दूसरे उपायों का अवलम्बन किया। उसने किसी प्रकार चीन के उपाध्यक्ष को अपने वश मे कर लिया। और उसके हाथ बची हुई ३००० पेटियाँ बेच दी। उपाध्यक्ष ने यह माल चीन की सरकार के नाम से खरीद लिया और व्यापारियों को २०,०००,००० डॉलर देने के लिए हुक्म दे दिया। यह घटना अप्रैल की पहली तारीख के कुछ सप्ताह पहले की है। जब इस लेन-देन की बात देश में फैली तो सारा राष्ट्र मारे रोष के पागल हो गया। सारे देश मे विराट्-सभाएँ होने लगीं। प्रत्येक शहर, क़स्बे और ज़िले के मुख्य स्थानों से तारों का तांता लग गया—'सौदे को रद्द कर दो'। अख़बार पृष्ठ के पृष्ठ रंगने लगे और पार्लमेण्ट ने कठोर शब्दों में इस सौदे की निन्दा की। पर किसी अज्ञात कारण से सौदा रद्द नहीं किया जा सका।

सारे देश का उत्साह बात की बात में निराशा मे परिणत हो गया। वह वीर प्रयत्न, दस साल का वह भगीरथ परिश्रम एक देशघातक, रिश्वतख़ोर अधिकारी की मूर्खता के कारण मिट्टी में मिल गया। यह सत्य है कि कुछ महीने बाद यह सब अफीम जिसकी कीमत छः करोड़ रुपये के क़रीब थी, खुले आम जला दी गई। पर उस एक आदमी की ग़लती ने सारे राष्ट्र के आत्म-विश्वास पर ऐसा ज़ोरों का प्रहार किया कि फिर वह उससे

उठ न सका। अब क्या है? आश्चर्य नहीं यदि चीन के निवासी फिर अफीम की खेती करने लग गये हों।

भारत से चीन को नीचे लिखे अनुसार अफ़ीम उन दिनों मे जाती रही थी।

वर्ष	पेटियाँ
१७२९	२००
१७९०	४०००
१८२०	५०००
१८३०	१६८७७
१८३८	२०६१९
१८५८	७००००
१८७०	९५०३५
१८८०	७३२८८
१८९०	७६६१६
१९००	४९२७७
१९०५	५१९२०
१९१०	३५४८८

चीन वर्षानुवर्ष भारत की अफीम का प्रधान ग्राहक रहा है। मालवा की अफीम को जोड़कर सन् १८५३ से लेकर १८९२ तक किसी भी वर्ष में ६०,००० पेटियों से कम अफीम चीन को नहीं गई। १८९२ से १९०७ तक वह औसतन् ५०००० पेटियों में गई। जिसकी कीमत ४०,००,००० पौंड से भी अधिक होती है। १० वर्ष मे अफीम भेजना कम करने के हिसाब से १९०७ से प्रति-वर्ष ५००० पेटियाँ कम जाने लगी।

कहते हैं, इस प्रकार भारत की अफीम के लिए चीन का दरवाजा सदा के लिए बन्द हो गया। परन्तु मिस ला मोटे की पुस्तक को पढ़ने से जो कि "ब्ल्यूबुक्स" और सरकारी हिसावों के आधार पर लिखी गई है, हमे पता चलता कि यद्यपि भारत की अफीम के लिए सामने का दरवाजा तो बन्द हो गया है तथापि कोशिश करके दूसरे रास्तो से अब भी भारत की अफीम चीन मे भेजी जा रही है। भारतभक्त ऐंड्रयूज लिखते है:—

"The hateful and miserable thing is this, that the British Government in India, all through the war and since the war, has been a party to this new sin of Opium poisoning in China. I have with me a letter from the "International Anti-Opium Association" at Peking, in which the Secretary assersts, from intimate knowledge of the facts that the greatest hindrance to the suppression of opium in China is the production and sale of such large amounts of Opium by the Indian Government."

"बड़ी घृणित और दुःख की बात तो यह है कि महायुद्ध के दिनों मे और उसके बाद भी भारत-सरकार का चीन को अफीम पहुँचाने में हाथ रहा है। पेकिंग की अंतर्राष्ट्रीय अफीम-विरोधिनी संस्था का मेरे पास एक पत्र है जिसमें उस संस्था के मंत्री जिन्हे असली बातो का खूब पता है, लिखते हैं कि चीन में अफीम के व्यसन को रोकने के काम मे सबसे भारी विघ्न भारत-सरकार है, जो इतनी अधिक तादाद में अफीम पैदा करती और बेचती है।"

मिस ला मोटे सरकारी अंको के आधार पर लिखती हैं कि स्ट्रेट सेटलमेन्ट्स की वार्षिक आय १,९०,००,००० डालर है।

इनमें से ९०,००,००० डॉलर भारत की अफीम के व्यापार से उसे मिलते हैं। वहाँ सन् १९१४–१५ में भारत से ६०० पेटियाँ गई थीं आगे यों बढ़ती गई—

१५–१६	२५५०
१६–१७	३७५०
१७–१८	४७८९
१८–१९	४१३६

हांगकांग, जिसकी जनसंख्या पाँच लाख है, इतनी अफीम हर साल लेता है जो १५,००,००,००० लोगों की औषधि विषयक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है। *अपनी सारी वार्षिक आय का तीसरा हिस्सा उसे केवल इस भारत की अफीम के व्यापार से ही मिलता है। और यह सब अफीम चोरी से चीन में भेजी जाती है। स्वयं हांगकांग की सरकार इस बात का प्रतिवाद नहीं करती।*

मिस लामोटे लिखती है—"हम सुदूर पूर्व में एक वर्ष तक रहे थे और हम जिस देश मे गये इस विषय (अफीम) मे तहकीकात की। जहाँ कहीं हो सका हमने शासन-विवरण भी ध्यानपूर्वक पढ़े। हमने देखा कि सरकार ने अफीम के व्यापार को बड़ी मज़बूत बुनियाद पर प्रतिष्ठित कर रक्खा है और इसमें अपना एकाधिकार (Monopoly) रक्खा है। अफीम पर आबकारी (Excise) कर लगाकर और ठेकेदारो से ठेके की फीस के रूप में खुले-आम सरकार टके कमा रही है। यह सब पूर्ण व्यवस्था के साथ हो रहा है और विदेशी सरकारे अपने शासित प्रजाजनों के हितो का बलिदान देकर अपना नफ़ा कमा रही हैं। अमेरिका और यूरोप के देशो में हम देखते हैं कि सर-

कारें ऐसी नशीली चीजों के व्यवहार को रोकने की हर तरह से कोशिश करती है। पर यहाँ तो सर्वत्र इसके विपरीत दशा है।"

अब भी इस सुदूर पूर्व के देशों मे अफीम पीने के लिए अंग्रेज-सरकार ने चण्डूखाने खोल रक्खे हैं। मिस लामोटे सिंगापुर में इसी प्रकार के एक चण्डूखाने में गई थीं और वहाँ की हालत देखकर चकित हो गई थीं। वे लिखती हैं:—

We three got into the Rikshaws and went down to the Chinese quarters where there are several hundreds of these places all doing a flourishing bussiness, It was early in the afternoon but even then trade was brisk. The people purchased their opium on entering: each packet bears a red label "Monopoly Opium."

हम रिक्शा में सवार हुए और चीनी बस्ती की तरफ गये। वहाँ पर ऐसे चण्डूखाने सैंकड़ों की संख्या मे हैं, और जहाँ व्यापार तेजी से चल रहा है। इत्यादि।

इसके बाद एक चण्डूखाने का प्रत्यक्ष वर्णन देकर मिस लामोटे लिखती हैं:—

So we went on down the street. There was a dreadful monotany about it. House after house of feeble emaciated wrecks, all smoking Monopoly opium, all contributing by their shame and degradation to the revenue of the mighty British Empire.

अर्थात् "इस तरह हम जब उस सड़क से गुजरे तो एक के बाद एक ऐसे हमे कई मकान मिले; हर एक मकान का वहीं

भीषण दृश्य था ! दुबले-पतले अभागे मोनोपोली (जिसके व्यापार का एकाधिकार ब्रिटिश सरकार के हाथों में था) अफीम पी रहे थे और अपने पतन और लज्जा द्वारा शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य की आय को बढ़ा रहे थे।"

मारिशस की भारतीय मजदूर-जनता में भी इसी तरह अफीम का प्रचार बढ़ाया जा रहा है। १९१२-१३ में दस पेटियाँ भेजी थी, उसे बढ़ाते-बढ़ाते १९१६-१७ तक वहाँ प्रति वर्ष १२० पेटियां जाने लग गई।

एक ओर इंग्लैंड में Dangerous Drugs Act जारी है और दूसरी ओर यही सरकार अपने अन्य जातीय प्रजाजनों में इस तरह अफीम बेच रही है! यह है घृणित लोभ का परिणाम। जिस अपराध के लिए इङ्गलैंड में वह अपने देश के निवासियों को सजा देती है, पूर्वीय देशों में उसी पर वह टके कमाती है !

स्टेटिसटिक्स ऑफ ब्रिटिश इण्डिया से मिस ला मोटे नीचे लिखा महत्वपूर्ण उद्धरण पेश करती हैं:—

During the ten years, ending 1916-17 the receipts from opium consumed in India incresed at the rate of 44 per cent. The revenue from drugs consumed in India (excluding opium) has risen in ten years by 67 per cent.

भारत में १८१६-१७ मे खतम होनेवाले १० वर्ष मे अफीम की खपत पर सरकार को पहले की अपेक्षा ४४ फी सैकड़ा अधिक आय हुई। और अफीम को छोड़कर दूसरी नशीली चीजो पर कुल ६७ फी सैकड़ा अधिक आय हुई।

संभव है बहुत दिन से गुलामी के आदी होने के कारण भारतवासियों को इसमें कुछ भी विशेषता न दिखाई दे। उन्हे पता नहीं कि स्वाधीन देश की सरकारें अपने प्रजाजनों के स्वास्थ्य और नीति की रक्षा करने में कितनी सावधान रहती हैं। इसीलिए आज हमारे देश में इन नशीली चीजों का ऐसा भाषण प्रचार होने पर भी देश के इने-गिने नेताओ को छोड़कर न कोई अपनी आवाज़ इसकी रोक-थाम के लिए उठाते हैं और न उस प्रश्न मे कोई दिलचस्पी लेते हैं।

आज भी हम अफीम की बन्दी से कोसों दूर है, ऐसा मालूम होता है। जब स्वयं शिक्षित लोगो का यह हाल है तब नरेश और सरकार यदि इस बात में उदासीन हो तो कौन आश्चर्य की बात है ? परन्तु मिस लामोटे जैसी स्वतन्त्र देश की रहनेवाली महिला को तो यह परिस्थिति बड़ी भीषण मालूम हुई। उसने उपर्युक्त उद्धरण पर टीका करते हुए लिखा है:—

A nation that can subjugate 30,00,00,000 helpless Indian people and turn them into drug addicts for the sake of revenue is a nation, which commits a cold-blooded atrocity unparalleled by any atrocity committed in the rage and heat of war.

युद्ध के आवेश और द्वेषपूर्ण वायुमण्डल में यदि किसी राष्ट्र से कोई पाप हो जाता है तो समझ मे आ सकता है। परन्तु वह राष्ट्र, जो तीस करोड़ गरीब भारतीयो को जीतकर धन कमाने के लिए उन्हें नशीली चीजो का गुलाम बना देता है, ऐसा घृणित पाप करता है जिसकी तुलना में युद्ध मे किये गये वे अत्याचार कुछ नहीं हैं।

मिस ला मोटे का यह धिःकार-वचन अंग्रेज राष्ट्र के लिए भले ही कहा गया हो, परन्तु उसमे भारतीयों के लिए व्यंग्य-रूप मे कही अधिक जोरदार धिःकार है। ऐसे लोगो को किस पशु की उपमा दी जाय जिनकी संख्या पैंतीस करोड़ होने पर भी जो कुछ लाख विदेशियों की गुलामी में इतने दीर्घ काल से सड़ रहे है, जिन्हे अपनी गुलामी पर लज्जा नही आती और जो मजे मे नीद के खुर्राटे ले रहे हैं। यही नही बल्कि जो अनेक प्रकार के व्यसनों और व्यभिचार के शिकार हो अपने शरीर और आत्मा को और भी पतित कर रहे हैं।

भारतीयों के लिए यह दूनी शर्म और लज्जा की बात है। अफीम खाकर वे खुद केवल अपना स्वास्थ्यनाश ही नहीं कर रहे हैं परन्तु अफीम पैदा करके दूसरे देशों को भी अफीम का और विदेशियों का गुलाम बनाने मे सरकार की सहायता कर रहे हैं। आज भी भारत की अफीम से यह घृणित काम किया जा रहा है। पाठक जरा अफीम की पैदायश और व्यापार पर एक नजर डाले और देखे कि यद्यपि उसे पहले की अपेक्षा सरकार को बहुत घाटा देना पड़ा है; तथापि इस समय भी वह हमारे देश और हमारे पड़ोसियों और मित्रो के लिए बहुत खतरनाक है।

[४]

पैदायश और व्यापार

आरंभ में कहा गया है, अफीम की पैदायश और बिक्री पर भारत-सरकार ने अपना एकाधिकार रक्खा है। अतः अफीम की खेती सिर्फ सरकार की आज्ञा से सरकार के ही लिए की जा सकती है। अफीम की खेती करनेवाले किसान को खर्चे के लिए पेशगी दाम सरकार से मिलते हैं। प्रतिवर्ष किसान सरकार से अफीम की खेती करने के अधिकार को प्राप्त करते हैं और पैदा की गई अफीम सरकार को सौंप देते हैं। उस समय पेशगी रकम काटकर किसान को अफीम की कीमत दे दी जाती है। कची अफीम ग़ाज़ीपुर के अफ़ीम के कारखाने में भेज दी जाती है। अफीम दो प्रकार की होती है। भारत के लिए और विदेशों के लिए। विदेशो के लिए जो अफीम तैयार की जाती है उसे 'प्रोवीजन' अफीम कहते हैं और उसे बाक़ायदा सन्दूको में बन्द कर दिया जाता है। जो अफीम भारत में बेचने के लिए तैयार की जाती है उसे 'एक्साइज' अफीम कहते हैं।

इन तैयार पेटियों का बँटवारा सरकार यों करती है:—

(अ) विदेशो में भेजने के लिए—

(आ) कुछ अफीम इंग्लैंड को बतौर दवा के उपयोग करने के लिए भी दी जाती है।

(इ) और शेष भारत में बेचने के लिए भारत के आबकारी विभाग को दे दी जाती है।

भारत मे बहुत समय से अफीम की पैदायश होती आई है। फिर उसकी बन्दी या रोक करनेवाला कोई क़ानून भी नहीं था। धर्मशास्त्रों में भी कोई जोरदार निषेध नही था, इसलिए मध्यकाल में अफीम का व्यसन काफी फैला हुआ था। उसके बाद जब पश्चिम से सुधरी हुई अंग्रेज़ सरकार का आगमन हुआ तो इसने अफीम की पैदायश, व्यापार और प्रचार को भी पूर्णतया अपने हाथों मे ले लिया। जिस प्रकार बाहरी देशों को अफीम देकर सरकार ने धन कमाना शुरू किया, उसी तरह उसने हमारे देश में भी किया। उन्नीसवीं सदी में सरकार द्वारा बाक़ायदा चण्डूखाने चलाये जाते थे। ३० अप्रैल सन् १८८९ के 'हॅनसार्ड' मे श्रीयुत केन ने लखनऊ के एक चण्डूखाने का वर्णन छपाया है। मिसाल के तौर पर हम उसीको यहाँ उद्धृत किये देते हैं। वर्णन जरा लम्बा तो है, परन्तु १८८९ में हमारे देश की अवस्था का वह एक हूबहू चित्र कहा जा सकता है। उससे हमे ज्ञात होता है कि देश मे अफीम का व्यसन किस हद तक फैला हुआ था और देश के शासक तथा समाज उसकी ओर से कैसा उदासीन था। चित्र यों है:—

"हम दूसरों के साथ दरवाजे के अन्दर घुसते हैं और अपने आपको एक गंदे आंगन में खड़ा हुआ पाते हैं। इस आंगन के आस-पास चारो ओर मिलकर १५ छोटे-छोटे कमरे हैं। दुर्गन्धि बहुत भयंकर थी। मक्खियों की भिन-भिनाहट से जी घबड़ा रहा था। सड़क से इस दरवाजे के अन्दर घुसने

वालों के चेहरों पर एक प्रकार की विचित्र नारकीय अमानुषता दिखाई देती थी। अब मुझे मालूम हुआ कि एक दूसरी ही 'सरकार' के बाजार में मै आ गया और सो भी अपने जीवन में पहली बार। मैं एक 'चण्डूखाने' की चहारदिवारी के अन्दर था। फाटक पर एक चीनी सुंदरी बैठती है। उसका पति अपने ग्राहकों से बाते करने मे तथा उन्हे ऐसे कमरों में ले जाने में लगा हुआ है जिनमे भीड़ नहीं है। उस सुंदरी के सामने एक मेज हैं जिस पर कई पैसे पड़े हुए हैं। सचमुच वह पूरी 'पेशाबाज' प्रतीत होती है। इस दूकान की आय मे से आधी रकम तो कलकत्ता के सरकारी कोश में जाती है और शेष आधी सरकारी कर उगाहने वाले—अर्थात् अफीम के कृषक के पास (क्योंकि वही तो सच्चा कृषक है)। इस स्थान को देखने की इजाजत लेकर मैं उन कमरो मे से एक के अन्दर घुसा। कमरे मे कोई रोशनदान या खिड़की नही है। बिलकुल अँधेरा है। बीच मे कोयले जल रहे हैं। उनके धुँधले प्रकाश से मालूम होता था कि कमरे के अन्दर कोई नौ-दस व्यक्ति बैठे हुए हैं—नहीं, गोल बांधकर पड़े हुए हैं, मानों किसी गंदी गुफा मे सुवर पड़े हों। प्रत्येक कमरा एक पंद्रह-सोलह साल की लड़की के जिम्मे होता है। आग कहीं बुझ न जाय इसका वह खयाल रखती है। वह प्रत्येक आगन्तुक के मुँह में चिलम देकर उसे जला देती है और चिलम को तब तक बराबर पकड़े रहती है जब तक कि धुँआ खींचते-खींचते वह आगन्तुक बेहोश होकर अपने से पहले आने वाले ग्राहक के बदन पर नहीं लुढ़क जाता। उस समय हमने देखा कि कमरे के अन्दर २।३ आदमी इस स्थिति को

पहुँचने को थे। मै शनिश्चर की रात को ईस्ट एण्ड जिन पॅलेसेस पर भी गया था। मैंने इससे पहले कई प्रकार की सान्निपातिक बहोशियो के मरीजों को देखा है, पागलखानो को भी देखा है। पर कही भी मनुष्य के रूप में परमात्मा की प्रतिमा का ऐसा भयंकर नाश मैंने नही देखा, जैसा कि लखनऊ में अफीम की इस 'सरकारी' दूकान पर देखा है। अफीम के शिकारो में एक १८।१९ वर्ष की सुन्दरी युवती भी थी। उसके दयनीय चेहरे को मै मरणपर्यन्त नही भूल सकता। उस भयंकर विष के कारण वह कैसी बेहोश होती जा रही थी! उसकी नशीली आँखे कैसी मुँदती जा रही थी—उन चमकीले सफेद दाँतो पर से उसके वे फीके होठ कैसे खिच रहे थे! उसी उम्र की एक दूसरी लड़की नये आगन्तुको के झुंड में एक मस्त करुण गीत गा रही थी जब कि उस विष की चिलम बारी-बारी से एक दूसरे के हाथो में दी, जा रही थी। उस सारी दुकान मे मैने चक्कर लगाया। पंद्रहों कमरों मे गया। और गिन कर ९७ स्त्री-पुरुषो को बेहोशी की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में पाया। नौसिखिये अफीमची तो दो-चार पैसे से भी काम चला लेते थे। प्रतिदिन उन्हे अधिकाधिक अफीम की जरूरत पड़ती। इस दुष्ट दूकानदार ने तो मुझे ऐसे शख्स भी बताये, जिनकी तमाखू मे तीव्र अफीम की १८० बूँदे डालने पर भी उन्हे नशा नहीं आता था। पर इस भयंकर विषैले स्थान में ठहरना मुश्किल था। ज्यों-त्यो करके मैं गिरता पड़ता इस विष-मंदिर से बाहर भागा।"

उन्नीसवी सदी के अन्त मे भारत की यह दशा थी। शहरो में अफीम का बेहद प्रचार था और जैसा कि इस उद्धरण से

ज्ञात होता है सरकार स्वयं ऐसी भयंकर दूकानें चलाती थी। यह अवस्था हमारे समाज के लिए तथा सरकार के लिए भी निःसन्देह लज्जाजनक थी। जबतक हम किसी भी बुराई का सक्रिय प्रतीकार करना नहीं सीखेंगे तब तक हम अपनी वर्तमान अवस्था से कभी निकल नहीं सकते। श्रीयुत केन जैसे सज्जनों ने इंग्लैंड मे जाकर भारत की अवस्था का वर्णन किया। वहाँ बहुत भारी आन्दोलन हुआ। हमें पता नहीं कि भारतीय जनता ने इस बुराई को मिटाने के लिए क्या किया। अंग्रेज़ जनता के आन्दोलन के फल-स्वरूप भारत में अफीम के प्रचार और व्यापार की दशा का अवलोकन और जाँच करने के लिए एक रॉयल कमिशन की नियुक्ति हुई (१८९३)। कमिशन ने जाँच की और उसकी रिपोर्ट सात जिल्दों में प्रकाशित की गई (१८९५)। उसने यह आविष्कार किया कि "अफीम हानिकर वस्तु नहीं है। और एक तो लोग उसका उपयोग अधिक परिमाण मे करते ही नहीं और यदि कोई करता भी है तो समाज में उसकी बड़ी निन्दा होती है।" इत्यादि। परन्तु इसमें सब एकमत नहीं है। भिन्न मत रखनेवाले सदस्यों ने अपनी रिपोर्ट अलग प्रकाशित की थी। पर उसे अब भुला दिया गया है। आश्चर्य तो यह है कि आज भी इस १८९३ ई० के कमिशन की बातों को वेद-वाक्य के समान दोहराया जाता है। अधिकारियों के दृष्टिकोण मे अभी अफीम की खेती और प्रचार को बन्द करने के विषय मे कोई विशेष परिवर्तन नही दिखाई देता। गत एक-दो साल से शिमला और दिल्ली में 'अफीम की बन्दी' की सभाएँ जरूर होने लगी हैं। परन्तु उनका कोई ठोस फल अभी प्रकट नहीं हुआ है।

भारत-सरकार की सेंट्रलब्यूरो ऑव इन्फरमेशन के डाइरेक्टर श्रीयुत रशब्रुक विलियम्स लिखते हैं—"भारत की विशेष परिस्थिति पर बिना विचार किये भारत-सरकार की नीति को समझना असंभव है। ईसवी सन् १८९३ मे रॉयल कमिशन ने पाया कि भारतीय जनता का बहुत भारी हिस्सा अफीम को बन्द करने के पूर्णतया विरोधी था। क्योंकि लोग इसे व्यक्तिगत स्वाधीनता पर अनावश्यक नियंत्रण समझते थे, और वास्तव मे यह तो सदियों की पुरानी आदतों और रिवाजो मे हस्तक्षेप है भी। हमें यह याद रखना चाहिए कि भारत की जमीन अफीम तो पैदा करता ही रहेगी। भारत की जनता ने सदियों से अपने आपको अफीम का आदी बना लिया है और उसका खयाल है कि अफीम में कितने ही रोगों को मिटाने के गुण भी हैं। आदत पुरानी हो जाने के कारण सामाजिक रस्म-रिवाजों में भी वह जड़ पकड़ गई है।" यह सब लिखकर रायल कमिशन की दुहाई देते हुए श्रीयुत रशब्रुक विलियम्स फिर अफीम की बन्दी को खतरनाक बताते हैं।

रॉयल कमिशन की राय है—"दूर दृष्टि, विचार-शीलता तथा राजनीति के दृष्टिकोण से विचार करने पर यही साफ़-साफ दिखाई देता है कि जब तक भारत ऐसी बात के पक्ष में अपना मत नहीं दे देता, भारत की शासक ब्रिटिश-सरकार की हैसियत से हम एक ऐसी बात के लिए, उन्तीस करोड़ जनता पर प्रयोग नही कर सकते, जिसका सम्बन्ध उसके गहनतम वैयक्तिक जीवन से है।"

एक महान देश का इससे अधिक उपहास और किन शब्दों में हो सकता है ? हाँ, भारत अभी सामूहिक विरोध की कला को नहीं सीख पाया है। पर उसने अफीम का इतने बड़े पैमाने पर चीन के साथ व्यापार करने को भी तो अंग्रेज सरकार से कब कहा था ? वह कब अंग्रेजो को सात समुद्र पार से यहाँ शासन करने का न्यौता देने के लिए इंग्लैंड गया था ? उसने कब कहा था कि वे उसके जन्म-सिद्ध अधिकार को छीनकर इस देश के स्वामी बन बैठे। क्या स्वाधीनता मनुष्य के और देश के व्यक्तिगत जीवन में इस अफीम और शराब-बन्दी के प्रश्न की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण स्थान रखती है ? भारत ने कब कहा था कि उस पर लंकाशायर का कपड़ा लादकर इस देश की कला-कौशल और आजीविका के साधन को निघृ̃ण दुष्टता-पूर्वक नष्ट कर दिया जाय ?

जिस समय रॉयल कमिशन भारत के लिए ऊपर लिखे अनुसार राय दे रहा था, इंग्लैंड में उसी समय नशीली चीज़ों की रोक करनेवाला कानून बना था। अफीम या उससे बननेवाली चीजो का खरीदना, खाना और पीना इंग्लैंड में रोक दिया गया। ब्रिटिश-साम्राज्य के कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड आदि उपनिवेशो में भी यही क़ानून हो गया। पर उसी साम्राज्य के अन्य देशों मे, जिनमे स्वायत्त शासन नहीं है, जिनका शासन ठेठ इंग्लैंड से होता है, जो रक्षित संस्थान है, रॉयल कमिशन की वही पुरानी दलीलें काम देती है।

सन् १९२२ में इण्डिया ऑफिस से The Truth about Indian Opium (भारत की अफीम के बारे मे सच्ची बात)

नामक एक पुस्तक प्रकट हुई है। तब तक रायल कमीशन को पच्चीस वर्ष हो चुके थे। परन्तु शासकों के दृष्टिकोण में इन पचीस वर्षों में भी कोई फ़र्क नही हुआ। अफीम-बन्दी पर इस पुस्तिका में नीचे लिखे विचार हम देखते हैं—

"भारत में अफीम खाने की बन्दी को हम तो असंभव समझते हैं। इसके लिए प्रयत्न करना भी सरकार तथा जनता के लिए खतरनाक है। हम यह बिना किसी हिच-किचाहट के रॅायल कमिशन के आधार पर कह रहे हैं जिसने १८९५ में रिपोर्ट किया था कि—"व्यसन के तौर पर अफीम की आदत भारत में नही के समान है। अफीम का भारत में दवा के बतौर और वैसे भी बहुत बड़े पैमाने पर उपयोग किया जा रहा है। कई उदाहरण ऐसे हैं जिनमें यह फ़ायदेमन्द पाई गई। उसका दवा के रूप में भी समान ही उपयोग होता है। बेचते समय इस बात को ध्यान में रखकर अफीम नहीं बेची जा सकती कि किसे दवा के लिए और किसे अपनी दूसरी आवश्य-कता की पूर्ति के लिए अफीम देनी चाहिए। यह आवश्यक नही कि ब्रिटिश भारत में सिर्फ दवा के लिए ही अफीम पैदा की जाय और बेची जाय तथा अन्य सब प्रकार के उपयोगों के लिए उसकी बन्दी कर दी जाय। भारत के अधिकांश अफीम खानेवाले अपनी आदत के गुलाम नहीं हैं। वे थोड़ी मात्रा में लेते हैं और जब उसकी जरूरत नहीं होती उसे छोड़ सकते हैं और छोड़ भी देते हैं। लोग अफीम को एक साधारण किन्तु गृहस्थ के लिए अत्यन्त क़ीमती दवा समझते हैं और देश भर में उसका उपयोग करते हैं। लोग अपनी थकावट को दूर करने के लिए अफीम खाते

हैं और उदर रोगों पर भी उसका सेवन करते हैं। मलेरिया से बचने के लिए भी लोग अफीम खाते हैं। मधुमेह मे पेशाब में जानेवाली शक्कर को रोकने के लिए अफीम का लोग उपचार करते हैं। साधारणतया सभी उम्र के स्त्री-पुरुषों के दुःखों को दूर करने के लिए अफीम का उपयोग किया जाता है। यह याद रखने की बात है कि भारतीय जनता का अधिकांश हिस्सा सुशिक्षित डाक्टर की सेवाओं से लाभ उठाना भी नहीं जानता। वे प्रायः संपूर्णतया अपनी घरेलू दवाओ और जड़ी-बूटियों पर निर्भर रहते हैं। फासला और सहिष्णुता उन्हे कुशल और सुयोग्य डाक्टरों का इलाज करने से रोकते हैं। इस परिस्थिति मे थोड़े-थोड़े परिमाण में बच्चो को बीमारी में अफीम देना उनके लिए एक अत्यन्त फ़ायदे की चीज़ है। बूढ़े अपाहिजो के लिए भी वह कम फायदेमन्द नहीं है। असाध्य बीमारियों में भी उसका उपयोग होता ही है। इस परिस्थिति में अफीम को इतनी दुर्लभ बना देना कि वह केवल डाक्टर की आज्ञा से ही आदमी को मिल सके, एक हास्यास्पद बात होगी। और उन करोड़ों भारतीयो के प्रति तो वह शुद्ध अमानुषता होगी।"

यह भी जाने दीजिए। जब से लीग ऑव नेशन्स की स्थापना हुई है, अफीम के विरोध में उसकी अधीनता मे बड़ा ज़बरदस्त आन्दोलन हुआ है। परन्तु भारत-सरकार ने अपनी मर्यादा के बाहर एक क़दम नहीं रक्खा। १९२६ में प्रकाशित अपने निर्णय में भी उसने स्पष्ट यही कहा है कि वैज्ञानिक और औषधि-प्रयोग को छोड़कर अफीम की पूर्ण बन्दी की नीति भारत मे केवल अव्यवहार्य ही नही बल्कि अनिष्ट भी होगी।

इस बात से तो कोई इन्कार नहीं कर सकता कि अफीम में दर्द दबा देने के गुण हैं। परन्तु साथ ही उसमें आदत डालने के गुण भी तो हैं। और क्या अफीम की आदत हानिकर नहीं है ? युरोप के देशों में तो उसके देने न देने का अधिकार डाक्टरों के अधीन रक्खा गया है और वह डाक्टरो की देख-भाल ही में ली भी जाती है।

हम मानते हैं कि स्वर्गीय श्री केरहार्डी, श्रीयुत् स्टेड और इंग्लैण्ड की अफीम-विरोधी सभा के प्रयत्नों के फल-स्वरूप यहाँ पर अफीम का धुआँ पीने पर कठोर नियन्त्रण रख दिया गया है और उसके लिए सरकार देश के धन्यवाद की पात्र भी है। पर उसका कर्त्तव्य यही समाप्त नही होता। उसके लिए बहुत-कुछ करना बाक़ी है। अब भी भारत में अफीम का काफी प्रचार है। ब्रिटिश-भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे अफीम का प्रचार प्रति १०००० मनुष्य इस प्रकार है:—

(१९२७–२८)

प्रान्त	सेर	प्रान्त	सेर
युक्तप्रान्त	५	मदरास	८.२
बंगाल	८.५	सीमाप्रान्त	८.८
बिहार-उड़ीसा	७.२	बम्बई	१४
पंजाब	१९	ब्रह्मा	२१
बलुचिस्तान	१३	आसाम	३८
कुर्ग	१.७	मध्यप्रदेश	१८
अजमेर-मेरवाड़ा	६८		
कुल भारत की औसत	१२		

अन्तरराष्ट्रीय समझौते के अनुसार जितने की इजाज़त है	६

पर पैदायश इससे भी कही ज्यादा की जाती है। ये हैं सन् १९१०-११ से १९२५-२६ तक अफीम की पैदायश के अंक:—

प्रान्त	१९१०-११	१९२५-२६
बम्बई	१०२९ मन	८९० मन
मदरास	१४३५	७५४
बंगाल	१६०६	९९९
ब्रह्मा	१४४४	७१८
बिहार-उड़ीसा	८८२	६२६
युक्तप्रान्त	१५४५	५५०
पंजाब	१५८४	९४१
मध्यप्रान्त	१३०७	७९४
आसाम	१५०९	८३८
सीमाप्रान्त	६९	४८
अजमेर मेरवाड़ा (कुछ अधिक) अंक नहीं		
समस्त भारत	१२५२७ मन	७५८२ मन
देशी राज्यों से प्राप्त		६५००

भारत-सरकार को इधर-इधर प्रतिवर्ष अफीम के व्यापार से इस प्रकार आय होती रही है।

वर्ष	विदेशों और दवा के लिए	भारत में खपत के लिए	कुल आय	अफ़ीम की क़ीमत	अन्य व्यय	असली नफ़ा
१९–	लाख रु०	लाख रु०	लाख रु०	लाख रु०	लाख रु०	लाख रु०
२७–२८	३१६	७९	३९५	७४	१३	३०८
२८–२९	२५७	७०	३२७	४२	१३	२७२
२९–३०	२३१	७३	३०४	३७	१२	२५५
३०–३१	१९१	७१	२६२	६४	११	१८७
३१–३२	१५४	६१	२१६	६२	११	१४२ (बजट में)

पर ये अंक तो सिर्फ भारत-सरकार की आय के हैं। वह भारत में काम में आनेवाली अफीम प्रांतीय सरकारों को बाँट देती है जो उसे ठीकेदारो द्वारा दूकानें खुलवाकर बेचने का प्रबन्ध करती हैं जिससे वे उपर्युक्त आय के अलावा तीन करोड़ से अधिक रुपया कमा लेती हैं। सरकारी अंकों के अनुसार भारत में कुल २,६०००० सेर अफीम खपती है।

सरकारी अफीम केवल उन्हीं लोगों को बेचने के लिए दी जाती है जिनके पास परवाने होते हैं। सरकार इन परवानों

को प्रतिवर्ष नीलाम करती है। और जो सबसे अधिक बोली लगाकर ये परवाने खरीदते हैं उन्हीं को निश्चित शहर या सीमा के अन्दर दूकान लगाने की इजाजत देती है। परवाने थोक और फुटकर बेचने वालो के अलग अलग होते हैं। थोक बिक्री का ठीकेदार फुटकर बेचनेवालों को या अपने ही समान थोक के अन्य ठीकेदारों को अफीम बेचता है। और फुटकर बेचनेवाला जनता को। इस तरह अफीम के ग्राहक को अफीम की क़ीमत, भारत-सरकार का कर और नफा, प्रांतीय सरकार का नफा और ठीकेदार का नफा अदा करके अफीम खरीदनी पड़ती है।

सरकोर की नीति यही है। खूब कर लगावेंगे तो बिक्री अपने आप घटेगी। पर अक्सर यह नीति बहुत कम सफल होती है। लोग चुरा कर अफीम मँगाने लग जाते हैं। वास्तव मे सच्चा मार्ग तो वही है जो लीग ऑव नेशंस ने बताया है–अर्थात् अफीम का उपयोग केवल दवा के लिए होना चाहिए। पर भारत-सरकार अफीम के शामिल उपयोग के सम्बन्ध मे बिलकुल उदासीन है फिर खरीदने वाला चाहे जिस उद्देश से खरीदता हो। इंग्लैड मे यह कभी नहीं चल सकता। हाँ, संग्रह की सीमा जरूर बाँध दी गई है। पर वह प्रत्येक आदमी के लिए ३६० ग्रेन से लेकर ५४० ग्रेन तक भिन्न-भिन्न है।

पिछले कुछ वर्षों में विदेशो के लिए नीचे लिखे अनुसार प्रोविजन अफीम तैयार की गई।

वर्ष	पेटियाँ
१९१७-१८	१४४९९
१८-१९	१२५००
१९-२०	७४००
२०-२१	५८००
२१-२२	७५००
२२-२३	९०००

प्रत्येक पेटी में १४० पौंड अफीम होती है। इस अफीम की इंग्लैंड, ब्रिटिश-साम्राज्य के पूर्वी उपनिवेशों तथा सीलोन, लंका, स्ट्रेट्स सेट्लमेन्ट्स, हांगकांग, मकाओ, जापान, इन्डोचायना, जावा, श्याम, ब्रिटिश उत्तरी बोर्नियो, मारिशस, ब्रिटिश वेस्ट-इन्डीज, न्यू साउथवेल्स, फीजी द्वीप-समूह और ब्राजिल आदि देशों को प्रतिवर्ष नीचे लिखे अनुसार, पेटियाँ जाती है।

	१९१७-१८	१८-१९	१९२०
विदेश और इंग्लैंड के उपनिवेशो की सरकारो को	७८६४	८७०१	७८१६
ग्रेट ब्रिटेन	३०५१½	२४००	९००
इन देशों के खानगी व्यापारियो को	५७३८	६२७७	२६४३
विदेशो में कुल	१६६५३	१७३५८	११३५९

भारत से एक्स्ट्रा चायना मार्केट के लिए पहले प्रतिवर्ष १६००० पेटियाँ जाती थीं। एक समय यह संख्या १००००० पेटियो तक पहुँच गई थीं। पर अब अफीम के निकास को

बहुत घटा दिया गया है। जिनेवा में लीग ऑव नेशन्स के अधिनेतृत्व में एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता हो गया है जिसके अनुसार भारत-सरकार को भी सन् १९२६ से प्रतिवर्ष फी सैकड़ा १० अफीम का निकास घटाते घटाते १० वर्ष में अफीम के वैदेशिक व्यापार को बन्द कर देना पड़ेगा। अतः हम आशा कर सकते हैं कि १९३५ के लगभग यह लज्जाजनक व्यापार बिलकुल बन्द हो जायगा।

7/6

[५]

संसार-व्यापी विरोध

अफीम और अन्य भयंकर मादक द्रव्यो के उपयोग को नियन्त्रित करने के आन्दोलन का अन्तर्राष्ट्रीय ढंग पर ईसवी सन् १९०९ मे आरम्भ हुआ। प्रेसिडेण्ट टॅफ्ट ने शंघाई मे पहले-पहल १९०९ की फरवरी में अफीम के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सभा निमन्त्रित की। उसी वर्ष के सितम्बर मास में युनाइटेड स्टेट्स ने संसार के उन सभी राष्ट्रो को हेग मे एकत्र होने के लिए निमन्त्रित किया जिन्होने शंघाई की सभा में भाग लिया था। और उनसे प्रार्थना की कि "शंघाई की सभा मे, जो भूमिका के तौर पर काम हुआ था, उसके आधार पर सब मिलकर, एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता या सुलह कर लें।" यही वह प्रख्यात "हेग ओपियम कन्वेन्शन" है जिसका उद्देश संसार में अफीम आदि नशीली चीजो के दुरुपयोग का अन्त कर देना था। इस कन्वेन्शन का अधिवेशन ईसवी सन् १९१२ की जनवरी मास मे हुआ था। और ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रान्स, इटली, हॉलैण्ड, पुर्तगाल, रूस, चीन, श्याम, ईरान, और युनाइटेड स्टेट्स इन बारह देशो ने मिलकर अफीम तथा अन्य नशीली चीजो के उपयोग को बन्द करने के लिए आपस मे सलाह-मशविरा किया जिसके फल-स्वरूप एक लम्बा-चौड़ा समझौता हुआ। इसमे सभी राष्ट्रो को

अपने राज्यों, साम्राज्यों या रक्षित प्रदेशों में अफीम तथा उसीके समान नशीली चीजों के व्यवहार को केवल डॉक्टरी उपचारों के लिए सीमित करने की सलाह दी गई। कच्ची अफीम, बनी-बनाई (Manufactured) अफीम, कोकेन, मॉर्फाइन, हिरॉइन तथा ऐसे ही भयंकर नशीले द्रव्यों को बिना सरकार की आज्ञा के पास रखना, बेचना, बनाना, विदेशो में भेजना तथा चुराकर अपने देश में लेना इत्यादि को अपने प्रदेशो में अपराध करार देने तथा उस आज्ञा के उल्लंघन करनेवालों को अन्य नैतिक तथा सामाजिक अपराध करने वालों के समान दण्ड देने का आदेश सभी सम्मिलित राष्ट्रो को दिया गया। सिफारिश तो सभी राष्ट्रो से यही की गई कि इन मादक द्रव्यो का साधारण व्यवहार बन्द ही कर देना चाहिए। केवल डॉक्टरी या रासाय-निक तथा वैज्ञानिक उपयोग के लिए सरकार की आज्ञा से सुविधा रहनी चाहिए। परन्तु प्रत्येक देश को अपनी-अपनी सुविधा और परिस्थिति के अनुसार इस आदर्श की ओर आगे बढ़ने के लिए अनुरोध किया गया। इस 'कन्वेन्शन' के काम-काज को चलाने, आगे वढ़ाने इत्यादि कामों के लिए नेदरलैण्डस की सरकार को जिम्मेदार बना दिया गया और जनवरी २३ सन् १९१२ को इग्लैंड को छोड़ उपर्युक्त सभी राष्ट्रों ने उस पर हस्ताक्षर कर दिये। ग्रेटब्रिटेन ने नीचे लिखा डिक्लेरेशन (घोषणा) पेश करके तब इस कन्वेन्शन पर हस्ताक्षर किये। डिक्लेरेशन यों है—

The articles of the present Convention, if ratified by His Britannic Majesty's Government, shall apply to the Government of India, Ceylon, the

Straits Settlements, Hongkong and Weihaiwei in every respect in the same way as they shall apply to the United Kingdoms of Great Britain and Ireland; but His Britannic Majesty's Government reserve the right of signing or denouncing separately the said Convention in the name of any dominion, colony, dependency, or protectorate of His Majesty, other than those which have been specified.

[अर्थात् यदि ब्रिटेन के सम्राट् की सरकार ने इस कन्वेन्शन को मंजूर कर लिया तो यह ब्रिटिश भारत, सीलोन, स्ट्रेट्स सेटलमेन्ट्स, हाँगकाँग और वीहाईवी (चीन) को उसी तरह लागू होगा जिस तरह कि वह ग्रेटब्रिटेन और आयर्लैण्ड के संयुक्तराज्य में लागू होगा। परन्तु उपर्युक्त देशो, उपनिवेशों आदि को छोड़कर साम्राज्यान्तर्गत अपने अन्य प्रदेशों की ओर से इस कन्वेशन को पृथक्-पृथक् मन्जूर करने या नामन्जूर करने के हक को ब्रिटेन की सरकार सुरक्षित रखती है।"]

इसके बाद इसे और भी परिष्कृत करने के लिए १९१३ में और १९१४ के जून में और एक-एक बार कन्वेंशन की बैठक हुई थी।

कन्वेन्शन में यह समझौता करना आसान नही था। कोई राष्ट्र इन विषैले पदार्थों के व्यापार-व्यवहार को बन्द करने के लिए उत्सुक नहीं था। व्याकुलता तो किसी मे थी ही नही। क्योंकि सब इन पदार्थों के व्यापार से कुछ न कुछ आर्थिक फायदा उठा रहे थे। जिसपर इस समझौते से पानी फिरने का डर था। अतः प्रत्येक अपने फायदे को बनाये रखने की चिन्ता में था। समझौते

का विरोध करने के लिए जितनी कोशिशे हो सकीं, की गई; जिस तरह हो सका बचाव की सूरतें भी हुईं और हम देखते हैं कि इसके फलस्वरूप जो समझौता हुआ, वह भी बड़ा ढीला-ढाला है। एक मामूली (Formal) नैतिक कबूली के सिवा वह है ही क्या ? हर एक राष्ट्र ने अपने बचाव के लिए, या उसमें से सटकने के लिए कहीं न कहीं छिद्र रख लिये हैं। बात यह थी कि यद्यपि कितने ही राष्ट्र इस समझौते को चाहते तो नहीं थे परन्तु वे ख्वाहमख्वाह यह शोर भी तो होने देना पसन्द नहीं करते थे कि फलां राष्ट्र ऐसे फायदेमन्द और संसार के हितकारी काम का भी विरोधी है। खैर बड़ी बात तो यही थी कि इस रूप में ही सही समझौता हो तो गया। सब राष्ट्रों ने यह तो क़बूल कर लिया कि फलां-फलां चीजे मनुष्य जाति के लिए हानिकर हैं और उनके प्रचार को रोकना सरकारों का काम है।

पर उसका नतीजा कुछ न हुआ। अनिच्छुक राष्ट्रों के लिए छूटने के कई रास्ते थे। "अपने-अपने देश की परिस्थिति" और अफीम को "क्रमशः" बन्द करने के वे मनमाने अर्थ लगा सकते थे। फिर कन्वेन्शन की अन्तिम बैठक १९१४ मे हुई। जब कि चारों ओर से यूरोप के भीमकर्मा वृकोदर राष्ट्र पृथक्-पृथक अपने-अपने युद्ध-शंख बजा रहे थे। इस शंखनाद और तोपों की दनदनाहट मे अफीम को भी अपना मौक़ा मिल गया। युद्ध के बाद जब वर्सेलिज की सुलह हुई तब उसमें यह तय हुआ—

"*धारा २९५ :* जनवरी २३ सन् १९१२ के हेग कन्वेन्शन को उसमें भाग लेनेवाले जिन राष्ट्रों ने हस्ताक्षर नहीं किये हैं वे स्वीकार करते हैं। अब वे उसपर अमल करेंगे और उसे व्याव-

हारिक रूप देने की गरज से इस सुलह के स्वीकृत होने के बाद बारह महीने के अन्दर आवश्यक क़ानून बनावेंगे।

वे राष्ट्र यह भी क़बूल करते हैं कि जिन राष्ट्रों ने १९१२ के कन्वेन्शन पर हस्ताक्षर नहीं किये हैं, उनके लिए इस सुलह (वर्सेलिज़ की) पर हस्ताक्षर करना उस कन्वेन्शन को मानने तथा उसके बाद १९१४ मे नियन्त्रित तीसरी ओपियम कान्फ्रेंस में स्वीकृत प्रस्तावों के अनुसार बनाये गये इक़रारनामे पर भी हस्ताक्षर करने के समान ही है।"

इसलिए फ्रांस की प्रजासत्ताक सरकार नेदरलैंड्स (हालैण्ड) सरकार को इस सुलह की प्रामाणिक प्रति भेजकर उसे अपने दफ्तर मे उसी प्रकार सुरक्षित रखने के लिए कहेगी, मानों वह ओपियम कन्वेशन की मन्जूरी और १९१४ मे तय हुए विशेष इक़रारनामे पर किये गये हस्ताक्षरवाला महत्वपूर्ण दस्तावेज़ हो।"

इस तरह जब वर्सेलिज की सुलह हुई तब हेग कन्वेन्शन को राष्ट्र-संघ की शर्तों में शामिल कर दिया गया। और राष्ट्र-संघ को ज़िम्मेदार बना दिया कि वह ख़याल रक्खे कि उपर्युक्त राष्ट्र उस कन्वेन्शन की शर्तों का ठीक-ठीक पालन कर रहे हैं।

राष्ट्र-संघ के अधीन यह काम आते ही उसने इस विभाग की देख-भाल के लिए एक सलाहकार समिति (Advisory Committee) बना दी और अपना काम आसान कर लिया। समित एक स्थायी संस्था है। निश्चित समय पर उसकी बैठकें होती रहती हैं। उसने सभी प्रकार की नशीली चीज़ों के सम्बन्ध मे अत्यंत महत्वपूर्ण और उपयोगी साहित्य भी ख़ूब इकट्ठा कर लिया है। और यदि वह स्वतंत्र होती, उसके हाथों मे कुछ सत्ता

भी होती, तो वह संसार का बहुत उपकार कर सकती थी। पर वास्तव में वह तो केवल सलाहकार-समिति मात्र है। सिवा सूचनाएँ और सिफारिशें राष्ट्र-संघ की कौन्सिल मे विचारार्थ पेश करने के उसके हाथो में कुछ है ही नही। उन सूचनाओं का स्वीकार करना, उनपर अमल करना या उन्हे रद्दी की टोकरी मे डाल देना, उस कौन्सिल की मर्जी की बात है।

और यह कौन्सिल क्या है? उन्ही राष्ट्रों के प्रतिनिधियो की वह बनी है जो संसार में शक्तिशाली हैं। प्रत्येक प्रतिनिधि अपने देश के आदर्श, विचार और फायदे के अनुसार अपनी वृत्ति रखता है। फलतः कई उस कौन्सिल के कार्य को उदात्त बनाने की कोशिश करते हैं तो कुछ उसे खींचकर गिराने की (अर्थात् उनकी दृष्टि से सद्भावपूर्वक ही) कोशिश करते हैं। और हम देखते हैं कि जिन उच्च सिद्धान्तों को लेकर राष्ट्र-संघ की स्थापना हुई थी, उनमें से बहुत थोड़ी बातों का पालन हुआ है। बात यह है कि यह दोष उस भव्य इमारत में लगी लकड़ी या पत्थर का नही है, वह उस वृक्ष का और पत्थर की खान का ही दोष है, जिससे लकड़ी-पत्थर लेकर यहाँ लगाये गये थे। अफीम के प्रश्न का भी लीग ऑफ नेशन्स की कौन्सिल में यही हाल हुआ।

सन् १९२१ में चीन के डेलीगेट श्रीयुत् वेलिंगटन कू ने लीग की कौंसिल के सामने यह प्रस्ताव पेश किया कि संसार में अफीम की केवल उतनी ही खेती की जाय जितनी डॉक्टरी तथा वैज्ञानिक उपयोग के लिए आवश्यक हो। असेम्बली ने क्या किया? बड़ी खूबी के साथ इसके शब्दों को बदलकर प्रस्ताव की आत्मा को उसमें से निकालकर फेंक दिया। ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि ने

यों सूचित किया कि अफीम संसार की 'उचित' आवश्यकताओं के अनुसार पैदा की जाय । इस छोटे-से परिवर्तन ने तो जमीं-आसमान का फर्क़ कर दिया । पूर्व में तो अफीम खाना और पीना भी 'उचित आवश्यकता' में ही शुमार किया जाता है । दुर्भाग्यवश असेम्बली ने इस परिवर्तन को क़बूल भी कर लिया । और इस अशुभ परिवर्तन ने अभागे हेग-कन्वेशन के सारे काम को चौपट कर दिया । राष्ट्र-संघ जैसी महान्-संस्थाएँ नीति-च्युत होने पर संसार के लिए कितनी भयंकर साबित हो सकती हैं यह बताने के लिए यह छोटा-सा उदाहरण काफी होगा ।

फिर समुद्र-मंथन शुरू हुआ । अमेरिका ने लीग की ओपियम-कमिटी के सामने हेग-कन्वेन्शन के असली अर्थ को रखने तथा उसके उद्देश्य को समझाने की आज्ञा चाही और उसके प्रतिनिधि फिर १९२३ में जिनेवा पहुँचे । माननीय श्रीयुत स्टिफेन जी. पार्टर इस मण्डल के अध्यक्ष थे । उन्होंने नीचे लिखे प्रस्ताव कमेटी के सामने पेश किये ।

(१) "यदि हेग के कन्वेन्शन के उद्देश्य को उसके ठीक अर्थ और भावों में पूर्ण करना हमें मंजूर है तो हमें यह जरूर क़बूल कर लेना चाहिए कि डॉक्टरी और वैज्ञानिक उपयोग को छोड़कर अफीम का अन्य प्रकार से व्यवहार करना अनुचित है, वह उसका दुरुपयोग है ।

(२) और इन चीजों के दुरुपयोग को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि अफीम की पैदायश इतनी थोड़ी कर दी जाय कि उपर्युक्त डॉक्टरी और वैज्ञानिक उपयोग के अलावा और तरह के व्यवहार के लिए अफीम बच ही न पाये ।"

श्रीयुत् पोर्टर ने बड़े जोरों के साथ अपने पक्ष को कमेटी के सामने रक्खा और उससे अनुरोध किया कि वह हेग कन्वेन्शन के उद्देश्य के इस स्पष्टीकरण पर फिर अच्छी तरह विचार करे। उन्होंने कमेटी से यह भी साग्रह निवेदन किया कि यदि वह ठीक समझे तो इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए लीग की कौन्सिल से और असेम्बली से अनुरोध करे।

कमेटी मे इन अमेरिकन प्रस्तावों पर बड़ी जोरों की बहस हुई। पहले-पहल तो चीन को छोड़कर एक भी देश इन अर्थों को स्वीकार करने के लिए तैयार न हुआ। पर आगे चलकर विरोध का क़िला टूट गया। और एक को छोड़कर सब देशों ने अमेरिकन प्रस्ताव में बताये अर्थ को क़ुबूल कर लिया। और वह एक देश कौनसा था ? हमे कहते हुए लज्जा आती है कि वह था भारत। भारत से मतलब है भारत-सरकार का भेजा हुआ प्रतिनिधि। उसने इस बात को मानने से इन्कार किया कि हेग कन्वेन्शन की मन्शा के अनुसार अफीम खाना अनुचित है। बात मैदान में आ गई। दलील यह थी—

"The use of raw opium according to the established practice in India, and its production for such use, are not illegitimate under the convention"

अर्थात् कच्ची अफीम का उपयोग भारत की रूढ़ि के अनुकूल है और इस उपयोग के लिए अफीम पैदा करना कन्वेन्शन की मन्शा के अनुसार अनुचित नहीं है। भारत सरकार के प्रतिनिधियों ने यह भी कहा कि *भारत में अफीम का प्रचार आ व्यवहार यह हमारे अपने घर की बात है*। इसमें एक अन्तर-

राष्ट्रीय संस्था को हस्तक्षेप करने या सवाल करने का भी कोई अधिकार नहीं है।

आश्चर्य की बात यह है कि भारत-सरकार इस बात को क़बूल करती है कि वह ऐसे देशो को अफीम नहीं भेजेगी जिन्होंने अपने प्रदेश में अफीम की बन्दी कर रक्खी है। पर भारत में अफीम के प्रचार के विषय में उसकी यह वृत्ति है। ब्रिटिश सरकार दूसरे देशो को अफीम की बन्दी मे सहायता करना चाहती है। इंग्लैंड मे भी ब्रिटिश-सरकार ने क़ानून बना रक्खा है, पर जब कोई उसे भारत मे अफीम के विषय में ऐसा नियंत्रण करने को कहता है तो यह जवाब मिलता है।

इसके बाद लीग ऑव नेशन्स की कौन्सिल और एसेम्बली ने अमेरिका के प्रस्तावो को मान लिया। पर केवल मानने से काम नहीं चलता था। अन्त मे सन् १९२३ मे श्रीयुत पोर्टर ने फिर लीग से प्रार्थना की कि एक सर्वराष्ट्रीय कान्फ्रेंस करके उन प्रस्तावों पर एकबार पूरी बहस हो कर कुछ तय हो जाय। लीग ने यह क़ुबूल किया और सन् १९२४ में जिनेवा मे फिर उन राष्ट्रों की एक महासमिति निमन्त्रित की गई। वही प्रस्ताव रक्खे गये। चीन, जापान, और अमेरिका का कहना था कि केवल डॉक्टरी उपयोग ही अफीम का जायज़ उपयोग है। अन्य कितने ही छोटे-छोटे राष्ट्रो ने इस पक्ष से अपनी सहानुभूति ज़ाहिर की। परन्तु सवाल था अफीम की पैदायश बन्द करने का। इसलिए ग्रेटब्रिटेन और भारत के प्रतिनिधियो ने इसका बड़े ज़ोरों से विरोध किया। इसके बदले उन्होंने अफीम की पैदायश को क्रमशः (gradually) कम करने का वही लम्बा

और हर तरह की गुञ्जाइश वाला चौड़ा रास्ता फिर बताया। हां, मॉर्फिया तथा हिराइन आदि पर कठोर नियन्त्रण रखना कबूल कर लिया। सुधारक राष्ट्रों का कथन था कि यदि हम संसार को व्यसन-मुक्त करना चाहते हैं तो उसकी जड़ ही में कुठाराघात करना चाहिए। अफीम पैदा होने पर आप उस पर चाहे कितना ही नियन्त्रण रखिए वह महंगे से महंगे बाजार में चोरी से, छिपकर चली ही जायगी। अफीम पैदा हुई कि उसे खानेवाले मिल ही जावेंगे। अतः बार-बार अनुरोध-आग्रह करने पर भी जब ग्रेटब्रिटेन ने उनकी सूचनाओं को स्वीकार नही किया तब अमेरिकन डेलीगेट उठ खड़े हुए और कान्फ्रेंस को छोड़कर चले गये। पर चीन ने दो-तीन महीने और शान्ति से काम लेते हुए प्रयत्न किया। पर जब वह भी विफल हुआ तो उसके प्रतिनिधि भी कान्फ्रेंस छोड़कर चले गये। पर ब्रिटेन अपनी सीमा को छोड़कर वह टस से मस नहीं हुआ।

अपने ३० मई सन् १९२८ के अंक मे 'हिन्दुस्तान टाइम्स' नीचे लिखे समाचार प्रकाशित करता है—

"डेली हेरल्ड का विशेष संवाददाता लिखता है कि अब की बार जेनेवा में अंग्रेजो की प्रतिष्ठा को बड़ी भारी ठेस पहुँची—अंग्रेज प्रतिनिनिधियो को मुसोलिनी के प्रतिनिधि की खरी-खरी और पते की बातें सुननी पड़ीं और राष्ट्रीय सन्मान और शिष्टता का नया पाठ पढ़ने पर उन्हे मजबूर होना पड़ा।"

प्रत्येक राज्य में नशीली चीजों के व्यापार और उत्पादन की रोक के लिए अंतर-राष्ट्रीय ढंग से कई वर्षों से प्रयत्न हो रहा है। लीग की अफीम कमिटी कई दिनों से देख रही है कि अंग्रेज-

सरकार अपने अधीनस्थ प्रदेशों के व्यापारी हितों की रक्षा का प्रयत्न करते हुए इस अंतर-राष्ट्रीय उपयोगी समझौते का भंग करने का कुत्सित प्रयत्न कर रही है।

इटली के प्रतिनिधि सिगनर कावाशन ने इस बार मादक पदार्थों के व्यापार-सम्बन्धी कुछ आश्चर्य-जनक उद्घाटन किया है। वह इस बात को खास कर इसलिए प्रकट कर सके कि उनका देश इन चीजों के व्यापार में विशेष उलझा हुआ नहीं है।

सिगनर कावाशन का कथन है कि १९२१ में मॉर्फाइन की उत्पत्ति ३९ टन थी। पन्तु १९२६ तक वह बढ़कर ६० टन हो गई। और वृद्धि खासकर ऐसे समय मे हुई जब कि सब राष्ट्र मिलकर इन चीजों के प्रचार को रोकने के काम में विशेष रूप से प्रयत्नशील थे।

अंको से पता चलता है कि संसार की औषधीय आवश्यकता के लिए साल भर में १५ टन मॉर्फाइन काफी है। इससे यह स्पष्ट है कि शेष ४५ टन मॉर्फाइन का दुरुपयोग हुआ है।

सिगनर कवाज़ोनी (दूसरे प्रतिनिनिधि) ने ब्रिटिश-सरकार पर मक्कारी का इलजाम लगाया और कहा कि वह नशीली चीजों के निर्यात के असली अंको को छिपाये रखती है। सिर्फ इंग्लैंड के निकास और अमेरिका के आवक के अंकों मे २० टन का फर्क है। इससे यह स्पष्ट है कि इन चीजों का गुप्त व्यापार बहुत काफी पैमाने पर हो रहा है।

पर अंग्रेज प्रतिनिधियो की सूरत उस समय तो और भी देखने लायक हो गई थी जब उन्हीं में से एक विशेषज्ञ मि० एल० ए० लायल नामक अंग्रेज ने, जो कि वर्षों तक चीन के

मुहकमा सायर में काम कर चुके हैं, और जो चीनियों की तारीफ करते हैं, चीन के प्रति गोरी ज़ातियों के अन्याय की खुले शब्दों मे निन्दा की। मि० लायल ने अपना यह वक्तव्य कमेटी को स्वेच्छापूर्वक दिया था। अंग्रेजों के कानों ने अपने सम्बन्ध मे इतनी अवमानना-जनक बातें शायद ही कभी सुनी हो।

मि० लायल ने कहा कि "यद्यपि चीन में नशीली चीज़ों के व्यापार की रोक के सम्बन्ध मे क़ानून हैं तथापि युरोपियन और जापानी व्यापारी चीन के गृह-युद्धों से अनुचित लाभ उठा रहे हैं। एक तरफ़ चीन इस लज्जा-जनक व्यापार के फन्दे से अपने आपको छुड़ाना चाहता है तब दूसरी ओर युरोपियन और जापानी व्यापारी उसे असफल करने में लगे हुए है।"

इंग्लैंड ने यह प्रस्ताव किया कि अफीम नियन्त्रक-संघ ("Opium Control Board") लीग के अधीन न रहे। और उसमें केवल उन्हीं सरकारों के प्रतिनिधि हो जिनका इस विषय से स्वार्थ सम्बन्ध (Interests) है। पर ख़ास कर इटली के प्रयत्नों से उनका यह प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ। अन्त में लीग की अफीम कमेटी में सिगनर कॅवाज़ोनी का यह प्रस्ताव छः मत से स्वीकृत हो गया कि अफीम का नियन्त्रण लीग के "समाज-शिष्ट-मंडल" (Social Commission) के अधीन रहे। विपक्ष में ४ मत थे। और ये चार राष्ट्र थे ब्रिटेन, भारत (यहाँ भारत से मतलब है भारत-सरकार) हॉलैण्ड और जापान जिनका अफीम के व्यापार में बहुत स्वार्थ है।

तम्बाकू

१. इतिहास

२. गुण-धर्म

३. द्रव्यनाश

[१]

इतिहास

संसार के इतिहास में वह दिन खून के अक्षरो से लिखा जायगा, जब मानव-जाति ने इस विषैले पौदे का उपयोग बतौर शौक़ करना आरम्भ किया। कहते है तमाखू अज्ञात काल से अपने भयंकर विष से मानव-जाति का नाश करती आ रही थी। परन्तु सन् १४९२ तक उसका उपयोग अमेरिका के आदिम निवासियों तक ही सीमित रहा। सन् १४९२ में जब कोलम्बस भारत की खोज मे निकला और रास्ता भूल कर अमेरिका को जा निकला, तब इसके साथियो ने वेस्टइण्डीज के निवासियों को एक पौदे का धूआँ पीते देखा। यह बात इनके लिए बिलकुल नवीन थी। स्वभावतः वे चकित हो गये! उस स्थान का नाम क्यूबा था परन्तु इसमे थोड़ा-सा मतभेद है। कुछ इतिहासकारो का कथन है कि उस स्थान का नाम गुआनाहनी (आधुनिक सैन सल्वाडोर) था। सम्भव है, दोनो सच हो; क्योंकि बाद मे पाया गया कि तमाखू का व्यवहार तो सारे उत्तर अमेरिका में फैला हुआ था। लॉवेल अपने बनस्पतियो के इतिहास मे लिखता है (१५७६) कि सैन सैलवाडोर के लोग ताड़ के पत्तो की बीड़ियां बनाकर उसमें तमाखू भर के पीते थे। वे लोग इसे कोहीबा कहते थे। और उस बीड़ी को टोबाको। करीब-करीब यही बात रोमानेपानो नामक एक इसाई ने सैन डोमिगा के निवासियो के विषय में भी लिखी है। यह व्यक्ति

सन् १४९४–९६ में कोलम्बस के साथ उसकी दूसरी अमेरिका-यात्रा मे गया था। सैन डोमिंगो का गवर्नर गोंजालो फर्नान्डिज अपनी Historia General de Las Indias नामक इतिहास मे १५३५ में इस विषय में और भी मनोरंजक बाते लिखता है। वह लिखता है कि इस बीड़ी का आकार अंग्रेजी Y वाय का-सा होता था। लोग इस चिलम के ऊपर के दो सिरो को तो नाक मे रखते और निचले सिरे को आग पर जलती हुई तमाखू के धुएँ में रखते और नाक से खूब धुआँ पीते। गोंजालो यह भी लिखता है कि अमेरिका के आदिम निवासी तमाखू की बड़ी कद्र करते थे। क्योंकि उन्हे विश्वास था कि इसमें अनेक अद्भुत गुण भरे हैं। अब तक किसी ने उत्तर अमेरिका में किसी भी आदिम निवासी को तमाखू खाते हुए नहीं देखा था। यह दृश्य पहले-पहल सन् १५०२ में दक्षिण अमेरिका मे स्पेनिश लोगों को दिखाई दिया। इसके बाद तो यूरोप के साहसी यात्री ज्यो-ज्यों इस नवीन भूखण्ड के अंतःप्रदेश मे प्रवेश करते गये, त्यो-त्यों उन्होंने देखा कि सारे अमेरिका में तमाखू का प्रचार है। सब जगह उसका उपयोग एक-सा नहीं होता था। दक्षिण अमेरिका में खाई अधिक जाती थी, तो उत्तर अमेरिका में लोग इसे पीना अधिक पसन्द करते थे। और वास्तव में अमेरिका के निवासियों के लिए यह नई चीज न थी। पता नहीं कितने पहले से वे इस भयंकर विष के पंजे में फँसे हुए थे। मेक्सिको की आजेटो की क़ब्रों में कई प्रकार की पुरानी चिलमें मिली हैं। इन पर विचित्र पशुओ की आकृतियाँ बनी हुई है जो उत्तर अमेरिका की नहीं है। प्रत्येक प्रान्त मे तमाखू के नाम भी भिन्न-भिन्न हैं।

यूरोप में इस पौदे की खेती पहले-पहल स्पेन के दूसरे फिलिप द्वारा १५६० में कराई गई। उसने फ्रॉन्सिसको फरनानडेज़ नामक एक वनस्पतिशास्त्रवेत्ता को अमेरिका की वनस्पतियाँ और खनिज सम्पत्ति की खोज करने के लिए भेजा। फरनानडेज़ वहां से अन्त चीजों के साथ-साथ तमाखू का पौदा और उसके बीज भी लाया। अब स्पेन मे बाक़ायदा तमाखू की खेती होने लगी। परन्तु वहाँ इसका विशेष स्वागत नही हुआ। फिर भी कुछ लोग इसे पीने और सूँघने तो लग ही गये। यूरोप के अन्य देशों में इसका प्रचार पुर्तगाल से हुआ। जीन निकोट नामक फ्रेंच सज्जन पुर्तगाल के दरबार में फ्रान्स के राजदूत की हैसियत से रहता था। उसने एक डच से तमाखू के कुछ बीज लिये और अपने लिस्बन वाले भवन के बग़ीचे मे उन्हे बोया। कहा जाता है कि उसने इस पौदे की पत्तियो से कई लोगो के रोग भगा दिये थे। इससे उत्साहित हो जीन निकोट ने इस अद्भुत वनस्पति के बीज फ्रान्स के राजा के पास भेजे। तबतक यह वस्तु इटली भी पहुँच गई। वहाँ इसका काफ़ी स्वागत हुआ। इटली से तमाखू यूरोप के अन्य देशो में बड़ी तेजी से फैल गई। लोग इसके गुणों पर मुग्ध होकर इसे अमृतवल्ली कहने लगे।

इंग्लैंड में इसका प्रवेश सन् १५८६ में हुआ, जब कैप्टन राल्फ लेन सर फ्रान्सिस ड्रेक के साथ वर्जिनिया से लौटा। परन्तु वहाँ तमाखू पीने का प्रचार करने का श्रेय तो सर वाल्टर रैले को है। रैले साहब ने दो साल पहले वर्जिनिया में लेन की अध्यक्षता में एक उपनिवेश स्थापन कर तमाखू की खेती आरम्भ कर दी थी। कहा जाता है कि इंग्लैड में सबसे पहले तमाखू पीनेवाले

यही रैले साहब थे। इनके नौकर की कथा बड़ी मशहूर है। एक दिन रैले साहब, अपने बाग़ में बैठे-बैठे तमाखू पी रहे थे। इतने में उनका आदमी चाय ले कर आया। उसने देखा कि साहब के मुँह से धुंए के बादल के बादल निकल रहे हैं। वह घबड़ाया। समझा, मालिक के पेट में आग लगी है। वह दौड़ा, पानी की एक बालटी उठाई और अपने मालिक के सिर पर उँडेल दी।

शनैः-शनैः तमाखू का प्रचार इंग्लैंड मे काफी हो गया। वर्जिनिया से जहाजो में लदकर तमाखू आने लगा। पहले-पहल इस पर फी पौंड दो पेन्स आयात-कर लिया जाता था। परन्तु शीघ्र ही लोगों पर तमाखू के असली गुण प्रकट हो गये। राजा जेम्स भी सचेत हो गया। उसने १६०३ में एक पौंड पर १० शिलिंग ६ पेन्स कर बैठा दिया। उसने तमाखू के गुण-धर्मों की जांच की और Counter Blast to Tobacco नामक एक पुस्तक की रचना करके लोगों को सचेत भी कर दिया।

यूरोप में वर्षों तक लोग तमाखू को सचमुच अमृतवल्ली समझते रहे। प्रत्येक रोग पर उसका उपचार किया जाने लगा। पर शीघ्र ही लोगों का भ्रम दूर हो गया और उसके असली गुण उनपर प्रकट हो गये। तब तो राजा, बादशाह और धर्माधिकारी आदि सभी इसका विरोध करने लगे।

भारत मे इसका प्रचार करने का श्रेय पुर्तगीज लोगों का है। ई० स० १६०५ के लगभग तमाखू उनके साथ-साथ यहां आई। उस समय अकबर राज्य कर रहा था। कुछ लोगों का कथन है कि एशिया में तमाखू का प्रचार इसके कहीं पहले से चला आया

है। परन्तु यह ठीक नहीं प्रतीत होता। भारत और एशिया के समस्त प्राचीन साहित्य मे कही इस पौदे का उल्लेख नहीं मिलता। जहां कहीं है भी वहां उसका आधुनिक विदेशी नाम ही पाया जाता है। इससे प्रतीत होता है कि वह भाग पीछे से जोड़ दिया गया है। उस समय एशिया में पुर्तगीज़ सत्ता का मध्यान्ह-काल था। और अरब, ईरान, भारत, चीन आदि देशो में तमाखू का प्रचार इन्हींके द्वारा हुआ, यह तत्कालीन ग्रन्थ-साहित्य देखने पर सिद्ध हो जाता है। "बहार-इ-अजां" का निम्नलिखित उद्धरण जो ब्लोकमन ने Ind Antiq के १६४ पृष्ठ पर छापा है देखने लायक़ है। वह लिखता है—"मआसिरि रायिमि से ज्ञात होता है कि तमाखू यूरोप से दक्खिन मे आई और दक्खिन से अकबर शाह के राज में होते हुए उत्तर भारत को गई। तब से वहां उसका प्रचार बराबर बढ़ रहा है।" तमाखू के प्रचार के आरंभकाल के विषय में यले और बर्नेल अपनी ग्लॉसरी ऑफ एंग्लो-इंडिन वर्डस्' नामक ग्रन्थ में नीचे लिखा उदाहरण देते हैं।

"बीजापुर मे मुझे कुछ तमाखू दिखाई दी। भारत में पहले और कहीं इस अनोखी चीज के दर्शन नही हुए थे, इसलिए मै कुछ तमाखू अपने साथ ले आया। उसके लिए एक जड़ाऊ काम-दार चिलम भी बनआई।" यही लेखक आगे चलकर लिखता है "शाह अकबर मेरी भेंटों से प्रसन्न हुए और पूछते रहे कि इतने थोड़े समय में इतनी सारी अजीब-अजीब चीजें मैं कैसे इकट्ठी कर सका। जब उनकी नजर तमाखू की तश्तरी और उस सुन्दर चिलम पर पड़ी, तब वे बड़े चकित हुए और उन्होंने पूछा कि "अरे, यह क्या है"? उन्होंने तमाख़ू को भी ग़ौर से देखा और पूछा कि यह

चीज कहां से लाये हो। नवाब खाँ आज़म ने जवाब दिया, जहांपनाह, यह तमाखू है। मक्का और मदीना में लोग इसे पीते है। डॉक्टर आपके लिए इसे बतौर औषधि के लाया है। बादशाह ने उसे फिर देखा और अपने लिए एक चिलम भर के देने के लिए कहा। मैंने ऐसा ही किया और शाह अकबर चिलम पीने लगे। जब उनके हाकिम आये तो उन्होने शाह को तमाखू पीने से मना किया। मैं तो काफी तमाखू और चिलमें लाया था। इसलिए मैंने उसे कई अमीर-उमरावो के पास भेज दिया। कितने ही सरदारो ने अपने लिए तमाखू और चिलम भेजने को मुझसे कहा। धीरे-धीरे सभी तमाखू पीने लग गये। और अब तो व्यापारी लोग भी तमाखू मंगा-मंगाकर वेचने लगे। इस तरह सारी जनता में तमाखू फैल गई। पर शाह ने फिर कभी चिलम को हाथ में न लिया।" (आसाद बेग इन ईलियट ६, १६५-७)

परन्तु क्या भारत में और क्या यूरोप में तमाखू जनता की आँखो मे अधिक दिन तक धूल न झोंक सकी। इसके असली गुण सब लोगो पर प्रकट हो गये। राजाओ, बादशाहों और धर्माधिकारियों ने इसके प्रचार का यथाशक्ति विरोध भी किया। तुर्किस्तान में तमाखू पीने वाले के होट काट लिये जाते थे और सूंघने वालों की नाक कभी-कभी तमाखू के भक्तों को जान से मार भी डाला जाता था। एलिजाबेथ, पहला चार्ल्स और पहले जेम्स ने भी इसके प्रचार को रोकने की कोशिश की। जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं पहले जेम्स ने एक पुस्तक द्वारा इसे बहुत घृणित और मस्तिष्क तथा फेफड़े के लिए अत्यन्त भयंकर बताया। रूस में पहली बार तमाखू पीनेवाले का कठोर शरीर-दण्ड दिया

जाता और दूसरी बार प्राण-दण्ड। जहांगीर ने इसे युवकों के लिए बहुत हानिकर बता कर तमाखू के भक्तों के लिए तशीर× नामक दण्ड तजवीज किया था। ईरान के शाह अब्बास ने भी इसके प्रचार को रोकने के लिए ऐसी कठोर राजाज्ञा जारी की थी कि तमाखू के अनन्य भक्तो को अपने बचाव के लिए जंगलो मे भागना पड़ता था। स्विट्ज़रलैण्ड मे तमाखू पीना एक अपराध क़रार दिया गया था।

ग्यारहवें इन्नोसेण्ट पोप ने तमाखू पीनेवालों के बहिष्कार की आज्ञा जारी की थी। इस्लाम मे आलङ्कारिक ढंग से तमाखू की उत्पत्ति निषिद्ध बताकर उसको वर्जित बताया है। हिन्दूधर्म, पद्मपुराण और ब्रह्मपुराण मे इसकी साफ-साफ निन्दा है। सच तो यह है कि सभी महान धर्मों के आचार्यों ने इसकी निन्दा ही की है और इसके व्यवहार को निषिद्ध बताया है। आज भी कितने ही राज्यों में बालको के लिए तमाखू पीना क़ानूनन मना है।

तमाखुः पितलस्तीक्ष्णा श्रोष्णा वस्ति निशोधनः,
मदकृत् भ्रामकस्तिक्तो दृष्टिमांद्यकरः परः।
वमनो रेचनश्चैव नेत्रघ्नो शुक्रनाशकः ॥

× आदमी का काला मुँह करके उसे गधे की पूँछ की तरफ मुँह करके बैठाना और शहर में घुमाना।

[२]

तमाखू के गुण धर्म

तमाखू के इस सार्वभौम निषेध का और उस निषेध के होते हुए भी उसकी सार्वभौम विजय का रहस्य क्या है? उसमे ऐसी कौन-सी बुराई है जिसके कारण लोग इस तरह उसकी निन्दा करते हैं? साथ ही उसमे ऐसी कौन-सी जबर्दस्त शक्ति है जिसकी सहायता से वह लोगो को अब भी तेज़ी से अपने वश में करती जाती है?

संक्षेप में इन दोनो प्रश्नो का उत्तर यह है कि तमाखू एक महाभयंकर विष है और उसकी सम्मोहन शक्ति उसका बल है।

संसार के तमाम बड़े-बड़े डाक्टर, वैद्य, रसायन-शास्त्री और वैज्ञानिक अब इस बात पर एकमत हो गये हैं कि तमाखू संसार के अधिक से अधिक मारक विषों मे से एक है। प्रूसिक एसिड को छोड़कर प्राणियों का प्राण इतनी जल्दी हरण करने की शक्ति किसी अन्य विष में नही है। तमाखू पौदों की एक जाति का (जिसे अंग्रेज़ी में Valaceoe कहते हैं) महा भयंकर विषैला पौदा है। संसार में इसकी कोई ५० जातियाँ हैं और सभी न्यूनाधिक परिमाण में विषैली होती हैं।

वह भयंकर विष जिसके कारण तमाखू को यह ज़बरदस्त सम्मोहन शक्ति प्राप्त है (Nicotine C. १० H. १४ N. २) निकोटाइन कहलाता है। निकोटाइन एक घन द्रव है। तमाखू की सूखी पत्तियो

का गाढ़ा अर्क निकालने से यह प्राप्त हो सकता है। तमाखु में यह दो से लगाकर आठ प्रतिशत तक की मात्रा में पाया जाता है। ज्यों-ज्यों तमाखू पुरानी होती जाती है उस में इस विष की मात्रा बढ़ती जाती है। वर्जिनिया की उत्कृष्ट समझी जानेवाली तमाखू में वह प्रतिशत छः या सात के परिमाण में होता है। डॉक्टर केलॉग का कथन है कि "एक पौंड (आधा सेर) तमाखू में ३८० ग्रेन निकोटाइन विष होता है। यह इतना भयंकर होता है कि एक ग्रेन का दसवाँ हिस्सा कुत्ते को ३ मिनट में मार सकता है। एक शख्स इस विष से ३० सेकन्ड के अन्दर मर गया था। आधा सेर तमाखू में इतना विष होता है जो ३०० आदमियों का प्राण ले सकता है। एक मामूली सिगरेट में जितनी तमाखू होती है उसके विष से दो आदमियों की जान ली जा सकती है भयंकर से भयंकर विषधर साँप तमाखू के विष से इस तरह मर गये मानो उनपर बिजली गिर पड़ी हो।"

तमाखू का विष इतना भयंकर और तेज होता है कि तमाखू की पत्तियों के बाहरी प्रयोग से भी मनुष्य के शरीर पर गंभीर परिणाम देखे गये हैं। आप एक चिलम तमाखू को पेट पर बाँध कर देखिए कि क्या-क्या परिणाम होता है। थोड़ी ही देर में आपको क्षय होने जैसी स्थिति हो जायगी। युद्ध से डरनेवाले सिपाही कई बार तमाखू को पेट पर या बगल में बाँधकर बीमारी को बुलाते हैं और लड़ाई से बच जाने की कोशिश करते पकड़े गये हैं।

डॉ० फूट अपने होम एन्सायक्लोपीडिया मे लिखते हैं कि निकोटाइन की एक बूंद से एक मामूली कुत्ता और दो बूंदों से

मज़बूत से मज़बूत कुत्ता मर जाता है। छोटे-छोटे पक्षी तो उसकी स्थूब की हवा से ही मरकर गिर पड़ते हैं।

"तमाखू की पत्तियों को पानी में उबालने से एक (Empy- reumatic नामक) तेल निकलता है। इसका रंग गहरा मटिया होता है। दुर्गन्ध वही होती है जो हुक्के या बहुत पुरानी चिलम में होती है। इसकी एक बूँद अगर बिल्ली के पेट में चली जाय तो वह ५ मिनिट में मर जायगी और दो बूंदों से वही हाल कुत्ते का होगा।

डॉ० मूसी अपने प्रयोगों का हाल यों लिखते हैं—"तमाखू के तेल की दो बूंदों से बिल्लियों को मरते देखा है। एक जवान बिल्ली की जबान पर मैंने २ बूँदे डाली और तीन मिनट में वह मर गई। एक बूँद से एक नन्ही-सी बिल्ली पाँच मिनट में मर गई। तीस ग्रेन तमाखू की चाय एक आदमी के दर्द को कम करने के लिए दी गई और वह फ़ौरन मर गया।"

तमाखू के बाहरी प्रयोग से जब ऐसे भयंकर परिणाम होते हैं तो उसके धुंए से मनुष्य के हृदय और फेफड़ों की क्या हालत होती होगी ?

निकोटाइन के अलावा तमाखू के धुंए में कई प्रकार के अन्य भयंकर विष भी होते हैं। ×

डॉ० केलॉग अपने (Hosue Book of Modern Medicine) में लिखते हैं—"किसी भयंकर से भयंकर विष को अपने शरीर

× उनमें से कुछेक के नाम ये है—Pyridine Picoline, Sulphoreted Hydrogen. Carbon dioxide, Carbonous Oxide और Prussic Acid ये सभी महाभयंकर विष होते हैं।

मे ग्रहण करने का सबसे सरल उपाय है उसका धूँआ लेना। इसका कारण स्पष्ट है। देखिए न। हमारे फेफड़ो के आस-पास एक कोमल आवरण है। वह इतना पतला है और इतनी तहों में उनके आस-पास लपेटा हुआ है कि यदि उसे फैलाया जाय तो १४०० वर्ग फुट ज़मीन उससे ढाँकी जा सकती है। इसका प्रत्येक इंच धुँएदार पदार्थों को जज्ब करने की क्षमता रखता है। यह आवरण इतना महीन और कोमल होता है कि उसके अंदर से वायु मजे में छनती हुई फेंफड़े तक जा सकती है। शरीर का खून इस कोमल आवरण के नीचे से होकर तीन मिनिट में एक बार जाता है। अब कोई यह न समझे कि तमाखू का धुँआ मुँह में से ही लौट करके आ जाता है। वह बराबर ठेठ फेंफड़े तक पहुँचता है और अपने भयंकर विष से खून के सजीव परमाणुओं को मूर्च्छित कर देता है।

तमाखू पीने वाले का खून हर बार इस विषाक्त धुँए में स्नान करके शरीर की सैर करने के लिए निकल जाता है। सुंघनी सूंघने अथवा तमाखू खाने से भी यही असर होता है। सूंघने से नाक के द्वारा उसकी विषैली बू और परमाणु अन्दर पहुँचते हैं और खाने से लार के साथ वह पेट मे पहुँचती है।"

डॉ० रिचर्डसन तमाखू पीने वाले की हालत का यों वर्णन करते हैं :—

"उसका मस्तिष्क सूखा हो जाता है, उसमें खून नहीं रहने पाता। पेट के कोमल त्वचात्मक भीतरी आवरण पर गोल-गोल दाग़ पड़ जाते हैं। खून बहुत पतला हो जाता है। फेफड़े कमज़ोर हो जाते हैं। हृदय में खून को साफ करने की शक्ति नही रह

जाती। आवरण के कोमल परमाणु तमाखू के विषैले धुएँ से सो जाते हैं। इसलिए उसमें फैलने-सिकुड़ने की शक्ति नहीं रहती। ऐसी हालत में खून का प्रवाह जब आता है तो हृदय फैलने के बजाय काँपता है। मानो एक सदाचारी मनुष्य से कोई बुरा काम हो गया हो और वह काँपता हो। इसे हृदय की धड़कन नहीं कहा जा सकता। यह तो एक छटपटाते हुए प्राणी का कम्पन है। यंत्र तो ज्यों का त्यों है परन्तु एक शैतान उसपर अपना अधिकार किये बैठा है।"

अपनी आत्मकथा में महात्माजी लिखते हैं:—

"मैं सदा इस टेव को जंगली, हानिकारक और गन्दी मानता आया हूँ। अबतक मैं यह न समझ पाया कि सिगरेट पीने का इतना जबर्दस्त शौक़ दुनियाँ को क्यों है? रेल के जिस डिब्बे में बहुतेरी बीड़ियाँ फूँकी जाती हों, वहाँ बैठना मेरे लिए मुश्किल हो पड़ता है और उसके धुँए से दम घुटने लगता है।"

'दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह' × नामक पुस्तक में महात्माजी एक पुराने दमे के बीमार का ज़िक्र करते हुए लिखते हैं कि जिस समय वह बूढ़ा, जिसका नाम लुटावन था, मेरे पास आया, तब उसकी उम्र ७० वर्ष से ऊपर ही होगी। उसे बड़ी पुरानी दमे और खाँसी की व्याधि थी। अनेक वैद्यो के काथ-पुड़ियों और कई डाक्टरों की बोतलो को वह हजम कर चुका था। मैंने उससे कहा कि यदि तुम मेरी तमाम शर्त्तों को स्वीकार करो और यहीं पर रहो तो मैं अपने उपचारों का प्रयोग तुम पर कर सकूंगा।

× यह पुस्तक सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर से प्रकाशित हुई है।

उस समय मुझे अपने इन उपचारों पर असीम विश्वास था। उसने मेरी शर्त्तों को क़बूल किया। लुटावन को तमाखू का बहुत व्यसन था। मेरी शर्त्तों में तमाखू छोड़ने की भी एक शर्त्त थी। मेरे बताये उपचार तथा धूप में दिये क्यूनी बाथ से उसे लाभ हुआ पर रात को उसे खाँसी बहुत सताती। मुझे तमाखू पर शक हुआ। मैंने उससे पूछा पर उसने कहा कि मै नहीं पीता। इसी प्रकार कितने ही दिन और बीत गये परन्तु लुटावन की खाँसी मे फर्क न पड़ा। इसलिए मैंने लुटावन पर छिपकर नजर रखने का निश्चय किया। हम सब लोग जमीन पर ही सोते थे, इसलिए सर्पादि के भय के कारण मि० कैलनबेक ने मुझे बिजली की एक बत्ती दे रक्खी थी। मैं इस बत्ती को लिए हुए दरवाजे से बाहर बरामदे मे बिस्तर लगाये हुए था। और दरवाजे के नजदीक ही लुटावन लेटा हुआ था। क़रीब आधी रात के लुटावन को खाँसी आई। दियासलाई सुलगाकर उसने बीड़ी पीना शुरू किया, मै चुपचाप उसके बिस्तर पर जाकर खड़ा हो गया और बिजली की बत्ती का बटन दबाया। लुटावन घबड़ाया। वह समझ गया। बीड़ी बुझा-कर वह उठ खड़ा हुआ और मेरे पैर पकड़कर बोला:—

"मैंने बड़ा गुनाह किया। अब मै कभी तमाखू नहीं पीऊंगा। आपको मैंने धोखा दिया, आप मुझे क्षमा करे।" यह कहकर वह गिड़गिड़ाने लगा। मैंने उसे आश्वासन देते हुए समझाया कि बीड़ी छोड़ने में उसीका हित है। मेरे बताये अनुमान के अनुसार तुम्हारी खाँसी मिट जानी चाहिए थी, परन्तु वह न मिटी इसी-लिए मुझे शक हुआ। लुटावन की बीड़ी छूटी और उसके दो-

तीन दिन बाद ही उसकी खाँसी और दमा कम हो गया। इसके बाद एक मास में लुटावन पूर्ण नीरोग हो गया।"

जब तमाखू का विष इतना मारक है तो स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि आदमी मर क्यों नहीं जाता ? वह इतने भीषण विषो का प्रयोग करने पर भी जी कैसे सकता है ? इसका एक मात्र उत्तर यही है मानव-शरीर एक असंगठित राष्ट्र के समान दुर्बल नही है। वह सहसा अपने क़िले शत्रु के हाथों मे सौंपने के लिए तैयार नही हो सकता। मनुष्य को ईश्वर-दत्त प्राण-शक्ति और विष की मारक-शक्ति में भीषण युद्ध छिड़ जाता है। जबतक यह विष मनुष्य के मस्तिष्क पर विजय प्राप्त नहीं कर लेता, शरीर के रक्षक सिपाही बराबर युद्ध करते रहते हैं। मस्तिष्क के आक्रान्त होने पर भी युद्ध तो जारी रहता है परन्तु तब प्राणशक्ति के विजय की इतनी सम्भावना नही रह जाती। आखिर परमात्मा का बनाया हुआ वह राष्ट्र इतना दीन और निर्बल नहीं है जो यों ही आसानी से शत्रु के हाथो में चला जाय। हाँ, एक बात जरूरी है। एक निर्व्यसनी मनुष्य और व्यसनाधीन पामर के शरोर मे वही अन्तर होगा जो एक शान्तिशील समृद्ध राष्ट्र मे और ऐसे राष्ट्र मे होता है जहाँ शत्रु बार-बार आक्रमण करते रहते हैं, जिसका सारा बल, सारी सम्पत्ति, सारी बुद्धि अपनी रक्षा करने ही मे बरबाद हो जाती है। एक व्यसनी और निर्व्यसनी पुरुष मे वही अन्तर होगा जो भारत और अमेरिका के बीच है, जो चीन और जापान के बीच है, जो मिश्र और तुर्किस्तान के बीच है; जो अफ़ग़ानिस्तान और निजाम के राज्य के बीच है। व्यसनों से अपने आपको

छुड़ाते ही दुर्बल से दुर्बल मनुष्य भी उसी तरह बात की बात में बलवान और समृद्ध हो सकता है जैसे तुर्किस्तान।

हमने देखा कि तमाखू के विषैले परमाणु फेंफड़े और हृदय तक पहुँचकर मनुष्य के खून को भी अशुद्ध, रोगी और कमजोर बना देते हैं। और आखिर मानव-शरीर में खून ही तो सब-कुछ है। खून प्राणियों की जीवन-शक्ति का सजीव प्रवाह है। यही शरीर के कोने-कोने तक पहुँचकर हमारे अंग-प्रत्यंग को नवजीवन अर्पित करता रहता है, उनकी थकावट को दूर करता है और जीर्ण भागों की मरम्मत करता है। पर निर्बल और बीमार खून प्राणियो के अंगों को क्या जीवन देगा ? शरीर के सैनिक परमाणु भी असंगठित और कमजोर हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में जरा-सा मौक़ा मिलते ही हर कोई रोग उस शरीर पर अपना अधिकार कर लेता है।

इसलिए इस बात का यहाँ पर विस्तृत वर्णन देना व्यर्थ है कि तमाखू से कौन-कौन से रोग मनुष्य को होते हैं। मादक चीजों के सेवन करनेवाले सभी लोग रोगों के बहुत जल्दी शिकार होते हैं, बहुत दिन तक बीमार रहते हैं और अधिक संख्या में मरते हैं।

तमाखू और क्षय

क्षय फेफड़ों का रोग है, अतः इसका सब से गहरा सम्बन्ध वायु की स्वच्छता से है। दूषित वायु को अन्दर लेने से क्षय होता है। स्वयं हम अपने श्वासोच्छ्वास द्वारा जो वायु छोड़ते हैं वही इतनी विषैली होती है कि उसका पुनः ग्रहण करना बड़ा ख़तरनाक है। इसीलिए मुँह ढककर सोना आरोग्यशास्त्र के

अनुसार मना है। अगर ऐसा है तो निकोटाइन जैसे भयंकर विष के परमाणुओ को धारण करनेवाले धुँए को प्रतिदिन घण्टों पीते रहना तो स्पष्ट ही महाभयंकर है। उससे अगर फेफड़ा सड़ जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

तमाखू और हृद्रोग

क्षय और हृद्रोग तमाखू की खास देन हैं। क्योंकि इसका विष पहले इन्हीं दो अंगों पर आक्रमण करता है। हम ऊपर पढ़ चुके हैं कि किस प्रकार हृदय की आवरणात्मक त्वचा सुन्न हो जाती है और हृदय की गति को विषम बना देती है। यही हृदय का रोग है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तमाखू-सेवक की नाड़ी की गति को देखने से ही मिल सकता है।

उदर-रोग

खून के अशुद्ध होते ही उसकी गरमी और इसीलिए आँतो में, आवश्यक सत्त्वों को आकर्षण करने की जो शक्ति होती है वह भी स्वभावतः घट जाती है। इसीका दूसरा नाम है अपचन। पेट में अपक अन्न के पड़े रहने से और भी अनेक प्रकार के उदर-रोग होते हैं।

नेत्र-रोग

तमाखू यों तो अपने भक्तों के सारे शरीर में एक प्रकार की शून्यता उत्पन्न कर देती है परन्तु नेत्रों पर उसका सब से अधिक असर होता है। तमाखू के भक्तो की दृष्टि बड़ी कमजोर हो जाती है। इसका प्रमाण आँखो के तमाम वैद्य-डाक्टर दे सकते हैं। आयर्लैंड के लोग तमाखू के कट्टर भक्त हैं! उनमें यह रोग बहुता-

यत से पाया जाता है। जर्मनी और बेल्जियम में भी इसकी अधिकता है। तमाखू के भक्तों में रंगो के लिए अन्धापन आ जाता है। वे भिन्न-भिन्न रंगों को ठीक तरह नहीं पहचान सकते।

तमाखू और चरित्र-हीनता

इसमें तो कोई सन्देह ही नही कि तमाखू अनेक भारी-भारी पापो की जननी है। इसका प्रवेश होते ही पापों की सेना आती है। तमाखू के सेवन से मनुष्य का चरित्र शिथिल हो जाता है। शराबखोरी और व्यभिचार की तरफ़ वह बहुत जल्दी झुक जाता है। सत्यासत्य नीति-अनीति का विवेक न रहना तो तमाखू-भक्त के लिए एक बिलकुल मामूली बात है।

तमाखू केवल उसके भक्त की ही जान नहीं लेती, वह उसकी सन्तति पर भी हाथ साफ करती है। पिता के तमाखू-रोग पुत्र को विरासत में मिलते है।

नपुंसकता

डॉ० फूट लिखते हैं—"मैंने देखा है कि तमाखू नपुंसकता के कारणों में से एक मुख्य कारण है। और जब मेरे पास ऐसे लोग इलाज के लिए आते हैं तो मै उनसे कहता हूँ तुम्हे दो में से एक बात पसन्द करनी होगी। विषय-सुख या तमाखू। तमाखू से प्यार हो तो विषय-सुख से निराश हो जाओ। वास्तव में तमाखू से शरीर की सारी नसे ढीली पड़ जाती हैं। पर कभी-कभी सारे शरीर पर इसका दुष्परिणाम देर से प्रकट होता है। सब से पहले उसका असर शरीर के सब से अधिक कमजोर अंग पर ही होता है। और चूँकि पुरुष अपनी जननेन्द्रिय का बहुत दुरुपयोग

करता है, तमाखू का विष इस दुर्बल और दलित अंग को सब से पहले धर दबाता है।

पागलपन

तमाखू का धुँआ गैस के रूप में सीधा मस्तिष्क को पहुँच जाता है और वहाँ के ज्ञान-केन्द्रो को सुन्न कर देता है। यह आदत बढ़ जानेपर मनुष्य बहुत जल्दी पागल भी हो जाता है। संसार के पागलों की जाँच करने पर तमाखू पीनेवाले निःसन्देह अधिक पाये जाते हैं।

ससार के तमाम गण्यमान्य डॉक्टरो और वैद्यों ने एवं धार्मिक नेताओ ने तमाखू की निन्दा की है। और समाज को बचाने की कोशिश की है। उनमें से कुछ मुख्य-मुख्य राये इस प्रकार हैं:—

तमालं भक्षितं येन सगच्छेन्नरकार्णवे ॥—ब्रह्मपुराण

धूम्रपानरतं विप्रं दानं कुर्वन्ति ये नराः।
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्रामशूकरः ॥—पद्मपुराण

डॉ० रश वारन आदि—तमाखू का जहर दाँतों को हानि पहुँचाता है।

डॉ० कैलन—हमने जितने अजीर्ण के रोगी देखे वे सब तमाखू का सेवन करनेवाले थे।

डॉ० हॉसेक—तमाखू मंदाग्नि का मुख्य कारण है।

डॉ० एगलेस्टर—"तमाखू से पाचन-यंत्रो की शुद्ध रक्त उत्पन्न करने की शक्ति कम होकर सब प्रकार के अजीर्ण-सम्बन्धी रोग हो जाते हैं।"

तमाखू-विरोधिनी-सभा न्यूयार्क—"तमाखू से प्यास बहुत लगती है।

तमाखू के सेवन से जिव्हा के रुचि-परमाणु अपनी संज्ञा-शक्ति खोकर मूर्च्छित हो जाते हैं। इसी प्रकार पाचन-यंत्र के परमाणुओं को मारकर तमाखू मनुष्य के अन्दर मन्दाग्नि की बीमारी उत्पन्न करती है।"

प्रोफेसर सीलीमेन—"तमाखू के दुर्व्यसन से अनेक हृष्ट-पुष्ट और बलवान नवयुवक क्षय के शिकार होकर मर जाते हैं।" (यह हमारे नित्य के अनुभव की बात है।) तमाखू के धुएँ से श्वास-नली और फेंफड़े सड़ जाते हैं। इसलिए वहाँ क्षय रोग के जन्तु फ़ौरन अपना अड्डा जमा लेते हैं।"

डॉ० रश—"तमाखू के सूँघने से श्वास की गति में रुकावट होकर स्वर-यंत्र बिगड़ जाता है।" उत्तम आवाज़ होना भी एक वरदान है। परन्तु मनुष्य इसी वरदान को ख़राब वस्तुओं के सेवन से खो देता है।

विलियम अलकाट—"तमाखू को सूँघने, खाने और पीने से आँखों को भारी नुक़सान पहुँचता है।"

डॉ० ऐलिन्सन्—"तमाखू का व्यसन मनुष्य को अन्धा, बहरा एवं जिह्वा और नासिका की शक्ति से हीन बना देता है।"

डॉ० एलिन्सन्—"तमाखू जिन अवयवों को अधिक हानि पहुँचाती हैं उनमें हृदय मुख्य है। तमाखू से उसमें असाधारण गति उत्पन्न हो जाती है और वह विकृत हो जाता है। पहली बार तमाखू पीने से ही हृदय की गति अनियमित और लगभग दुगुनी तेज हो जाती है। आगे चलकर उसकी गति में इतना अन्तर

पड़ जाता है कि पाँच-छः धड़कनो के बाद एक धड़कन नहीं होती। यदि कही ऐसी पाँच-छः धड़कनें न हों तो मनुष्य फौरन मर जावे।" लकड़ी के धुँए से जो दशा रसोई-घर की होती है वही निःसन्देह तमाखू के धुँए से हृदय की भी होती है।

तमाखू से आदमी का खून विषाक्त हो जाता है और उसकी निद्रा नष्ट हो जाती है।

डॉ० निकोलस—"तमाखू का असर जननेन्द्रिय पर भी बहुत बुरा होता है। इससे सन्तानोत्पत्ति में रुकावट आती है। जहाँ स्त्री और पुरुष दोनो को तमाखू का व्यसन होता है वहाँ प्रायः सन्तान का अभाव ही रहता है। व्यसन की अधिकता से स्त्रियाँ बन्ध्या और पुरुष नपुंसक बन जाते हैं।"

अमेरिका में तमाखू के कारखानो मे काम करनेवाली अधिकांश स्त्रियाँ बन्ध्या होती हैं।

डॉ० फुटका—"नपुंसकता का एक मुख्य कारण तमाखू का व्यसन भी है।"

डॉ० कावन—"मेरी पवित्र बहनो! रोगोत्पादक अत्यन्त गंदे और निन्द्य तमाखू और शराब के दुर्व्यसनों मे फँसे हुए पामरो से हमेशा दूर रहने की मैं तुमको सलाह देता हूँ क्योंकि वे बहुत ही विषयान्ध होते हैं। तमाखू और शराब का सम्बन्ध दिन-रात का-सा है। ये दोनों मनुष्य को दरिद्री, रोगी, शीघ्रकोपी—चिड़चिड़ा और अल्पायु बना देते हैं। इसलिए बहनो, मेरी अनुभवी वाणी को ध्यान देकर सुनो। आज ही से तुम निश्चय करलो कि तमाखू और शराब पीनेवालो से तुम कोई सरोकार न रक्खोगी। निर्व्यसनी पुरुष से ही तुम अपना विवाह करना। कुमारी रहना बेहतर है

परन्तु कभी व्यसनी पुरुष को अपना पति न बनाओ। क्योंकि व्यसनी पुरुष पिता और पति बनने के अयोग्य होता है।" ×

प्रो० नेलसन—"आज-कल बहुत-से बलवान मनुष्य युवावस्था में ही मर जाते हैं। हृदय और दिमाग की खराबी से उनकी मौत बतलाई जाती है। किन्तु खोज से पता लगा है कि उनमें सौ में से ९५ मनुष्य अवश्य ही तमाखू आदि गर्म चीजों के व्यसनी थे। जर्मनी के वैद्यों ने प्रकाशित किया है कि वहाँ १८ से ३५ वर्ष की उम्र में मरनेवाले मनुष्यों में आधे से अधिक आदमी तमाखू के व्यसन और उससे होने वाले रोगों से मरते हैं।

चिलम, हुक्का, चुरट और बीड़ी के कारण कई बार एक मनुष्य का रोग दूसरे को लग जाता है।

मानसिक शक्तियों की बरबादी

डॉ० अलकाट—"तमाखू का सूँघना मस्तिष्क के लिए बहुत ही बुरा है।"

डॉ० इस्टबेन्स—"तमाखू से धारणा, ध्यान और स्मरणशक्ति दुर्बल हो जाती है।"

डॉ० कैलन—"मेरे अनुभव में कई ऐसे उदाहरण है कि तमाखू के कारण वृद्धावस्था के पूर्व ही मनुष्य स्मरणशक्ति और ज्ञान से शून्य हो गये हैं।।"

तमाखू के दुर्व्यसन के साथ ही संसार में पागलों की संख्या भी बढ़ रही है।

× The Science of New Life.

-गवर्नर सैलिवान—"तमाखू मुझे कभी जड़ और सुस्त किये बिना न रही। उसमे मेरी विषयो के पृथक्करण और सुविचारो के प्रकट करने की शक्ति लुप्त हो जाती थी।"

प्रो० हिचकाक—"अन्य मादक पदार्थों की अपेक्षा तमाखू से बुद्धि की अधिक हानि होती है; इसके समान इन्द्रियदौर्बल्य, बुद्धिनाश, स्मरणशक्ति की हानि, चित्त की चंचलता, और मस्तिष्क के रोग पैदा करनेवाली वस्तु और नहीं है। मादक पदार्थ बृहस्पति के समान असाधारण बुद्धिमान मनुष्य की बुद्धि को भी नष्ट करके उसे अपना दास बनाकर नचाते हैं।"

डॉ० फाउलर—"तमाखू से ईसाई प्रजा के बुद्धि-बल को आज तक जो नुक़सान पहुँचा है, वह अपार है। ऐसे अनेक मनुष्य, जो संसार में उपयोगी और कीर्ति-शाली होते, तमाखू के व्यसन से निकम्मे हो गये हैं। उनकी बुद्धि ग़ायब हो गई है।"

डॉ० फोर्वस विन्सलो—(पागलपन के रोगों के विशेषज्ञ) "मैं पागलपन के कारणों को इस क्रम से रक्खूँगा—मद्य, तमाखू, और परम्परागत।"

रस्किन—"आधुनिक सभ्यता मे तमाखू सब से ख़राब राष्ट्रीय ख़तरा है।"

लूथर वर्वैंक—(अमेरिका के वाटिका विज्ञान के वेत्ता)-"मैं यह सिद्ध कर सकता हूँ कि मादक द्रव्यो का थोड़ा भी व्यवहार उस कार्य का विरोधक है जिसमे एकाग्रता की आवश्यकता होती है।"

डॉ० चुन्नीलाल बोस—शारीरिक हानियों का वर्णन करने के बाद लिखते हैं—"लड़कों और नवयुवकों के ज्ञान-तन्तुओं और

शरीर के दूसरे भागो मे उसके विष के कारण परिवर्तन हो जाता है। मानसिक कार्य करने की शक्ति कम हो जाती है। स्मरण-शक्ति कमज़ोर हो जाती है और वे आलसी हो जाते हैं।"

पं० ठाकुरदत्त शर्म्मा—"अजीर्णता, कास, फेफड़ों के तमाम रोग, त्वचारोग, निद्रानाश, दुःस्वप्न, चक्कर, नेत्ररोग, हृदय और मस्तिष्क की निर्बलता और उन्माद आदि तमाखू से होनेवाले सामान्य रोग हैं।"

[३]

द्रव्यनाश

तमाखू के पीछे जो अपरिमित द्रव्यनाश हो रहा है उसका ठीक-ठीक हिसाब लगाना कठिन है।"पान-बीड़ी-माचीस-सिगरेट" की पुकार हर स्टेशन पर अवश्य सुनाई देती है। वहाँ एक पैसे के चने चाहे नही मिलेंगे पर बीड़ी और माचीस तो व्यसनी बेवक़ूफ़ो की सूरतों में आग लगाने के लिए अवश्य तैयार रहती है। मज़दूर जब मजूरी पर जाता है, तब वह एक पैसे के चने नहीं लेगा; दो पैसे की तमाखू ज़रूर अपने पास रख लेगा। बाबूसाहब जब दफ़्तर में या घूमने के लिए जाते हैं तब और कोई खाने-पीने की चीज़ साथ में नहीं ले सकते; पर सीज़र या पेडरो का एक बक्स ज़रूर रख लेंगे। कुछ हज़रत घर और अकेले में तो 'साकी' (बीड़ी) से काम चला लेते हैं पर मित्र-समुदाय मे उन्हे 'मलमल' (सिगरेट) ही चाहिए। ग़रीब आदमी मजूरी पर जाते समय अगर मुठ्ठी-भर चने ले जाय और ये बड़े-बड़े बाबू लोग अपनी शान बघारने के लिए सिगरेट या बीड़ी ले जाने के बजाय काम पर अथवा दफ्तर में जाते समय उतनी ही क़ीमत की कोई पौष्टिक चीज़ रख लें तो उनका दिमाग़ कितना ताज़ा और शरीर कितना हृष्ट-पुष्ट और नीरोग रह सकता है? परन्तु उन्हे यह सुबुद्धि नहीं होती। कुछ भोले-भाले लोग तो अच्छी सोसायटी मे शामिल होने के लिए इन चीज़ों का इस्तेमाल शुरू कर देते हैं। और ये अच्छे लोग कौन होते हैं? पतित अफ़सर

और विलासी धनिक। दोनों निकम्मों के राजा! इस जमाने में अच्छेपन की परिभाषा भी बदल गई है। आलसी और चरित्रभ्रष्ट किन्तु साफ-सुथरे कपड़े पहननेवाले पठित मूर्ख अच्छे आदमी और अच्छी सोसायटी कहलाते है। उनका मुख्य व्यवसाय होता है दिन भर दफ्तरों और बाज़ारों में लोगों को लूटकर शाम को क्लब में जाना और वहाँ ताश खेलना, सिगरेट के धुंए के बादलों से वायुमण्डल को दूषित करना और भगवती मदिरा का पान करके अपने मित्रों, गुरुजनों, गृहिणी और पड़ोसी को सुललित शब्दों में आशीर्वाद देना।

आजकल दूध, निर्मल जल और सात्विक भोज्य-पदार्थों से अतिथि और अभ्यागतों का स्वागत करने के बदले उन्हे चबाने के लिए दी जाती हैं सुपारी की सूखी लकड़ी और पीने के लिए बीड़ी या सिगरेट। हुक्का और चिलम आदर-सत्कार की वस्तुएँ समझी जाती हैं।

परन्तु सबसे अधिक दुर्दैव की बात तो यह है कि जिनसे हम ज्ञान-प्रचार की आशा रखते हैं वही साधु, संन्यासी, बैरागी और ब्रह्मचारी लोग इन व्यसनों में फँसे हुए हैं। बाबाजी का अखाड़ा व्यसनी और चरित्र-भ्रष्टो का खासा अड्डा समझा जाता है। वहाँ जो-जो बुराई न हो वही गनीमत समझिए। भांग, गांजा और तमाखू तो वहाँ की त्रिपथ-गा भागीरथी है। बाबा जी की धूनी तो मानों स्वयं गंगोत्री या मानसरोवर, और। चिमटा शंकर का अवतार। उसका मुख्य उपयोग होता है धूनी में से आग उठाकर चिलम में रखने के लिए। इनके अखाड़े पर बातें तो ऐसी होती हैं मानों सभी जीवन्-मुक्त जीव हैं। परन्तु यह सब

क्षणभर के लिए। अपने और समाज के कल्याण के लिए घरबार छोड़कर साधुवृत्ति का अवलम्बन करनेवाले, इन साधु कहलानेवाले लोगों के पतन को देखकर मस्तक लज्जा से नीचे झुक जाता है। पर वास्तव में यह साधु-जीवन नहीं है और न ये साधु कहलानेवाले सभी साधु हैं। वास्तव में ये रण-भीरु और कायर गृहस्थ हैं। गृहस्थी में असफल होने पर या होने के डर-मात्र से भाग खड़े होनेवाले कायरों का यह समुदाय है। कहीं स्त्री से लड़ाई हुई, लड़के से निराशा हुई, भाई-बन्दों ने सताया, रोजी-रोजगार से छूटे, किसी प्रियजन की मृत्यु हुई, घर में आग लगी या चोरी हुई, परीक्षा में असफल हुए कि हुए बाबाजी। सच्चा वैराग्य और आत्म-साक्षात्कार का प्रेम तो कहीं ढूँढ़े भी नहीं मिलता। अन्यथा जिस देशमें छप्पन लाख साधु हों उसके उद्धार में क्या विलम्ब लग सकता है? पर आज तो ये साधु हमारे ग़रीब समाज के सिर पर भार-रूप हो रहे हैं। यदि वे अपने अकर्मण्य जीवन को सुधारकर व्यसनों के पंजे से अपने-आपको मुक्त कर ले तो भारत का उद्धार दो दिन मे हो जाय। साधु-समुदाय एक दुर्दमनीय शक्ति है। भारत के साढ़े सात लाख गाँवों मे, यदि वे निर्व्यसनी होकर फैल जायँ और खुद सदाचार पर आरूढ़ होकर समाज-सुधार का बीड़ा उठा ले तो कल ही अंग्रेजो को बोरिया-बिस्तर लेकर भारत से विदा होना पड़े। एक-एक गाँव मे सात-सात, आठ-आठ तेजस्वी साधु वह आग लगा सकते हैं, जो किसी बड़ी से बड़ी सल्तनत के बुझाये नही बुझ सकती।

पर अब तो साधु अकर्मण्यता की खान समझे जाते हैं। हट्टे-कट्टे मजबूत होने पर भी उन्हें भीख माँगते शरम नहीं

आती। और यही अकर्मण्यता के रोग को फैलानेवाले अड्डे होते हैं। जो कोई भी उनके अड्डों में जा फँसता है उसे गाँजा, भाँग, चरस आदि मन्त्रौषधियों के प्रयोग के साथ-साथ अकर्मण्यता की दीक्षा दी जाती है। ये साधु छोटे-छोटे बच्चों को भी जो प्रायः उन्हींके पापों की मूर्ति होते हैं, इसी अकर्मण्यता और नशाबाज़ी की दीक्षा देते हैं। वीतराग, इन्द्रिय-निग्रही समझे जाने वाले साधु नशे को अपना विश्वस्त मित्र समझते हैं। एक बार भोजन के बिना वे रह सकते हैं परन्तु गाँजे के बिना नहीं। कई ऐसे भावुक भक्त भी देखे गये हैं जो अन्न के दान के बदले उन्हें गाँजे का ही दान देते हैं।

जो समाज इस क़दर आत्म-हत्या करने पर तुला हुआ है उसका निर्वाह कैसे हो सकता है? यहाँ तो राजा से ग़रीब तक इस विष के चक्कर में फँसे हुए हैं। तमाखू मानों अमृत समझी जाती है और उसका खुले आम ज़ोरों से प्रचार हो रहा है। शायद ही कोई ऐसा अख़बार आपको दिखे जिसमें तमाखू का विज्ञापन न हो। अंग्रेज़ी अख़बारों में तो वर्जिनिया, एलिफेंट महम्रा, लिगेशन आदि सिगरेट-कम्पनियो के विज्ञापनोंसे पूरे पृष्ठ रंगे हुए होते हैं। और जहाँ नीचे से ले कर ऊपर तक सभी अधिकारी इसके गुलाम हैं, वहाँ इसे बंद कौन करे? संसार में बेरोक-टोक इसकी खेती होती है। लाखों-करोड़ों आदमी इसको व्यवहार में लाने योग्य बनाने के लिए प्रयत्न और और मजूरी करते हैं और अरबों की संख्या में इसपर रुपया बरबादहोता है।

हमे ठीक-ठीक पता नही कि संसार में तमाखू कि· कितनी पैदावार होती है, और उसपर कितना रुपया व्यय होता है। यहाँ

तो हमें सिर्फ यही देखना है कि हमारे देश मे तमाखू के नामपर कितने रुपयों की होली होती है।

भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तो में नीचे लिखे अनुसार तमाखू बोई जाती है। अंक सन् १९२६-२७ के है।

प्रान्त	एकड़
मदरास	२,६५,४०२
बम्बई	१,२२,३९९
बंगाल	२,८०,३००
युक्तप्रान्त	७३,३९४
पंजाब	५४,४०७
ब्रह्मा	१,१८,६०५
बिहार और उड़ीसा	१,१३,०००
मध्यप्रान्त और बरार	१७,५३३
आसाम	८,९९४
उ. प. सीमाप्रान्त	११,०५१
अजमेर-मेरवाड़ा	६३
कुर्ग	२५
दिल्ली	४८३
	१०,६५,६५६

सन् १९२१-२२ में १२,८६,९७९ एकड़ में तमाखू बोई गई थी। परन्तु उपर्युक्त संख्या में देशी राज्यों के अंक सम्मिलित नहीं हैं। इसलिए यदि उन्हें भी जोड़ लिया जाय तो शायद तेरह लाख से अधिक एकड़ हो जायँ।

अतः हम मध्यम मार्ग को धारण करके यह माने लेते हैं कि भारत में प्रतिवर्ष १२०००००० एकड़ मे तमाखू की खेती होती है।

प्रत्येक एकड़ मे तमाखू २०० पौंड से लेकर ३००० पौंड तक होती है। तथापि इसमे भी मध्यम मार्ग १५०० पौंड फ़ी एकड़ उत्पत्ति मान ली जाय तो कुल १,८७,५०,००,००० पौंड तमाखू भारत मे होती है। यदि रुपये की दो सेर के भाव से इसकी क़ीमत लगाई जाय तो ४६,८७,५०,००० रुपये की तमाखू प्रति वर्ष यहाँ पैदा होती है।

इसके अतिरिक्त बाहर से नीचे लिखे अनुसार तमाखू आती है :—

वर्ष	आय रु०	पौंड
१९२६–२७	२,५६,११,०००	
१९२७–२८	२,९१,३२,०००	
१९२८–२९	२,७४,६०,०००	७०,००,०००
१९२९–३०	२,६९,७१,०००	४५,००,०००
१९३०–३१	१,५१,११,०००	१५,००,०००

(सत्याग्रह और बहिष्कार का असर)

इसमे से अधिकांश तमाखू—लगभग ९२ प्रतिशत संयुक्त-राज्य अमेरिका से आती है। १९२९-३० मे यह परिमाण ९७ प्रतिशत था। तमाखू के अलावा सिगरेट भी आते हैं। विदेशी सिगरेट की आयात इस तरह है:—

	पौंड	कीमत
१९२९-३०	५२५००००० (इंग्लैंड से)	२१३०००००
१९३०–३१	३०,०००० (इंग्लैंड से)	१२२५००००
	१४४००० (चीन से)	२०००००

(बहिष्कार का असर)

और भारतीय तमाखू जो विदेशों में जाती है उसके निकास के अंक ये हैं—

	कीमत	पौंड
१९२६–२७	१०४१५०००	
१९२७–२८	१०६१३०००	
१९२८–२९	१२९४७०००	
१९२९–३०	१०६४२०००	२६००००००
१९३०–३१	१०३६५०००	२८००००००

इस तरह भारतवर्ष मे प्रतिवर्ष लगभग ५० करोड़ रुपये की तमाखू लोग खा, पी, या सूंघ जाते हैं। फिर भी—यह मूल्य केवल कच्चे माल का है। इसके बाद तो तमाखू पर कई संस्कार होते हैं। देश में लाखो आदमी इसका व्यवसाय कर रहे हैं, कोई बीड़ी बनाते हैं तो कोई नस्य बनाते हैं। सिगरेट के कई कारखाने बने हुए हैं। हुक्का, चिलम, आदि का बनाना तो एक ख़ास उद्यम बन बैठा है इन सबका हिसाब लगाया जाय तो तमाखू और उसमें आवश्यक अन्य चीजो पर होनेवाला द्रव्य-नाश एक अरब से भी ऊपर बढ़ जायगा।

हमारा देश स्वाधीन नहीं है। इसलिए सरकार ने न कोई ऐसे अंक एकत्र किये है और न प्रयोग ही कि जिससे हमे इन दुर्व्यसनो की भयंकरता का कुछ अनुमान हो सके। इस समय तो हम दोनों तरह से नुकसान में हैं। एक तो सरकार कुछ ऐसी चीजें हम पर लादती है, जिनसे यद्यपि हमें तो नुकसान है, पर उसे फायदा है। हमारे नुकसान की उसे कोई परवा ही नही। दूसरे ऐसी बुराई को भी वह दूर नहीं करती जिससे उसे

कोई नुक़सान तो नहीं पर उसके लिए प्रयत्न करने में व्यर्थ की परेशानी उठानी पड़ती है। तमाखू इन्हीं चीज़ों में से है।

प्रतिवर्ष ५०,००,००,०००) की आर्थिक हानि के अतिरिक्त इसके भयंकर विष से न जाने कितने करोड़ मनुष्य प्राणियों की ीवन-शक्ति नष्ट होती है। क्या इस राष्ट्रीय हानि का ठीक-ठीक ।हसाब लगाकर उसे दूर करने का बीड़ा उठानेवाला कोई वीर भारत में है? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसमें राजनीतिक, सामाजिक, या धार्मिक कोई रुकावट नहीं है। भारत अपने युवकों की ओर इस दृढ़व्रत के लिए आंखे लगाये हुए हैं।

चाय और काफ़ी

चाय और काफ़ी

आधुनिक सभ्यता में चाय और काफ़ी का बड़ा ऊँचा स्थान है। देहातियों के लिए जिस प्रकार तमाखू है, वैसे ही शहर वालो के लिए चाय और काफ़ी है। हम दीवालों पर लिखा हुआ पाते हैं "चाय गरमी के दिनों में ठंडक पहुँचाती है और सर्दी में गरमी। चाय थकावट को दूर करती है। एक पैसा चा—पाकिट में तीन पियाला चाय। लिपटन की चाय पीओ" इत्यादि। स्टेशनों पर "चा गरैम" की आवाज़ ज़रूर सुनाई देती है। वैशाख-ज्येष्ठ की कड़ी धूप में मैंने अपने कई सभ्य कहलानेवाले मित्रों को चाय पीते देखा है। अहमदाबाद और बम्बई की सड़कें बारहों महीने चाय के प्यालों और रक़ाबियो की खन-खनाहट से संगीत-मय रहती हैं। धनिक लोग इसे अंग्रेज़ी सभ्यता का एक चिन्ह समझकर अपनाते हैं, मध्यमवर्ग के लोग कुछ फ़ैशन और कुछ भोज्य पदार्थ के रूप में इसका श्रीगणेश करते हैं, और ग़रीब लोग इसे नशा समझकर पीते हैं। ग़रीब लोगोंमें आजकल इसका प्रचार बहुत बढ़ गया है। बढ़ई-कारीगर, राज-मजदूर से लेकर मेहतर तक नियमपूर्वक इसका प्रातःस्मरण और सेवन करते हैं। प्रसन्नता का विषय है कि उत्तर भारत में चाय और क़हवे का उतना भीषण प्रचार नहीं, जितना दक्षिण भारत में है। फिर भी उत्तर भारत के निवासियों को इससे

होनेवाले हानि-लाभ को जान लेना जरूरी है, जिससे कोई इसके चक्कर में न पड़ने पावे।

चाय एक पौधे की पत्तियों का चूरा है। यह पौधा चीन की चीज़ है। पर अब तो यह भारत और संसार के अनेक भागों में होता है। चाय में "थीन" (Theinn) नामक एक जहर होता है। वह प्रतिशत तीन से लेकर छः तक की मात्रा में उन चायों में पाया जाता है, जिन्हे हम पीते हैं। दूसरी वस्तु जो इसमें होती है, टैनिन (tannin) कहलाती है। टैनिन चाय में प्रायः प्रतिशत २६ तक की मात्रा मे पाई जाती है।

कॉफी अरबस्तान के एक पौधे का भूना हुआ फल है। यह उस पेसवियन बोली के पौधे से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है, जिससे कि कुनाइन प्राप्त होती है।

कॉफ़ी मे कैफिन (caffeine) नामक द्रव्य होता है, जो थीन का ही भाई-बन्द है। इसमे टैनिन भी होता है। परन्तु चाय की अपेक्षा इसमे ये दोनों कहीं कम मात्रा मे होते हैं।

कोको मैक्सिको का पौदा है। चोकोलेट (chocolate) इसी-से बनते हैं। कोको में भी वही जहर प्रतिशत पाँच मात्रा मे होता है। कोको फल को पीस कर, उसमें चीनी आदि मिलाकर, रोटियाँ बनाकर सुखा लिया जाता है। इसीको छोटे-छोटे डिब्बो में भर कर भेजा जाता है, जिसे हम पीते हैं।

सभ्य समझे जानेवाले राष्ट्रों में चाय और काफी का प्रचार हुए बहुत दिन नहीं हुए। कहा जाता है कि अरबस्तान के लोग एक हजार वर्ष से कॉफी पी रहे हैं। चीन और जापान में चाय का उपयोग शुरू हुए भी लगभग इतने ही वर्ष हुए। सोलहवों

सदी के मध्य में कुस्तुंतुनिया में एक कॉफी की दूकान खोलकर यूरोप में इसका पहले-पहल प्रचार हुआ। वहाँ से इंग्लैंड तक जाने को इसे पूरी एक सदी लग गई। कुस्तुन्तुनिया में जब यह दूकान खुली तो वहाँ के मुल्ला-मौलानाओं ने इसका जबर्दस्त विरोध किया। वे कहते थे कि कॉफी पीना पैग़म्बर साहब की शिक्षाओ के विपरीत है। पर नशो का प्रचार इस तरह नहीं रोका जा सकता। आज तुर्किस्तान कॉफी के कट्टर से कट्टर भक्तों में गिना जाता है।

सभ्य संसार में भी शुरू-शुरू में इसका विरोध तो जरूर हुआ, पर उस तरह नहीं, जैसा कि तमाखू का हुआ था। इसलिए इसका प्रचार तेजी से बढ़ने लगा। एक विश्वसनीय अर्थ-शास्त्री का कथन है कि उन्नीसवीं सदी के अन्त तक संसार मे इन चीजों की खपत नीचे लिखे अंकों तक बढ़ गई थी—

चाय	३,००,००,००,०००	पौंड
कॉफी	१,००,००,००,०००	पौंड
कोको और चोकोलेट	१०,००,००,०००	पौंड

रूस और हालैंड को भी चाय ही प्रिय है। परन्तु तुर्किस्तान, स्वीडन, फ्रांस और जर्मनी में काफी का प्रचार अधिक है। भारत में नीचे लिखे अनुसार चाय की खपत हुई:—

सन्	पौंड
१९१०	१,२४,७७,२९७
१९१५-१६	४,१३,११,९००
१९२१-२२	१६,००,००,०००

इनके दुष्परिणाम

चाय और काफ़ी के रासायनिक गुण-दोष जाँचने के लिए कई प्रयोग किये गये हैं। डॉ० स्मिथ और डा० रिचर्डसन के प्रयोगो से पता चलता है कि थोड़ी मात्रा में चाय पीने से हृदय की गति बढ़ जाती है। फेंफड़े अधिक मात्रा में कारबोलिक एसिड छोड़ते हैं। शरीर की गरमी कम हो जाती है, और गुर्दे की भी गति गढ़ जाती है। अधिक मात्रा मे चाय पीने से जी मिचलाता है, आदमी बेहोश हो जाता है और अन्त में उसकी मृत्यु हो जाती है। डॉ० एडवर्ड स्मिथ ने दो औंस काफी जिसमें ७ ग्रेन कैफिन का ज़हर होता है क्वाथ पिया तो वे बेहोश हो कर ज़मीन पर गिर पड़े थे।

डॉ० केलॉग, चाय से एक घोड़े की मृत्यु किस तरह हुई, इसका हाल यों लिखते हैं—

"ब्रिटिश फ़ौज के एक ऊँचे अफ़सर का प्यारा घोड़ा बड़ी विचित्र प्रकार से मर गया। उनके रसोइये की ग़लती से एक चाय के बोरे के अन्दर कुछ पौंड चाय रह गई। सईस आया और उसने उसी बोरे में चने भरे और घुड़सवार फ़ौज के और घोड़ो को चने बाँटता-बांटता आया और जब उसमे थोड़े-से रह गये, तो वह बोरा इस अफ़सर के घोड़े के सामने रख दिया। स्वभावतः इसके हिस्से सब से ज्यादा चाय आई। घोड़ा तो चनों के साथ मे चाय भी खा गया, पर उसका नतीजा यह हुआ कि वह जानवर नशे मे चूर हो गया, अपने पिछले पैर उछाल-उछालकर खूब कूद-फाँद मचाने लगा और अन्त मे एक खाई में गिरकर मर गया!"

जीवन-शक्ति का ह्रास

डा० स्मिथ, डा० गाजू और कई बड़े-बड़े डाक्टर खोज के बाद इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि चाय और काफ़ी पीने पर शरीर का क्षय तेज़ी से बढ़ जाता है। कारण कि इसके सेवन से शरीर के अन्दर से निकलनेवाले 'कारबोलिक एसिड' का परिमाण बढ़ जाता है। फेफड़ों के भीतर से निकलनेवाली "कारबोनिक एसिड" की मात्रा शरीर के क्षय का परिमाण जानने का सर्वोत्तम साधन है।

शरीर-क्षय की यह मात्रा सारे शरीर-क्षय के १/८ वें भाग से लेकर १/४ भाग तक पहुँच जाती है। नतीजा यह होता है कि जो लोग अधिक पौष्टिक अन्न और वह भी अधिक मात्रा में खाते हैं, वही इस व्यर्थ के क्षय को बरदाश्त कर सकते हैं। इसके मानी कम से कम यह तो जरूर हुए कि श्रीमान् लोगों के लिए यह व्यसन उतना बुरा चाहे न हो परन्तु मामूली लोगों के लिए तो अवश्य ही नुक़सानदेह है।

पाचन-शक्ति का बिगड़ना

अनेक तजुर्बेकार डॉक्टरो का निश्चित मत है कि चाय और काफ़ी से पाचन-शक्ति तो बिगड़ती ही है, अनावश्यक मात्रा में और बहुत गरम-गरम द्रव शरीर के अन्दर पहुँच जाने से सारी पाचन-क्रिया अव्यवस्थित हो जाती है। आस्ट्रेलिया के एक प्रसिद्ध डाक्टर ने ब्रिटिश मेडिकल असोसियेशन के एक अधिवेशन में कहा था कि चाय और काफ़ी निश्चित रूप से आदमी के शरीर में बदहज़मी का रोग पैदा करते हैं। सर विलियम रॉबर्ट का कथन है कि थोड़ी-थोड़ी मात्रा में चाय और काफ़ी का सेवन

करने से भी हमारे शरीर के पाचक क्षार कमज़ोर हो जाते हैं, जिससे अन्न के पौष्टिक तत्त्वों के सत्त्वों को हमारा शरीर नहीं खींच सकता, दूसरे शब्दों में यही अग्निमांद्य अथवा अजीर्ण होता है।

दन्त रोग

चाय और काफ़ी बहुत गरम-गरम पी जाती है। इतनी अधिक गरमी से दांतों की जड़ें कमज़ोर हो जाती हैं। इसी कारण हम देखते हैं कि चाय और बरफ़ का अधिक उपयोग करने वाले लोगों के दाँत अक्सर कमज़ोर रहते हैं। बहुत ज्यादा गरम और बहुत ज्यादा ठंडी चीज़ें दाँतों के लिए हानिकारक होती हैं।

चाय और काफ़ी से स्नायुओं को क्षणिक उत्तेजना तो मिलती है, परन्तु उनसे मनुष्य की यथार्थ शक्ति या खून नहीं बढ़ने पाता। इसलिए चाय का प्रभाव कम होते ही शरीर पर प्रतिक्रिया आरम्भ होती है और शीघ्र ही शरीर सुस्त हो जाता है।

नैतिक प्रभाव

जो लोग चाय पीने के बहुत अधिक अभ्यस्त होते हैं, उनके आचरण पर भी इसका स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। एक प्रसिद्ध स्नायु-विशेषज्ञ (Neurologist) ने (Journal of Mental and Nervous Diseases में) उपर्युक्त सत्य के विषय में इस प्रकार लिखा है—"बहुत दिनों तक चाय का सेवन करने से जैसे बदहज़मी की शिकायत होती है वैसे ही आदमी का स्वभाव भी चिड़-चिड़ा हो जाता है।" प्रत्येक दातव्य संस्था में, ख़ास-

कर वृद्धों की में, चाय पीनेवालों की अधिकांश संख्या. होती है; इसका परिणाम यह होता है उन लोगों में चिड़चिड़ापन, शारीरिक दौर्बल्य, और नीद न आना आदि दोष पाये जाते है।"

न्यूयार्क (अमेरिका) के प्रसिद्ध डॉक्टर मार्टन ने चाय और काफ़ी के दुष्परिणामों की बड़ी सावधानी के साथ जॉच की है। हम उनकी इस जॉच के परिणामों में से कुछ महत्वपूर्ण अंश नीचे देते हैं।

"चाय और काफ़ी के सेवको का स्वास्थ्य बहुत जल्दी गिर जाता है। यहाँ तक कि वे अपने काम-काज को भी भली-भाँति नहीं सम्हाल सकते। अगर कुछ करते भी है तो उससे उनके स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुँचती है। अपने लम्बे अनुभव से मुझे तो कहना पड़ता है कि जिन लोगों को वर्षों से चाय पीने का अभ्यास पड़ गया है उनके स्वास्थ्य को तात्कालिक और हमेशा टिकनेवाली हानि पहुँचती है। अमेरिका के एक बहुत बड़े धनिक व्यापारी ने कहा था—"मुझे एक लाख डॉलर की हानि हो जाय तो परवा नही, पर मै यह कभी पसन्द नहीं करूँगा कि मेरा लड़का चाय पीने लग जाय।"

हम जितनी चाय पीते हैं उसकी मात्रा देखते हुए हमें पहले-पहल यही खयाल होता है कि इतनी-सी चाय से क्या हानि होती होगी! परन्तु जब उसकी चोट हमें लग जाती है,तभी हमें उसकी शक्ति और बुराई का खयाल होता है। एक शराबी, अफीमची और तमाखू-भक्त की तरह चाय भी आदमी को लाचार बना देती है। कई भले आदमी चाय की आदत लग जाने पर उसके इस तरह गुलाम बन जाते हैं कि यदि किसी दिन ठीक

समय पर चाय नही मिल पाती तो उनका सिर घूमने लग जाता है, बुखार हो आता है, हाथ-पैर दुखते हैं, और सारा बदन टूटने लगता है ! काम-काज मे दिल नहीं लगता ! ऐसा मालूम होता है, मानों शरीर में कोई बल नहीं रहा ।

चाय के दुष्परिणामों को जाँचने के लिए डॉ० मार्टन एक ऐसे आदमी का उदाहरण पेश करते हैं, जिसे वेहद चाय पीने की आदत थी । ऐसे मामलों मे जो परिणाम पाये जाते हैं, उनसे कम परिमाण मे चाय पीने के असर का भी अनुमान भली-भाँति किया जा सकता है । चाय के एक मरीज का वे यो वर्णन करते हैं:—

"चाय पीने पर दस ही मिनट में उसका चेहरा तमतमा उठता है । सारे शरीर में गरमी मालूम होती है, और मस्तिष्क कुछ हलका मालूम होता है । ऐसा अनुभव होता है, मानों एका-एक कहीं से बहुत-सी बुद्धि आकर दिमाग़ में घुस गई । उसे प्रसन्नता मालूम होती है, मारे आनन्द के हृदय नाचने लगता है, चिन्ताएँ और कष्ट अदृश्य हो जाते हैं । सारा विश्व आनन्दमय और आशामय मालूम होता है । शरीर हलका और फुर्तीला मालूम होता है । विचार सुलझे हुए और खूब आते हैं, वाणी खिल उठती है, पहले की अपेक्षा बुद्धि अधिक तेज और चपल मालूम होती है । और यह सब भ्रम नही । आप उससे बातें कीजिए और वह आपको थका देगा । ऐसी-ऐसी गप्पें लगायेगा कि आप चकित हो जावेंगे ।'

क़रीब एक घण्टे के बाद प्रतिक्रिया का आरम्भ होता है । कहीं थोड़ा-सा सिर-दर्द मालूम होता है । चेहरे पर शिकनें पड़ने

लगती हैं, वह सूख जाता है, आँखें निस्तेज-सी हो जाती हैं। पलकों के नीचे के हिस्से पर स्याही छा जाती है।

दो घंटे के बाद तो प्रतिक्रिया पूर्ण रूपेण आ जाती है। वह गरमी न जाने कहाँ चली जाती है। चेहरे की सुर्खी नदारद। हाथ-पाँव ठंडे। सारे शरीर मे कँपकँपी-सी आ जाती है। वह प्रसन्नता न जाने कहाँ रफू-चक्कर हो जाती है! मानसिक निराशा घर दबाती है।

इस समय वह ऐसा चिड़चिड़ा हो जाता है कि बात-बात पर तनक उठता है। कही जरा-सा खटका होते ही वह चौक पड़ता है, बेचैनी बढ़ जाती है और थकावट के मारे वह चूर-चूर हो जाता है। अब कोई काम करने की हिम्मत उसमे नहीं रह जाती। न चल सकता है, न बैठने को जी चाहता है।

यह तो एक बार चाय लेने का परिणाम है। इस समय शराब वग़ैरा नशीली चीजे पीने की बहुत इच्छा होती है। पेशाब की हाजत बार-बार और खूब होती है। कुछ बदहजमी भी मालूम होती है।

चाय की आदत बढ़ जाने पर सिर-दर्द की शिकायत बार-बार होती है। आंखों को घुमेरे आती है, कानो मे सन-सन सी सुनाई देती है ऐसा मालूम होता है, मानों अपने आस-पास की सारी चीजे घूम रही हैं। नीद कम आती है, नींद में आदमी उठ-उठ कर भागता हैं। खूब सपने आते हैं। बदहजमी की शिकायत बढ़ जाती है। भूख का कोई ठिकाना नही रहता। खट्टी-मीठी डकारें आती रहती हैं। परन्तु डकार के समय कुछ कष्ट होता है।

ऐसे कट्टर चाय-भक्त की मनोदशा विचित्र होजाती है। उसे हमेशा किसी न किसी चीज़ का डर बना रहता है। अगर कहीं मोटर में बैठता है तो यह डर लगता है कि यह कहीं किसी दूसरी मोटर से टकरा न जाय। रेल में पुलों और पहाड़ों के टूटने का डर रहता है। रास्ते मे चलते वक्त मोटर और गाड़ियों के नीचे कुचल जाने का भय रहता है। यह भी डर लगता है कि कहीं कोई मकान का हिस्सा या छप्पर का कोई खपरैल उसके ऊपर गिर न पड़े। कुत्तो को देखते ही उसे उनके काटने का भय होता है।"

डा० मार्टन ने जितने चाय-बाजों की जाँच की सबके अन्दर यही लक्षण उन्हे मिले। तब उन्होंने खुद चाय पीकर देखा और अपनी जाँच का फल बिलकुल ठीक पाया। इसके बाद उन्होंने अपने ये सारे अनुभव प्रकाशित कर दिये। उनके आविष्कारों का खण्डन करने का खूब प्रयत्न किया गया। पर इसका कोई असर न हुआ। उल्टे दूसरे डाक्टरो ने भी डा० मार्टन की जाँच को ही सत्य पाया।

इंग्लैंड के सुविख्यात डॉक्टर सर बी० डब्ल्यू० रिचर्डसन लिखते हैं:—

"चाय से बदहज़मी की शिकायत शुरू हो जाती है; शरीर के स्नायु कमज़ोर हो जाते हैं और मानसिक दुर्बलता बढ़ जाती है। लोग इस शिकायत को दूर करने के लिए शराब का सहारा लेते हैं। इस तरह एक से दूसरी बुराई बढ़ती है।"

काफ़ी तो चाय की बहिन है। उससे भी बदहज़मी होती है। इस कारण यह चाय से भी भयंकर है। नींद कम हो जाती है। जब आदमी को गहरी नींद मे सोकर थकावट को मिटाना

चाहिए उस समय ये दोनों बहनें—चाय और काफी—आदमी के दिमाग़ को बेचैन किये डालती हैं।

इसके बाद जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं उनसे तो पता चलता है कि चाय और काफी का थीन नामक द्रव्य यूरिक एसिड से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। यूरिक एसिड वही भयंकर द्रव्य है, जो प्राणियो के पेशाब में पाया जाता है। × इसलिए चाय या काफ़ी का मनुष्य के शरीर पर वही असर होगा, जो मूत्र के उत्पन्न होने वाली एसिड की दवा पीने से हो सकता है।

पर यह होने पर भी चाय के भक्त इसकी प्रशंसा करते-करते नही थकते। बात यह है कि इन विषैले द्रव्यो के नशे ने बड़े-बड़ों और बुद्धिमान लोगो तक को भ्रम में डाल रक्खा है। ऐसे लोग प्रत्येक नशीली चीज़ो के गुणो को गिनाते हैं। पर वे नशे के आवश्यक धर्म को नही जानते इसलिए एक भ्रम मे पड़ जाते हैं।

चाय के भक्त कहते हैं—

"चाय से शक्ति बनी रहती है, थकावट दूर होती है। हाज़मे को सहायता मिलती है, सिर दर्द अच्छा हो जाता है। क्षुधा की शान्ति होती है। मनोबल बढ़ता है! भिन्न-भिन्न जगहों का पानी नही लगता, और चित्त की प्रसन्नता बढ़ती है!"

परन्तु वास्तव मे देखा जाय तो यह सब भ्रम है। प्रत्येक प्रकार के विष का थोड़ी मात्रा में सेवन करने से वही परिणाम होता हुआ जान पड़ता है। परन्तु वास्तव में उसका असर भयंकर ही होता है। विष जब संज्ञा और चिंतन के ऊंचे केन्द्रो को मूर्छित कर देता है तो निम्न केन्द्रों पर से मस्तिष्क का अधि-

× URIN यूरिन-पेशाब और रक-पेशाब का-पेशाब-सम्बन्धी।

कार उठ जाता है। शरीर बिना ब्रेक की गाड़ी और ड्राइवर के इंजन की तरह मन-माना दौड़ने लग जाता है। उसमें विचार और चेतन-शक्ति नहीं होती। मस्तिष्क के निम्न केन्द्रों के विचार और भाव उच्छृंखल हो जाते हैं और हमें मालूम होता है कि हमारी विचार-शक्ति उत्तेजित अथवा जागृत हो उठी है। जिन बातो को दूसरों पर प्रकट करने मे मामूली अवस्था में हमे संकोच और लज्जा मालूम होती है, नशे मे हम बेधड़क उन्हें बोलते और लिखते चले जाते है।

चाय, तमाखू, काफी अथवा दूसरा कोई नशा आपकी थकावट को मिटाता नहीं। थोड़ी देर के लिए आपको उत्तेजित कर देता है। एक दुबले-पतले भूखे बैल को मार-मार कर कितनी देर तक काम ले सकते हैं? किराये के इक्केवाले अपने घोड़े को शराब पिलाकर उसकी थकावट को भुला देते हैं और उससे खूब काम लेते हैं। पर यह कबतक हो सकता है? चाय के कारण बद-हजमी के शिकार बने हुए लोग भी अपने दुर्बल पाक-यन्त्र को चाय की ओर लगाकर उससे कुछ दिन अन्न हजम करवा लेगे। परन्तु आगे चलकर के ऐसा प्रसंग कभी आ सकता है, जब चाय के मनमाने प्याले पीने पर भी पाक-यन्त्र अन्न को हजम करने से इन्कार कर देगा। सिर दर्द को रोकने, बुखार भगाने, मनो-बल को बढ़ाने आदि वाते भी इसी श्रेणी की हैं। आसन्न-मृत्यु प्राणी की छटपटाहट को जिस तरह कितने ही लोग स्वास्थ्य और नीरोग होने के आशाप्रद लक्षण समझते हैं, वही हाल नशीली चीजो से बीमारियाँ अच्छी होनेवाली बातों का भी है।

तमाखू, भांग, गांजा, काफी जैसे हानिकर पदार्थों की खेती और पैदायश एक गुनाह समझी जानी चाहिए। इसका पीना

और पिलाना दोनों पाप समझे जाने चाहिएँ। पर हमारे यहाँ तो जुदी बात है। आजकल वही आदर और आतिथ्य की प्रधान वस्तु हो गई है। जहाँ सारा संसार बावला हो रहा है, तहाँ निन्दा भी किस-किस की की जाय? भारत केवल अपने पीने के लिए ही चाय नहीं पैदा करता।

भारत में आसाम, बंगाल और दक्षिण भारत की पहाड़ियों पर चाय के बाग़ हैं। भारत में चाय की खेती प्रायः पूर्ण-रूपेण गोरों के हाथों में ही है और वे भारतीय मजदूरों से काम लेकर इस खेती से बेहद फायदा उठाते हैं। चाय के खेतों पर मजदूरों को बड़ी बुरी तरह रक्खा जाता है! गुलामों की अपेक्षा भी बद-तर सलूक उनके साथ होता है। गुण्डे गोरों के भारतीय मज-दूरों की स्त्रियों पर बलात्कार की हम कई खबरें पढ़ते हैं। फिर न जाने कितनी कहानियाँ तो वहीं दब जाती होंगी? इस तरह चाय की खेती भारत के लिए एक तरह से दुगुनी शर्म की चीज है। एक तो चाय जैसी अनावश्यक और हानिकर चीज को पैदा करके विदेशों पर लादने में हम भाग लेते हैं, और दूसरे वहाँ जानेवाले भारतीय मजदूरों के सम्मान की हत्या के कारण बनते हैं।

चाय पहले-पहल आसाम में जंगली पौदे के बतौर उग रही थी। सन् १८२० में इसका पता चला। शीघ्र ही ईस्ट-इंडिया कम्पनी का ध्यान उसने आकर्षित किया और सन् १८३५ में उसने एक प्रयोग-क्षेत्र क़ायम किया। पाँच साल तक उसे चलाकर उसने इस बाग़ को आसाम कम्पनी के सुपुर्द कर दिया उसने कुछ वर्ष प्रयोग किये। पर चाय की खेती की व्यापारिक ढंग से शुरूआत तो सन् १८५६ और १८५९ के बीच हुई, तब

से एक सौ वर्ष के भीतर ही भीतर इसने इतनी अद्भुत उन्नति की कि आज हिन्दुस्तान संसार में सबसे अधिक चाय उत्पन्न करनेवाले देशों में गिना जाता है। १८७५ के बाद चाय की खेती का नीचे लिखे अनुसार विकास हुआ:—

वर्ष	एकड़ हजारों में	पैदायश लाख पौंडों में
१८७५-७९	१७३	३४
१८८५-८९	३०७	९०
१९००-१९०४	५००	१९५
१९१०	५३३	२४९
१९१५	५९४	३५२
१९२०	६५४	३२२
१९२५	६७२	३३५
१९२९	७१२	४०१
१९३०-३१	८०५	×

भारतीय चाय-व्यवसाय मे ६८६ जाइण्ट स्टॉक कम्पनियाँ काम कर रही हैं। १९३०-३१ में उसमें ५३,४३,८६,००० की पूँजी लगी हुई थी। शेअर होल्डरों को २१ से लेकर २०० प्रतिशत तक नफा बाँटा गया था। १०० रुपये के शेअर के भाव सन् १९२९ में ३०३ था, सन् ३० में २७८ और सन् ३१ में २४८ था।

प्रान्तवार वर्गीकरण इस प्रकार है।

प्रान्त	एकड़ (हज़ार)	हज़ार पौंड	प्रतिदिन मज़दूर
आसाम–			
सरमावेली	१४५	७३७८४	१५६४८९
आसाम वेली	२८५	१८५१५७	४००९९५
कुल	४३०	२५८९४१	५५७४८४
बंगाल–			
दार्जिलिंग	६१	२३००९	६५५२२
जलपाइगुडी	१२८	८५४२७	१२५६३२
चटगाँव	६	१५१७	५७४५
	१९५	१०९९५३	१९६८९९
मदरास–			
निलगिरी	३२	११४०७	३०७५९
मलाबार	१३	६४९३	१२८३२
कोइंबतूर	२२	९७००	२७२१७
अन्य	×	३४	४४
	६७	२७६३०	७०८५२
कुर्ग	×	१६९	६२०
पंजाब	१०	१९३०	१०९९५
युक्तप्रान्त	६	१४८९	३८७१
बिहार-उड़ीसा	४	८५३	२९०२
ब्रिटिश-भारत में कुल	७१२	४००९६५	८४३६२३
देशी राज्य	७७	३२०३३	८६८४९
समस्त भारत	७८९	४३२९९८	९३०४७२
कुल बगीचे ४७४२ भारतीयों की मालिकी की ५२१			

× पाँच सौ एकड़ से कम

यद्यपि भारत में इतनी चाय पैदा होती है तथापि इसमें से यहां बहुत कम अर्थात् ५,७०,००,००० पौंड खपती है। फी आदमी खपत .१८ पौंड है तहां इंग्लैंड मे ९.२० है। अधिकांश चाय यहाँ से इंग्लैंड को ही जाती है। संसार मे जितनी चाय लगती है उसमे से प्रतिशत ४० चाय हिन्दुस्तान देता है। इधर तीन-चार वर्षों मे नीचे लिखे अनुसार चाय का निकास हुआ:—

वर्ष	वजन, लाख पौंड	क़ीमत, लाख रुपये
१९२६—२७	३४९०	२९०४
१९२७—२८	३६२०	३२४८
१९२८—२९	३६००	२६६०
१९२९—३०	३७७०	२६०१
१९३०—३१	३५७०	×

भारत की चाय के ग्राहक प्रतिशत————→

देश	२८—२९	२९—३०
ग्रेट-ब्रिटेन	८३.०	८४ २
शेष युरोप	२.०	२.२
एशिया	५ ८	३ ८
अमेरिका	५.७	५.८
आस्ट्रेलिया	१.६	१.३
आफ्रिका	१ ९	२.७

ग्रेट-ब्रिटेन मे जाने-वाली चाय मे से बहुत अधिक तादाद वहाँ से दूसरे देशो को पुनः भेज दी जाती है।

सन् १९३१ वर्ष का भारत के चाय के व्यापार के लिए बड़ा ही नुक़सान-देह रहा है। १९२३ से २७ तक तो चाय की क़ीमत ठीक रही। पर २८ से बहुत गिरने लगी। सारी चायो

की क़ीमत प्रतिशत २५ गिरी। भारत की चाय के भाव तो प्रतिशत ५० गिर गये।

बाहर जानेवाली चाय का थोक नीलाम होता है।

पिछले वर्षों के भावो का औसत देखिए:—

	रु० आ० पा० फी पौंड
१९०१–२ से १९१०–११ तक	०— ६— ०
१९२४–२५	०—१५—११
१९२७–२८	०—१४—१०
१९२८–२९	०—११— ४
१९२९–३०	०— ९—११
१९३१–३२	०— ६— ५

भारत की ६५ कम्पनियों के लाभ-हानि का ब्यौरा इस तरह है

	१९१३	१९२४	१९२८	१९२९
२ फी एकड़ नफा पौंडों में	६–१०–७	१५–२–०	१०–०–०	६–९–०
३ फी पौंड नफा पेन्सों में	२.६	६.४	३.८४	२.२६
१फी एकड़पैदायश पौंडों में	५९९	५६०	६२५	६८४

इन अंको से साफ़ ज्ञात होता है कि यद्यपि पैदायश खूब बढ़ गई है, व्यापारियो का नफा उतना नही बढ़ा। इसका कारण है संसार मे—खास कर सुमात्रा और जावा में चाय की अत्यधिक उपज।

भारत के मजदूरो की अवस्था की जांच करने के लिए जो रॉयल कमीशन आया था उसने अपनी रिपोर्ट सन १९३१ में

प्रकाशित की है। जिसमें मजदूरों के लिए कुछ सुविधाएँ करने के लिए सिफारिशें की हैं।

बाज़ार में चाय की पौंड लगभग १) के भाव से मिलती है। इस हिसाब से भारत में—लगभग पांच करोड़ रुपये की चाय प्रति वर्ष खपती है।

काफ़ी का इतिहास ज़रा अन्धकार-पूर्ण है। ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि भारत में इस देवी का आगमन कब हुआ। पर दक्षिण भारत में यह कहानी बहुत प्रचलित है कि बाबा बुदन नामक एक मुसलमान यात्री मक्का से लौटते समय दो सदियों पूर्व मैसूर में इसके सात बीज लाया था। सम्भव है यह सच हो। परन्तु अंग्रेजी इतिहासकार कहते हैं कि उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में काफ़ी भारत में आ चुकी थी। सन् १८२३ में फोर्ट ग्लास्टर को एक परवाना दिया गया था, जिसमें कलकत्ता में उसे कपड़े की मिल, काफ़ी की खेती और शराब की डिस्टिलरी खोलने के लिए आज्ञा दी गई थी। पर उत्तर भारत में कहीं उसके पैर न जमे। आखिर काफ़ी ठेठ वहीं जा पहुँची, जहाँ दो सदियों पहले उसके आगमन की कहानी प्रचलित थी। आज नीलगिरी पहाड़ की घाटियाँ काफी से लहलहा रही हैं।

वर्ष	पैदायश हज़ार कार्टरों में
१९२५	२७२.१
१९२८	३१७.५
१९२९	२४७.८
१९३०	३५२.०

नीचे लिखे अनुसार प्रतिवर्ष काफी विदेशों में जाती रही है:—

सन्	कार्टर	सन्	कार्टर
१९०२-३	२६९१६५	१९२४-२५	२४२०००
१९१०-११	२७२२४९	१९२५-२६	२०५०००
१९१९-२०	२७२६००	१९२६-२७	१५००००
१९२१-२२	२३५०००	१९२७-२८	२७७०००
१९२२-२३	१६९०००	१९२८-२९	१९८०००
१९२३-२४	२१८०००		

जब से संसार मे ब्राजिल की सस्ती काफी का प्रचार हुआ है, भारत के काफी के व्यापार को बड़ी हानि उठानी पड़ रही है।

पर भारत में दिन-ब-दिन काफी का प्रचार बढ़ रहा है। देखिए अंक क्या कहते हैं। संख्या कार्टरो मे है।

१९२५	२०२००	१९२९	१०५२००
१९२६	५६५००	१९३०	१०९०००

काफी की खेती में प्रतिदिन १९२९-३० में औसतन ९२५०४ मजदूर काम करते थे।

भांग, गांजा इत्यादि

भांग, गांजा इत्यादि

चाय और तम्बाकू जिस तरह आजकल की सभ्यता के अनुगामी और सेवकों की प्रिय चीजें हैं, उसी प्रकार भांग, गांजा और चरस प्राचीनता-प्रेमी व्यसनियों की प्रिय वस्तु है। आज चाय तो शहरों और कस्बों में आपको मिलेगी। पर भांग का प्रचार छोटे से छोटे देहात तक में है। यह भारतीयों का प्रिय पेय है। जहाँ-कहीं साधु-संत बैरागी और राम, कृष्ण और खासकर शंकर के मंदिर हैं, (और भारत में ये सर्वत्र हैं) वहाँ-वहाँ जरूर भाँग और गाँजे का निवास है। यह नियम इतना सत्य है, जैसा कि न्यायशास्त्र का "यत्रयत्र धूम्रस्तत्र तत्रवन्हि:" वाला प्रमेय। बल्कि मैं तो इससे भी आगे बढ़कर यह कहूँगा कि ये भाँग, गाँजे और चरस का समाज में प्रचार करनेवाले जीते-जागते प्रचारक हैं। चाय, काफी और कोको का प्रचार हमारे देश में इतनी तेजी से इसलिए बढ़ा कि वह हमारे शासको का व्यसन था। [और गुलाम तो अपने शासकों की बुरी आदतों का सब से पहले अनुकरण करते हैं, चाहे उनके गुण आवें या न आवें। गुणों का अनुकरण करने में आत्म-संयम और काफी प्रयास की जरूरत भी तो होती है। अ.र आदमी गुलाम तो तब होता है जब वह आरामतलब हो जाता है। इसलिए एक जाति की हैसियत से गुलाम राष्ट्र दुर्गणों का ही अनुकरण करता है। जिस क्षण ही वह सद्गुणों का अनुकरण या अवलम्बन करने लग जायगा हमें समझ लेना चाहिए कि उसकी गुलामी का जाना

अब नज़दीक है] पर भाँग-गाँजा तो यहीं की चीजें हैं, इनके प्रचारक तो ५६ लाख उत्साही साधु और गाँव-गाँव में मंदिर हैं। मंदिरों और साधुओं द्वारा भक्ति का प्रचार कितना होता है सो तो भगवान ही जानें। पर वे प्रायः भंगेड़ियों के अड्डे तो जरूर होते हैं। शाम-सुबह गाँव के लोग बाबाजी की धूनी पर और शहरों के सेठिया तथा गुंडे वगैरा अपने बाग़-बगीचों या शहर के बाहरवाले मन्दिरों में भांग छानने अथवा गाँजे का दम लगाने के लिए नियम और एकनिष्ठापूर्वक एकत्र होते हैं। नाना प्रकार के व्यापार, उद्यम, कला-कौशल आदि की बातें और सलाह-मशविरा करके अपने जीवन-संघर्ष को सौम्य बनाने एवं देश को लाभ पहुँचाने वाली बातें सोचने के बजाय, आज ये लाखो स्थान दुर्गुणो को बढ़ाने का काम कर रहे हैं। तीर्थ-स्थानो में तो यह बुराई और भी अधिक परिमाण में पाई जाती है। प्रत्येक घाट और मंदिर निश्चित रूप से भाँग का अड्डा होता है। ब्राह्मणो को प्रायः सिवा दान माँगने और खाने के कोई काम नही रहता ! यात्री लोग वहाँ पहुँचते ही रहते है; इनको वे मूँड़ते हैं और फिर दिन भर अपना समय इन्हीं व्यसनों मे और व्यभिचार में बरबाद करते हैं। तीर्थ-स्थानो में जानेवाले या तो भावुक लोग होते हैं या लापरवाह धनिक। भावुक-जन धर्म समझ कर इन लोगों को धन दान करते हैं और लापरवाह धनिक लोग शौक़ के लिए, मनोरंजन के लिए। जैसे चार दूसरे भिखमंगो को टुकड़ा डाल देते हैं वैसे ही इन्हे भी वे कुछ न कुछ दे ही देते हैं। ऐसे भक्त जनों को और धनिको को भी अब से सावधान हो जाना चाहिए। भक्तो को चाहिए कि वे कुपात्रो को दान न दे। और धनिको को ऐसे शौक़ और मनोरं-

जनों से दूर रहना चाहिए जो दूसरे को गिराने वाले हों। ऐसे शौक और मनोरंजन निर्दोष चीजें नही प्रत्यक्ष पाप हैं। अस्तु।

मालूम होता है भॉग हमारे देश की बहुत पुरानी चीज है। "इसका सबसे पहला उल्लेख अथर्ववेद में × मिलता है ? वेदो में सोम के साथ-साथ भाँग की भी उन पॉच पेयो में गणना की है जिनको पाप-मोचन पेय बताते हैं। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैदिक ऋषि जानते थे कि भॉग एक नशीली चीज़ है। ऋग्वेद के कौशीतकि ब्राह्मण मे भी इसका उल्लेख पाया जाता है। सुश्रुत ने इसे कफ-वर्द्धक बताया है।"

भाँग के पौदे की दो जातियाँ हैं। एक नर और दूसरी मादा। नशीले पौदे को नर (गॉजा) कहा जाता है और मामूली पौदे को मादा। पर वास्तव मे वनस्पति-शास्त्र के अनुसार यह वर्गीकरण ठीक विपरीत है। क्योकि जो नर पौदा होता है वह नशीला नहीं होता। इसलिए लोग उसे उखाड़ कर अलग कर देते है और मादा पौदा जिसमें फल और बीज नहीं होते, रहने दिया जाता है। इसीलिए शायद इस मादा पौदे को यहॉ नर कहने की चाल पड़ गई है। केवल इस पौदे का वर्गीकरण चाहे ग़लत हो, पर चीन और भारत के प्राचीन साहित्य को देखते हुए हम यह अच्छी तरह जान सकते है कि पौदों की नर मादा इस तरह दो जातियो का पश्चिम ने आविष्कार किया उससे कही, पहले से हम लोग उसे जानते थे।

× D. Watts Dictionary of the Economic Products of India.

भाग का पौदा तमाखू की ही तरह पूरा विष का पौदा है। इससे भी भाग, गाजा और चरस तीन चीजें पैदा होती है। सुश्रुत ने भांग या गांजे के पौदे का स्थावर विषों में उल्लेख किया है और इसकी जड़ में विष माना है। (सुश्रुत कल्प, २ अध्याय)

यूरोपियनो ने गाँजे और सन के पौदे को एक-जातीय माना है वे उसे Cannabis Hemp कहते हैं। परन्तु हमारे देश में गाँजा और सन का पौदा अलग-अलग माने गये है।

भाँग के पौदे का फूल गाँजा, पत्ती भाँग, और उसका गोंद चरस कहलाता है। सभी चीजे नशीली हैं। भाँग खाते हैं। उसका पेय बना करके पिया भी जाता है, भांग की माजूम भी बनती है। लोग भोजन को रंगतदार बनाने के लिए मिठाइयों में भी भांग डाल देते है।

गाँजा तमाखू की तरह पिया जाता है। भाँग से गांजे का नशा कही तीव्र होता है और गाँजे की अपेक्षा चरस बहुत ज्यादा तीव्र होता है। लोग चरस को तमाखू के साथ पीते हैं। चरस भांग की पत्तियो और फूलों पर लगा रहता है। इसके निकालने की तरकीब बड़ी अजीब होती है। आदमी को नंगे बदन या चमड़े का कोट पहनाकर भांग के खेतो में दौड़ाते हैं। तब वह चरस अपने-आप उसके बदन में लग जाता है। चरस भारत में बहुत कम पैदा होता है। भारत मे भांग के फूलो में बहुत कम मात्रा मे लगा रहता है। चरस के कारण गाँजे का (फूलो का) नशा बढ़ जाता है। भारत में तो मध्य-एशिया से चरस आता है। इसे बोखारी तथा यारकन्दी चरस कहते हैं। नेपाल में बोखारी चरस अच्छा समझा जाता है। दिल्ली प्रान्त में गढ़-

बहादुर नामक स्थान चरस की खास जगह है।

गाँजा पीने से बात की बात मे नशा आता है। आंख का रंग सुर्ख पड़ जाता है और सिर चक्कर खाने लगता है! हमारे देश में लोग भांग पीने से वैसे ही मतवाले हो जाते हैं। गांजा पीनेवालों का दिमाग़ बहुत जल्दी बिगड़ जाता है। भाँग पीने से भी चित्त की स्थिरता चली जाती है और अत्यधिक भांग पीने से आदमी पागल हो जाता है।

पहले सब लोग बिना रोक-टोक गांजे-भांग की खेती किया करते थे। परन्तु १८७६ ई० में सरकार ने फी लेने का क़ानून चलाया। गांजा तैयार करने पर सरकारी गोदाम को भेज दिया जाता है। इस कर से सरकार को बहुत फ़ायदा होता है।

गांजे भांग चरस के विषय में सरकार की नीति "हेम्पड्रग्स कमिशन" की सिफ़ारिशों पर आधार रखती है। गाँजे की खेती करने के लिए सरकार से पहले आज्ञा लेनी पड़ती है। नियत समय के बाद फसल की जाँच होती है। फसल का अन्दाज़ा लगाया जाता है। व्यापारी या किसान अपने माल को बेंच भी सकता है परन्तु बेंचने पर भी माल को तो सरकारी गोदाम मे ही रखना पड़ता है। गोदाम से माल ले जाते समय उसपर सरकार को कर देना पड़ता है। थोक और फुटकर बिक्री के लिए सरकार से आज्ञा लेनी पड़ती है।

बाहर से आनेवाली चरस पर फी मन ८०) आयात कर देना पड़ता है। चरस भी सरकारी गोदाम में ही रखनी पड़ती है। वहाँ से ले जाते समय फिर दोबारा कर देना पड़ता है। प्रायः भांग पर भी कर लिया जाता है! इन तीनों चीज़ो को

बेचने के हक़ नीलाम किये जाते हैं। इसमें भी साधारण नीति वही है जो अफीम के विषय में सरकार ने क़ायम कर रक्खी है।

सरकार तो अपनी तरफ से भांग, गांजा, चरस आदि को बहुत उपयोगी बतलाती है। हमें पता नहीं कि इस उपयोग के मानी क्या हैं? यदि वे सचमुच उपयोगी हो तो उन्हें बतौर औषधि के भले ही डाक्टर या वैद्य के द्वारा मरीज़ों को दिया जा सकता है। परन्तु देश में इतने बड़े पैमाने पर उनकी खेती करके उनके बेचने के हक़ नीलाम करना और इस तरह इन चीजों के व्यवहार को एक टके कमाने का साधन बना देना, किसी अच्छी सरकार को शोभा नहीं देता।

सन् १८६० से लेकर १९०० तक सरकार ने भांग, गांजा, वग़ैरा की आय ११ लाख से बढ़ाकर ५९ लाख तक कर ली थी।

सन् १९०१ से तफसीलवार अङ्क यो है—

वर्ष	रुपये	वर्ष	रुपये
१९०१	६१,८३,८७३	१९१३	१,३६,५९,१६३
१९०४	६८,०३,०९८	१७१७	१,४९,२४,४४८
१९०७	८८,४९,५०३	१९१८-१९	१,५९,२१,३७९
१९१०	१,०६,९५,७८९	१९२८-२९	२,५०,००,०००

परन्तु आय के साथ-साथ इन चीजो के व्यवहार मे भी निस्सन्देह वृद्धि हुई। हम पीछे शराब और अफीम के अध्याय में भी बता चुके हैं कि सरकार ने जान-बूझकर यह ग़लत नीति अख़्त्यार कर रक्खी है कि ज्यों-ज्यों कर बढ़ते जावेंगे, नशीली चीजों का व्यवहार घटता जायगा परन्तु वास्तव में ऐसा होता नही। सरकार ने भांग-गांजा आदि के विषय में निश्चित नीति नहीं रक्खी है। प्रत्येक प्रान्त में भिन्न-भिन्न कर रक्खे गये हैं

यहां तक कि एक ही प्रान्त में कहीं-कहीं भिन्न-भिन्न ज़िलों में भी अलग-अलग कर लगाये गये हैं।

मालूम होता है इस विषय में सरकार ने अपनी नीति बिलकुल व्यापाराना ढंग पर रक्खी है। "जिन चीज़ों का लोगों को बहुत भारी व्यसन है, उनपर अधिक कर लगाया गया है। हाँ यह सावधानी ज़रूर रक्खी जाती है कि कहीं आय घटने न पावे। जिन चीजों की मांग बहुत ज़्यादा नहीं होती उनपर कर कुछ कम कर दिया जाता है।" × जहां बिक्री निश्चित है वहां अगर कुछ अधिक क़ीमत बढ़ा दी जाय तो भी ग्राहक आते ही हैं। और जहां प्रतिस्पर्धा का डर रहता है, या यह ख़याल रहता है कि लोग उस चीज़ के बिना भी काम चला लेंगे, वहाँ पर व्यापारी क़ीमतें कम कर लेता है जिससे ग्राहकों को ख्वाहमख्वाह उन चीजों को ख़रीदने का प्रलोभन हो।

इस नीति का क्या फल हुआ है सो देखिए:—

भांग-गांजा-चरस की खपत

फी १०,००० लोगों में। अंक सेरों के है।

	वर्ष १९०१	वर्ष १९११-१२
मद्रास	१०.६	११.७
बम्बई	२०.	३८.५
बंगाल	३२.९	३५.१
आसाम	३९.	५२.३
युक्तप्रान्त	९३.५	६४.७
पंजाब	६०.८	६०.७
मध्यप्रदेश-बरार	२५.४	३६.७
सिंध	३३७.८	३६७.३

× The Drink & Drug Evil by Badrul Husein

युक्तप्रान्त को छोड़ सारे प्रान्तों में इन चीजों की खपत हम बढ़ी हुई देखते हैं। सन् १९११ से लेकर १९१८–१९ तक प्रत्येक प्रान्त में इस प्रकार इन मादक चीजों की खपत थी। अंक सेर के हैं:—

प्रान्त	११-१२	१६-१७	१७-१८	१८-१९
बम्बई	×	१७८०००	१५८०००	१६७०००
मद्रास	४७०००	४८०००	४७०००	४५०००
पंजाब	१२०००	× ×	११८०००	११३०००
मध्यप्रदेश बरार	५८०००	४५०००	४५०००	३९०००
आसाम	३४-००	२९०००	२३०००	२५०००
बिहार-उड़ीसा	१२५०००	९३०००	९१०००	९३०००
बंगाल	१५९०००	१०८०००	१०१०००	१०६०००

इस तरह सन् १९११–१२ में जहाँ इन मादक द्रव्यो की खपत समस्त भारत में २३५००० सेर थी वहाँ ७-८ ही वर्षों में १९१८-१९ मे वह बढ़कर दूनी से भी ज्यादा अर्थात् ५,८८,००० सेर हो गई और अब सन् १९२८-२९ के अंको से पता चलता है कि वह पूरे ६००००० सेर पर पहुँच गई है। आसाम, सिंध, पंजाब और युक्त प्रान्त इसके विशेष प्रीतिपात्र नजर आते हैं।

श्रीयुत अबदुलहुसेन अपनी The Drink and the Drug Evil in India नामक पुस्तक में लिखते हैं—

"In a word the Government is not above profitting from the sins of the people and trafficking with their weakness. If a tithe of that thoroughness which has marked the executing of the drug policy had been given to a better cause the course of the Indian History would have been different. The Drug policy has tempted the strong and demoralised the weak. It has exploited the rich and the poor and it has ruined both young and old, the strong and the infirm of all classes of creeds and races".

अर्थात् मादक पदार्थों के विषय मे सरकार की नीति ऐसी नहीं रही जैसी कि होनी चाहिए। लोगो के पापों से फायदा उठाने और उनकी कमजोरियो को अपने व्यापार के साधन बनाने में वह कोई बुराई नहीं देखती। मादक द्रव्यो के सम्बन्ध में उसने जो नीति धारण कर रक्खी है और उसपर जिस दक्षता के साथ अमल कर रही है अगर उसका दसवां हिस्सा दक्षता वह किसी अच्छे काम में बताती तो आज वह भारतवर्ष के इतिहास को ही बदल देती। सरकार की आबकारी नीति ने सच्चरित्र लोगों के सामने प्रलोभन उपस्थित किया है और कमजोर आदमियों को गिरा दिया है। उसने गरीब और अमीर सबको एक-सा लूटा और उनको धोखा दिया है और उसने सभी वर्ग, धर्म और जाति के बूढ़े और जवान तथा कमज़ोर और ताक़तवर स्त्री-पुरुषों का सर्वनाश किया है।

कोकेन

कोकेन

कोका नाम का एक पौदा होता है। उसके अन्दर अन्य द्रव्यों के साथ-साथ, कोकीन नाम का द्रव्य भी होता है। सबसे पहले सन् १८५९ में नीमन नाम के विज्ञानवेत्ता ने इसका पता लगाया था। यह एक बड़ा भयानक जहर है और इसका असर थीन, केफीन, गारेनीन तथा थ्योब्रोमीन नामक घातक विषों के समान ही होता है जो डॉ० बेनेट के मतानुसार अँतड़ियाँ, श्वांस-प्रणाली, ग्रंथि-प्रणाली और रक्त-प्रवाह-प्रणाली के ऊपर बहुत ही घातक असर डालता है।

कोका के पौदे की कुल पचास जातियाँ हैं। ये वृक्ष ऊष्ण प्रदेश में ही होते हैं। भारतवर्ष में इसकी छः जातियाँ हैं। इसका मूलस्थान पेरु बोलिविया (दक्षिण अमेरिका) है। "भारतवर्ष में अभी उसकी खेती बतौर प्रयोग के सीलोन, दक्षिण-भारत और बंगाल-आसाम के चाय-बागान में की जा रही है। कोकेन नामक अतीव मादक पदार्थ इसी के रस से बनता है। इसकी पत्तियां भी इतनी उत्तेजक होती हैं कि उनके सेवन से आदमी की नींद उड़ जाती है। पर अभी यहाँ इससे कोकेन बनाना शुरू नहीं हुआ है। इसलिए इसकी पैदायश पर कोई रोक-टोक नहीं है।

भारतवर्ष में कोकेन का व्यापार दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। सन् १९०३ में बम्बई की सरकार ने इसे पहले पहल अपने मादक द्रव्यों की फेहरिस्त में शुमार किया। और प्रान्तों में भी अब तो इसकी बिक्री और व्यवहार पर नियंत्रण है; परन्तु यों

छिपे तौर पर इसका प्रचार भारत में बहुत भारी परिमाण मे है। इसके भक्त-जन ऊँचे वर्ग के लोगों में से ही प्रायः होते है जो सामाजिक बन्धनो के कारण शराब या अफीम का खुले तौर पर व्यवहार नही कर सकते। ब्रह्मदेश में तो स्कूल के लड़कों तक में यह बुराई फैल गई है। भारत में वेश्याओं के यहाँ इसकी अधिक खपत है। व्यभिचारी लोग क्षणिक उत्तेजना के लिए इसका उपयोग अक्सर करते हैं।

भारत मे कोकेन पैदा नही होती। कहा जाता है कि यहाँ वह प्रायः जर्मनी और जापान से आती है। औषधीय उपयोग के लिए इसकी आयात नियमित है। परन्तु व्यसनी लोग और धन के लोभी व्यापारी उसे चुरा-चुराकर मँगाते हैं। यद्यपि क़ानून से इसकी बिक्री की मुमानियत है तथापि बहुत भारी परिमाण में यह भारत में खपती है। बम्बई, कराची, कलकत्ता, मद्रास मारमागोआ और पांडीचेरी की राह से यह छिपे-छिपे कभी अखबारों की पार्सल में तो कभी संदूको मे, कभी कपड़ो के गट्ठरों मे तो कभी किताबो के बक्सो में, आती है, और चुपचाप भारत के प्रायः तमाम बड़े-बड़े शहरों मे फैल जाती है। देहली लखनऊ, मेरठ, लाहौर, मुलतान, सूरत, अहमदाबाद इसके ख़ास अड्डे बताये जाते हैं।

इस समय इंग्लैंड मे इसकी क़ीमत ३० से लेकर चालीस शिलिंग फी औंस तक है। भारत मे अधिकतर दवा बेचनेवालो के यहाँ वह २७ से लेकर ३१ रुपये फी औंस के भाव से बिकती है। परन्तु मौक़ा पड़ने पर व्यसनी लोग एक-एक औंस के ४००) रुपये तक दे कर ले जाते हैं।

प्रत्येक प्रान्त में इसके व्यवहार पर भिन्न-भिन्न क़ानून हैं। बम्बई में इसके विषय में यों प्रतिबन्ध है। "वही आदमी विदेशों से कोकेन मँगा सकता है जिसने परवाना हासिल कर लिया है। डाक से कोकेन मंगाना बिलकुल मना है। कलेक्टर की आज्ञा बिना कोकेन की कोई बिक्री नहीं कर सकता। पास रखना, देश से बाहर भेजना तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना भी मना है। डॉक्टरी नुसखा मिलने पर भी मामूली आदमी ६ ग्रेन से अधिक कोकेन अपने पास नहीं रख सकता और सुशिक्षाप्राप्त डॉक्टर २० ग्रेन से अधिक नहीं। इन नियमों के भङ्ग करनेवालों को अधिक से अधिक एक वर्ष की क़ैद या २००० रुपये तक का दण्ड हो सकता है। बार-बार यही अपराध करनेवाले की सजा बढ़ती जाती है। कोकेन के व्यौपारी को मकान किराये पर देनेवाले को भी सजा दी जाती है।"

इस भयंकर विष की आयात और खपत के अंक नहीं मिल सके।

उपसंहार

अब जरा हिसाब लगालें कि हम इन बुराइयों के पीछे कितनी बलि चढ़ाते हैं। भारतवर्ष मे प्रतिवर्ष व्यसनो पर हम लगभग इस तरह रुपये बरबाद करते हैं—

(प्रत्यक्ष करों-द्वारा)

देशी शराब	१७००००००००
विदेशी शराब	३५०००००००
अफीम	२००००००००
भांग-गांजा आदि	२५०००००००
	२५००००००००

लगभग २५ करोड़ रुपये हम सिर्फ करो द्वारा देते हैं। पर जनता की वास्तविक हानि तो इससे कई गुना अधिक है। शराबी या नशावाज इन करों के अलावा इनके बनाने पैदा करने में लानेवाले श्रम, साधन, देखभाल, और दूकानदार का नफा इतनी चीजें और अधिक देता है। इसलिए विशेषज्ञो ने अनुमान लगाया है कि केवल मादक द्रव्यों के पीछे भारत १००,००,००,००० से ऊपर स्वाहा कर देता है।

शराब या दूसरा नशा करने पर वेहोशी या नशे की हालत मे उसकी जो अन्य आर्थिक हानि होती है— घर धुल जाता है उसका यहाँ हिसाव नही लगाया है।

इसके अतिरिक्त लगभग

७५,००,००,०००	तमाखू पर
५,००,००,०००	चाय में
१,००,००,०००	काफी में
८१,००,००,०००	
१००,००,००,०००	शराब गांजा, भांग, अफीम
१८१,००,००,०००	कोकेन और जूए में जो रुपये नष्ट होते हैं उसका हिसाब नहीं है।

लगभग सवादो अरब रुपये हम केवल व्यसनों में बरबाद कर देते हैं। (अधिकांश चाय बाहर जाती है। उसकी पैदायश और व्यापार में जो धन लगता है वह भी भारत के लिए तो प्रत्यक्ष हानि ही है। इसलिए अगर उसे भी जोड़ लिया जाय तो सारी हानि सवादो अरब के लगभग जा पहुँचती है।)

दूसरी जबर्दस्त बुराई है व्यभिचार। कौन ठीक-ठीक अनुमान लगा सकता है कि यह राक्षस कितनों के गृह-सौख्य को नष्ट करता होगा, कितनों को महाभयंकर गुप्त-रोगों का शिकार बनाता होगा, और उसके कारण प्रतिवर्ष कितने बालकों की हत्या होती होगी!

शराब आदि मादक द्रव्यों की पूर्ण बन्दी की आशा वर्तमान सरकार से करना मूर्खता होगी। क्योंकि एक तो वह उसकी आय का एक प्रधान साधन है, और दूसरे इस देश के बारे में उसे इतनी आत्मीयता नहीं हो सकती जितनी स्वराज्य-सरकार को हो सकती है। जिन लोगों को सरकार से इस विषय में आशाएँ थीं उन सबकी आँखें उन स्वयंसेवकों की गिरफ्तारियो और उन

पर किये गये लाठी चार्जों ने खोल दीं जो शराब की दूकानों के सामने खड़े रहकर शराबियों को समझाते थे और उनके सामने नम्रतापूर्वक लेट-लेटकर उन्हें रोकते थे। इसके लिए तो प्रजा की तरफ से ही पूरा प्रयत्न होना चाहिए तभी काम चलेगा।

लोक-सेवा का यह विशाल क्षेत्र उन सार्वजनिक सेवकों और सार्वजनिक कल्याण की भावना रखनेवालो को निमन्त्रित कर रहा है। वास्तव मे समाज के अन्दर फैली हुई बुराइयों को खानगी प्रयत्नो से दूर करने के लिए ही दान-संस्था का जन्म हुआ है। परन्तु हमारे देश में कई स्थानों पर इन्ही को अमर बनाने के लिए दानों का दुरुपयोग हो रहा है। व्यसनों और व्यभिचार से बचने के लिए बच्चो के चित्त पर शुरू से अच्छा संस्कार डालना चाहिए। पाठशालाओ में उनकी शिक्षा ही इस ढंग से होनी चाहिए, जिससे इन बातों के प्रति उनके दिल मे पूरी घृणा हो जाय। पुराणो का और कथाओ का उपयोग सिर्फ पुरानी कहानियाँ सुनाने तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। वे कहानियाँ या पुराण ऐसे हो जिससे जनता का जीवन ऊंचा उठे। नाटक, सिनेमा आदि लोकशिक्षण के लिए बड़े उपयोगी है। इनसे भी काम लिया जाना चाहिए। पर सवाल यह उठता है कि इतना धन कहां से लावे ? इसका उत्तर है अपनी दान-संस्था को शुद्ध करो। चक्कियो में केसर-कस्तूरी पीसकर देव-प्रतिमा को उसका दिन में छः बार लेप करने, ४ बार भोग लगाने या नौ बार वस्त्र बदलने से परमात्मा खुश नहीं होंगे। यह अंध भक्ति है। परमात्मा के असंख्य पुत्रों को नारकीय जीवन व्यतीत करते हुए छोड़कर यदि हम उसके दरबार में उत्तमोत्तम

भेंट भी लेकर उपस्थित होंगे तो वे स्वीकृत नहीं हो सकतीं। दानों का उपयोग इस व्यथित मानवता—अज्ञान मे पड़ी हुई मानवता को उबारने के लिए हो। पश्चिम के अन्य देशों की भाँति इनके लोकोपकारक ट्रस्ट बन जाने चाहिए जो जनता की आवश्यकताओं को देखकर अपनी शक्ति और समय के अनुसार पाठशालाएँ, व्यायाम-शालाएँ, दुग्ध-शालाएँ, नाटक कम्पनियाँ, सीनेमा की फिल्म कम्पनियाँ आदि खोलकर स्वावलम्बन के सिद्धान्त पर लोक-शिक्षा का काम करें।

हमारे देश के धनिक एवं पढ़े-लिखों के अन्दर जिस दिन अपनी जिम्मेवारी का यह भाव जागृत हो जावेगा उस दिन भारतवर्ष का सारा रूप ही बदल जायगा।

भारत में

व्यसन और व्यभिचार

व्यभिचार

कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे —माघ

पापियों की कथाएँ भी बड़ी अकल्याणकर होती हैं।

Vice is a monster of so frightful mien
As, to be hated. needs but to be seen
Yet seen too oft, familier with her face,
We first endure, then pity, then embrace

Alexander Pope

पाप, भयानक शकलवाला एक ऐसा दैत्य है कि इससे घृणा करने के लिए इसकी सूरत-भर देख लेना काफी है। लेकिन बार-बार देखने से आदमी उसकी घृणित सूरत से कुछ अभ्यस्त-सा हो जाता है। अभ्यस्त होने के बाद हृदय में उसके प्रति सहन-शीलता बढ़ती है, सहन-शीलता बढ़ी नहीं कि आदमी को उस पर दया आ जाती है। जहाँ एक बार दया आई नहीं कि मनुष्य ने उसका आलिंगन किया नहीं। अतः ईश्वर न करे कि इस राक्षस के कभी दर्शन हो!

[१]

प्रास्ताविक

अब मैं एक ऐसे विषय पर कुछ लिखने का साहस कर रहा हूँ जो अत्यन्त नाजुक है। इस विषय पर लिखते हुए मेरी लेखनी काँप रही है। हर एक बात हर एक मनुष्य के मुख से शोभा नहीं देती। प्रत्येक विषय पर कुछ कहने के लिए अधिकार की जरूरत है, अनुभव की आवश्यकता है। मेरे पास न तो अनुभव है और न अध्ययन से प्राप्त होनेवाला अधिकार। पर हमारे समाज में यह भीषण पाप जिस तरह फैल रहा है, उसे देखकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। अपनी आँखों के सामने भयंकर से भयंकर प्रकरणों को देखकर चुपचाप बैठे रहना मेरे लिए असम्भव हो रहा है। फिर भी परमात्मा की दया से मुझे ऐसे सत्संग का लाभ प्राप्त हुआ है, जिससे समाज के पूर्ण पतन की कहानी, मैं समझता हूँ, मेरे कानों तक नहीं पहुँच पाई है। पर मै यह जरूर कहूँगा कि जो-कुछ भी मैंने सुना है या देखा है, वह मेरे हृदय को दहला देने के लिए, मेरे विचारो में क्रान्ति कर देने के लिए काफी था। हवा किस ओर बह रही है यह जान लेने के लिए दूर से किसी पेड़ की पत्तियों को या तिनको और धूल को देख लेना भी काफी है। उसमें स्वयं उड़ जाने की आवश्यकता नही। मुझे इस विषय में संदेह नहीं है कि समाज की दशा क्या है। हाँ, समाज को उसकी

भयङ्कर अवस्था का ज्ञान कराके मैं सचेत कर सकूंगा या नहीं इसमें मुझे जरूर संदेह है। इसलिए ऐसे काम के लिए जरूरत थी किसी बुजुर्ग अनुभवी वैद्य या डाक्टर की, जिन्होंने इस विषय का शास्त्रीय ढंग से अध्ययन किया हो। जिन्हें अपने दैनिक अनुभव से यह ज्ञात हो कि समाज में यह बुराई कितनी फैली हुई है, उसमे मुख्य कारण क्या है, तथा उसे कैसे दूर किया जा सकता है। बड़ा अच्छा होता अगर कोई ऐसे सज्जन इस विषय पर लेखनी उठाते और हमारा उपकार करते। सौभाग्य वश हमारे देश में एक-से-एक प्रतिभाशाली वैद्य और डाक्टर भी हैं। परन्तु दुर्भाग्य की बात तो यह है कि उन्हे अपने व्यवसाय से ही अवकाश नही मिलता। जिसे भोजन करने और सोने को भी समय न मिले वह बेचारा हजार इच्छा होने पर भी पुस्तक-लेखन-जैसा शांति-युक्त काम कैसे कर सकता है?

दूसरे वैद्य और डाक्टर हैं उनमे या तो ऐसा उत्साह ही नही या वे यह आवश्यक ही नहीं समझते कि इन विषयो का ज्ञान जनता को कराया जाय।

हाँ, कहने-भर को हिन्दी में इस विषय पर कुछ साहित्य प्रकाशित हुआ है। एक-दो मासिक पत्र भी स्त्री-पुरुषों से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों पर समय-समय पर कुछ लिखते रहते हैं और व्यभिचार से जनता को सावधान करने का कुछ प्रयत्न करते है। परन्तु उनका ढंग ऐसा विचित्र है कि कुछ समझ मे नहीं आता कि उनका वास्तविक उद्देश्य क्या है? जिन बातो से जनता को बचाना चाहिए उन्हें वे ऐसे ढंग से उसके सामने रखते हैं कि इन पापों से सावधान होकर दूर रहने के बजाय लोग पापों की

तरफ ललचाने लगते हैं। जिन पापों का पाठकों को खयाल भी नही होता उनके नये-नये संस्करण अनजान पाठक जान जाते हैं और जानकर उनमे लुभा जाते हैं। कुछ लोगों ने समाज का असली स्वरूप प्रकट करने के उद्देश से इन पाप-कथाओं को प्रकाशित करना शुरू किया है। मेरे ख्याल से समाज-सुधार का यह तरीका बड़ा ही खतरनाक है। पर मै देखता हूँ कि मूढ़ जनता उस प्रवाह में बराबर बही जा रही है। जीवन को सात्विक और शुद्ध बनानेवाले साहित्य को पढ़ने का कष्ट बहुत कम लोग उठाते हैं, और ऐसी पतित अभिरुचि उत्पन्न करनेवाली चीजो की तरफ वे बड़ी बुरी तरह आकर्षित होते रहते हैं। इसमें जनता का उतना दोष नही जितना लोक-मत को बनानेवाले—उसका नेतृत्व करने वाले साहित्य-सेवियो का है। क्या वे अपनी महान् जिम्मेवारी को समझेंगे? आजकल समाज मे जो विषय-लोलुपता दिखाई देती है—विद्यार्थियों में जो बुरी तरह से पापाचार फैला हुआ है, उसका कारण मुझे बहुत बड़ी हद तक हमारी यह असावधानी ही मालूम होती है! और भी कारण हैं, जो हमारे भावी राष्ट्र के नागरिकों को पतन की ओर ले जा रहे हैं। परन्तु साहित्य सुविचार का स्रोत है। लोक-मत पर उसका बहुत भारी प्रभाव पड़ता है। इसलिए उसका पवित्र होना बहुत जरूरी है। साहित्य-क्षेत्र इतना गन्दा हो जाने पर भी लोगों की अभी बहुत-कुछ श्रद्धा उस पर बनी हुई है। अतः वह अच्छे उदाहरण सुरुचि को बढ़ानेवाली अच्छी चीजें जनता के सामने रक्खेगा तो समाज की अन्य अनेक बुराइयों को भी हम शनैः-शनैः दूर कर सकेंगे। पर आज तो हमारा साहित्य अनेक स्थान पर

कुपथ्य का काम कर रहा है। सद्भाव-पूर्वक और जनता को व्यभिचार से बचाने के शुद्ध हेतु से लिखे हुए साहित्य में भी ऐसे कई स्थान हैं जिनके द्वारा व्यभिचार घटने के बजाय बढ़ने ही की सम्भावना है। यह सब देखते हुए यदि इस विषय पर कुछ लिखते समय अपनी जिम्मेवारी का भान मुझे दबाये तो आश्चर्य नही। मै नही कह सकता कि अपने आपको इस दोष से कैसे बचा सकूंगा। मै प्रयत्न करता हूं। पाठक अपने दिल को हाथ मे लेकर अपनी तथा अपने समाज की कमजोरियो की गहराई को देखे और उससे ऊपर उठने की कोशिश करें। अपने आपको और अपने बालकों को इन बुराइयों से बचाने के खयाल को मद्दे नजर रखकर ही वे इस हिस्से को पढ़ें।

[२]

एकान्त का पाप

पराधीनता परमात्मा का निष्कारण शाप नहीं है। मानवजाति के कर्म-चक्र में उसका एक निश्चित स्थान है। उसकी पूर्व-स्थिति धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक दुर्बलता होती है। यदि आक्रामक राष्ट्र असाधारणतया शक्तिशाली न हो तो कोई नीरोग राष्ट्र पराधीन नहीं बनाया जा सकता। भारतवर्ष की वर्तमान दुरवस्था केवल पराधीनता का प्रसाद नही है। पहले वह पतित हुआ, असंगठित हुआ तभी विदेशियों की यहाँ बन आई। पहले उसने अपनी शक्ति को गंदे क्षेत्रों में बहाकर दुर्बल होने का पाप किया, तभी पराधीनता रूपी दण्ड परमात्मा ने उसे दिया। अब अगर उसे फिर उठना है तो वह अपनी बुराइयों को दूर करे, नीरोग हो जावे। दुर्बलता अपने आप भाग जायगी। ज्योंही उसके शरीर में नवीन खून दौड़ने लगेगा, पराधीनता को इसकी ओर आँख उठाकर देखने की हिम्मत तक न होगी।

हम नैतिक दृष्टि से अपने आपको उन्नत मानते हैं। परन्तु केवल ऊँचा नैतिक साहित्य होने-भर से कोई देश उन्नत नहीं कहा जा सकता। जबतक हम उस नीति को आचार में परिणत नहीं करेंगे तबतक वह व्यर्थ है। वह धनी कैसा जिसे

अपने धन का उपयोग करने की स्वतंत्रता नहीं है—शक्ति नहीं है ?

व्यभिचार एक ऐसी सामाजिक बुराई है जो प्रत्येक राष्ट्र के लिए अत्यन्त हानिकर है। फिर भारत की इस विशिष्ट परिस्थिति में यह बनिस्बत अन्य राष्ट्रों के उसके लिए अधिक कष्ट-कर है। परन्तु स्वयं इस बुराई के परिणाम ही इतने भयंकर हैं कि उन्हें देखकर दिल थर्रा जाता है।

संसार में और हमारे देश में यह अनेक रूपों में फैली हुई है। स्त्री-पुरुषों के जीवन-सत्व को नष्ट करने के जितने भी तरीक़े हैं, सभी ऐकान्तिक पाप हैं। और चूंकि *इस जीवन-सत्व का दुरुपयोग करना प्रकृति और परमात्मा के प्रति अपराध है, मनुष्य को इस पाप के फलस्वरूप कड़ा से कड़ा दण्ड भी प्रकृति देती है।* मनुष्य इस संसार की सरकारों के दण्ड से भले ही एक-आध बार या पूरी तरह बच जाय परन्तु प्रकृति बड़ी न्याय-कठोर है। वह उसे कदापि नहीं छोड़ती।

और क्या आप को पता है कि हमारे समाज मे यह पाप किस कदर फैला हुआ है? स्त्रियों ने अपनी तपस्या से पाति-व्रत को तो जीवित रक्खा है। परन्तु एक पत्नी-व्रत शब्द तो केवल साहित्य में ही रह गया है। यदि दो-चार मित्रों का गुट कहीं इकट्ठा होता है, तब जरा इस बात पर ध्यान दीजिए कि किस प्रकार के विनोद का रस सभी अच्छी तरह ले सकते हैं। किस विषय पर बात-चीत छिड़ते ही उनके हृदय में गुदगुदी होने लगती है। वहाँ आपको समाज की नीति-शीलता का पता

लग जायगा। जिन बातों की कल्पना-मात्र से साधारण-तया स्त्रियो का शरीर रोमांचित हो जाता है, घृणा से हृदय काँप उठता है, और दिल दहल जाता है उन्ही का उच्चारण पुरुष अपने इष्ट-मित्रों में एक दूसरे के प्रति करने में तनिक भी नहीं शरमाते बल्कि आनन्द मानते हैं और उसी विनोद पर सब से अधिक कहकहा उठता है।

यह बुराई समाज की, राष्ट्र की, हमारे गार्हस्थ्य जीवन की, और भारत के उज्जवल भविष्य की जड़ खोखली कर रही है; वह हमारे सुख-स्रोत को सुखा रही है, हमारे हरे-भरे जीवनोद्यान को वीरान बनाने जा रही है।

वह अब इस दर्जे तक पहुँच चुकी है कि उसकी उपेक्षा करना, उसकी ओर ध्यान न देना हमारा महान अपराध होगा। पहले पुरुषो और विद्यार्थियों मे फैली हुई बुराई को हो लीजिए।

हमारे बच्चे, जो आज १०, १५ या २० वर्ष के हैं, कल ही राष्ट्र के नागरिक बनेंगे। उनके चरित्र का एकीकरण, उनके बल का योग, उनकी तेजस्विता की मीज़ान, राष्ट्र-समस्त का चारित्र्य, बल और तेजस्विता होगा। उनके निम्मोण मे हम जितना ध्यान देंगे, उतना ही हम अपने देश के भावी निर्माण में सहायक होंगे।

कभी आपने देखा है कि पाठशालाओ, हाईस्कूलो, या कालेजों के दिवालों पर लिखे हुए कुवाक्यों से लड़को के पारस्परिक सम्बन्ध पर क्या प्रकाश पड़ता है ?

व्यापार, सुधार तथा सभ्यता के केन्द्र माने जानेवाले बड़े-बड़े शहरों में घूमते हुए वहाँ की सफेद, पुती हुई दीवालों पर लखे हुए अपशब्दो को आपने कभी पढ़ा है ?

क्या आप किसी प्रसिद्ध वैद्य या डाक्टर के मित्र हैं ? उनके यहाँ बिकनेवाले नपुंसकत्वारितैल, तिला या घृत के ग्राहकों की सूची की कभी तलाश की है ? प्रतिदिन हजारों की संख्या में बिकनेवाले अखबारों में नामर्दी की दवा आदि के विज्ञापन आपने पढ़े हैं ?

बड़े-बड़े शहरों के चौराहो पर खड़े रहकर अपनी जड़ी बूटी और 'अव्यर्थ' दवाइयो की दूकान फैलाकर, धन्वन्तरि अथवा लुक़मान हकीम की तरह नपुंसकता को दूर करने का दावा करनेवाले धूर्त और बदमाश हकीम तथा वैद्यों की उल्टी-सीधी बातो मे आकर फँसे हुए भोले भाले युवकों से आप कभी मिले हैं ?

दूर जाने की जरूरत नहीं, आपने कभी हाईस्कूलो मे—नही, प्राथमिक पाठशालाओं मे जाकर भी अपनी आँखो यह देखा है कि आपका लड़का, भाई या भतीजा, कैसे वायु-मंडल में पढ़ता है ? वहाँ के लड़के—उसके साथी आपस में कैसे गाली-गलौज करते है ? कभी आपको यह जानने की इच्छा भी हुई है कि आपका बच्चा अपना समय किस तरह व्यतीत करता है, एकान्त में क्या करता है ? कभी आपके दिल में यह सवाल भी खड़ा हुआ है कि अच्छा खाना मिलने पर भी तथा अविवाहित होने पर भी वह इतना दुर्बल क्यो है ? वह सूखता क्यो जा रहा है, उसका चेहरा, जिसे इस अवस्था में खिले हुए कमल को भी लज्जित करना चाहिए, इतना निस्तेज और मलिन क्यो है ? उसकी स्मरण-शक्ति इस तरह नष्ट-सी क्यो होती जा रही है ? ये सब वही लक्षण हैं जो उस भयंकर बीमारी को प्रगट करते

हैं ? ये वे लक्षण हैं जो हमारी घातक लापरवाही को प्रकट करते हैं ?

हम अपने बच्चे को पाठशाला मे भेजकर यों निश्चिन्त हो जाते हैं मानो कृतार्थ हो गये; बच्चा यदि इम्तिहान मे पास हो गया तब तो हमें वह धन्यता मालूम होती है, मानो सभी पुरखों को अनायास ही स्वर्ग प्राप्त हो गया। प्रत्येक गृहस्थ अपने बच्चे को मुहब्बत और प्यार करता है, उसकी प्रत्येक हठ को पूरी करता है उसके पहनने के लिए नित्य नये सूट-बूट खरीदने में कभी देरी या ग़फ़लत नहीं होती। किन्तु क्या यही सच्चा प्यार है, यही सच्चा दुलार है, यही सच्ची मुहब्बत है ?

अपनी सन्तति के लिए यदि मनुष्य के दिल मे सच्चा प्यार होगा तो वह क्या करेगा ? वह उसके शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ उसके मानसिक स्वास्थ्य की भी चिन्ता रक्खेगा, बारीकी से इस बात की ओर भी ध्यान देगा कि उसके विचार कैसे हैं ? उसे कैसी कहानियाँ अधिक प्रिय हैं। कैसे बच्चो मे खेलना उसे ज्यादा पसंद है। अपने बच्चे को सच्चा प्यार करनेवाला पालक या पिता उसकी बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ उसके नैतिक सुधार पर भी सूक्ष्म दृष्टि रक्खेगा। उसके लिए बच्चे का केवल इम्तिहानों में पास हो जाना काफी न होगा। वह अपने बच्चे की पढ़ाई को, उसकी बौद्धिक प्रगति को, सचाई, सदाचार, ईमानदारी, श्रद्धा और विवेक की कसौटी पर भी कसेगा। वह अपने बच्चे के लौकिक और तात्कालिक अभ्युदय के साथ-साथ उसके शाश्वत कल्याण की भी चिंता करेगा। वह यह जरूर चाहेगा कि उसका पुत्र प्रत्येक सभा में प्रथम पंक्ति मे बैठने योग्य हो,

वाद-विवाद और शास्त्रार्थ में अपने प्रतिपक्षी पर विजय प्राप्त करे, कुश्ती और मल्ल-विद्या में अपने से भिड़नेवाले को परास्त कर दे। किन्तु वह अपने लड़के की प्रगति, वैभव और उन्नति से सच्चे दिल से तभी प्रसन्न होगा जब वह उसके हृदय को भगवद्भक्ति के अमर दीप के प्रकाश से आलोकित देखेगा।

अब हम सोचें कि इस कर्तव्य को हम कहाँ तक पूर्ण कर रहे हैं। हमें इस बात की तो चिन्ता होती है कि बच्चा कहीं दुबला न हो जाय, कहीं बीमार न हो जाय, कहीं वह अपने इम्तिहान में "फेल" न हो जाय। परन्तु हम इस बात की ओर कितना ध्यान देते है कि वह सदाचार से पतित न हो, वह बुरे लड़कों की सोहबत में बिगड़ न जाय?

आज हजारो नहीं, लाखों लड़के इस तरह बुरी सोहबत में पड़कर बिगड़ रहे है। किन्तु हमें अपने व्यापार-व्यवसाय या नौकरी से इतना समय कहाँ मिलता है जो हम उनपर कुछ ध्यान दे सके। प्रत्येक पाठशाला, हाईस्कूल, कॉलेज या छात्रालय इन बुराइयों के केन्द्र बने हुए हैं। देश की प्रतिष्ठित तथा पवित्र से पवित्र संस्थाएँ तक इस बुराई से नहीं बची हैं। वीर्य-नाश और सृष्टि-विरुद्ध-कर्म के ये अड्डे-से हो रहे हैं! हमारे बच्चे या भाई अपने जीवन-रस को गन्दी नालियों में बहा रहे हैं और हम लापरवाह हैं! ये आनन्दोत्साह के लहलहाते हुए पौदे कमल के जैसे चेहरो को तथा स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट शरीरों को लेकर इन सरस्वती-मंदिरों मे भगवती शारदा की आराधना करने के लिए जाते हैं और अपने यौवन, तेज, स्वास्थ्य और इनके साथ-साथ पौरुष तथा स्वाभिमान को भी खोकर, कायर-हृदय बनकर, जीवन-

संग्राम में उतरते हैं! यही हमारे वे बालक, हमारी आँखों के तारे, हमारे जीवन के प्रदीप, हमारी वृद्धावस्था के सहारे, हमारे भावी-राष्ट्र के निर्माता हैं। हमारी आशा-लता के अवलम्ब, इन बच्चों की, कुल के उजियारों की, यह दशा देखकर किन माता-पिता या भाई का दिल टूक-टूक न होगा ?

भले ही आप कल ही से यह निश्चय क्यो न कर लीजिए कि लड़का बी० ए० पास न हो लेगा तबतक इसकी शादी न करेंगे। भले ही परमात्मा की दया से हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की जटिल समस्या कल ही सुलझ जाय, चरखे और खद्दर का मन-माना प्रचार कर हम अपने देश की आर्थिक स्वाधीनता को भी आज ही प्राप्त करलें और अन्ततः किसी योगी-महात्मा के तपस्या बल से आज ही एक पके फल की तरह आकाश से हमारे हाथो मे स्वराज्य आ जाय, किन्तु जबतक हमारी और आपकी इस लापरवाही से फैली हुई बुराई के कारण देश के नवयुवक अपने वीर्य का इस तरह नाश करते रहेंगे तब तक इस वीर-भूमि मे भी वास्तविक चैतन्य, सच्ची शूरता, और असली पौरुष का हमे दर्शन नही होगा और इनके बिना स्वराज्य क्या, प्रत्यक्ष मोक्ष का भी (यदि असंभव बात हो भी जाय तो) क्या मूल्य है ?

तब इस बुराई को कैसे दूर करें ? इसके दूर करने के लिए इसके कारणों को जॉच लेना जरूरी है। इसके उत्पन्न होने या फैलने के कारणों को मिटाते ही यह अपने आप नष्ट हो जायगी।

जहाँ तक मेरा ख़याल है इसके पाँच कारण हैं:—

(१) घर का गन्दा या बुरा वायुमण्डल

(२) बुरी सोहबत, कुसंगति, नौकरों की संगति।

(३) दुश्चरित्र पाठक और छात्रालयों के संचालक
(४) सिनेमा, नाटक, इत्यादि
(५) अश्लील शब्द प्रयोग—भाषा, समाज

अब इन मे से प्रत्येक पर कुछ विचार करे

(१) जब मै पहले कारण पर विचार करने लगता हूँ, तब तो मुझे हमारे गार्हस्थ्य जीवन का सारा वायु-मण्डल ही विकार-पूर्ण दिखाई देता है। विकार के वश होना मनुष्य के लिए लज्जा की बात होनी चाहिए। किन्तु ऐसे अवसरो को हमने उत्सवों का गौरव दे रक्खा है। घर में ऋतु-शान्ति, गर्भादान इत्यदि अवसर उत्सव के दिन माने जाते हैं। ब्रह्मचारी, अविवाहित तथा विधुर विधवा लडके-लडकियो को और स्त्री-पुरुषो को हम इन उत्सवो के अर्थ और प्रभाव से कैसे अलग रख सकते हैं? इनका अवलोकन और उनको समाज द्वारा प्रदान किया हुआ गौरव ही इनकी ओर उन व्यक्तियों का ध्यान आर्षित करता है, और हृदय के अन्तस्तल में छिपी एक विकाराग्नि को जागृत करता है।

नव-विवाहिता युवक-युवतियों से उनके सगे-सम्बन्धी कई प्रकार के चुभते हुए, गुदगुदी उत्पन्न करनेवाले मजाक करते है। समाज में इन बातों का विशेष ध्यान नही रक्खा जाता कि यह मजाक किनके सामने किये जा रहे हैं।

दम्पतियों के सोने के कमरे तथा उनके पारस्परिक व्यवहार में अक्सर आवश्यक सावधानी नहीं रक्खी जाती। कितने ही

माता-पिताओं तथा चाचा या भाइयों को यही विवेक नहीं होता कि किसके सामने कैसी बातें करें। अपनी मित्र-मंडली में बैठकर बच्चों के होते हुए भी वे ऐसी ऐसी बेहूदी और मूर्खता-पूर्ण बातें कह जाते हैं कि जिसका उन्हें ख़याल भी नही होता।

कई स्त्री-पुरुष तो अपने विकारों के इतने गुलाम होते है कि उन्हे न दिन का ख़याल होता है न रात का, न घर का न बाहर का। बच्चों की उपस्थिति तो उनके लिए कोई चीज़ ही नहीं है। अपनी बेवकूफ़ी के इन पापी क्षणों ही में हम अपने बच्चों के दिलों पर घातक कुसंस्कार अनजान मे डाल देते हैं। परन्तु बच्चों पर उनके जन्म के पूर्व माता-पिता का जैसा आचरण होता है उसका बड़ा ज़बर्दस्त असर पड़ता है। डॉक्टर कॉवेन लिखते हैं:—

The Husband and wife in their life of lust and licentiousness, especially during the antenatal life of the child, endow in full measure the quality of abnormal and perverted amative desires in the nature of the child, the child on arriving at five, eight or ten years of age adopts as naturally as it would on the observance of any other transmitted quality, the exercise of the perverted amativeness by the only means known to it that of self-abuse. Especially will it be prompt in adopting this foul and sickening habit if its father—in connection with the exercise of licentiousness during the child's antenatal life—has at any time of his life practiced self-abuse

भाव यह है कि बालक के इस संसार में आने के पहले उसके माता-पिता के आचरणों के संस्कार उसपर जरूर पड़ते रहते हैं। ऐसे माता-पिता से जन्म पानेवाले बालक में स्वभावतः विकार अधिक होता है और बड़ा होने पर इस विकार-वशता के कारण वह वीर्यनाश की इस घृणित आदत का शिकार बन जाता है। और यदि यह दुर्गुण अपने जीवन में किसी समय खुद पिता ही में रहा है, तब तो लड़का अवश्य ही इस पाप का शिकार होगा।

(२) किन्तु कितने ही लोग तो बड़े कुलीन होते हैं। उनके यहाँ इन बातों की ओर बड़ा ध्यान दिया जाता है। पर ऐसे बड़े और कुलीन घरों में भी यह बुराई घुस गई है। इसका कारण क्या हो सकता है ?

ऐसे लोगों के घर पर तो बच्चो के दिलों पर काफी नियन्त्रण होता है किन्तु वे खराब लड़को से तो नहीं बच सकते। वे जिन लड़कों के साथ खेलते-कूदते हैं, जिनके साथ वर्ग में बैठकर पढ़ते हैं उन्हीं में इस बुराई के कीटाणु फैले हुए हैं। *विकार एक मोहक राक्षस है, और मनुष्य स्खलन-शील प्राणी है। और कुछ नहीं तो केवल मनोविनोद ही के लिए, कौतूहल के लिए, वे इस भीषण बुराई के शिकार बनते जाते हैं।* दबंग और भीरु किन्तु खूबसूरत लड़कों की जोड़ हो जाती है और मध्यम-वर्ग के लड़के जो न भीरु हैं, न दबंग, जो सभ्य बने रहना चाहते हैं, वीर्य-नाश के तीसरे उपाय का अवलम्बन करते हैं।

हमारे समाज में इन मासूम बच्चों का जीवन-नाश करनेवाला एक वर्ग और है। वह नौकरी पेशा और व्यापारी वर्ग में

से छूट कर, पढ़े-लिखे और भले आदमी दिखाई देने वाले लोगों का एक दल है। इनके जीवन बचपन में स्वयं नष्ट हो चुके होते हैं। अतः बड़े होकर ये इन बच्चों का जीवन भी उसी तरह बिगाड़ते हैं, जैसा कि इनका अपना बिगड़ चुका है। इन्हे वैसे चाहिए तो यह कि आप ठोकर खाकर गिर जाने के बाद दूसरों को उससे बचावें परन्तु बचाना तो दूर, ये तो उल्टे उसी नीच-कर्म के प्रचारक बनते है। ये लोग भोले-भाले निर्दोष और ना-समझ बच्चों को पान, सिगरेट, रबड़ी, मलाई तथा चाय आदि खिला-खिलाकर, मेले तमाशो तथा बाग़-बगीचो में सैर-सपाटे के लिए ले जाकर फुसलाते है और खुद आप तो पाप के गड्ढे मे गिरते ही हैं परन्तु इन होनहार भोले-भाले बच्चों का जीवन भी नष्ट करते हैं। ये लोग बड़े होकर वही करते हैं, जो इनके साथ बीती होती है। इस प्रकार यह बुराई एक परम्परागत-सी बन गई है।

ऐसे घरों में इस बुराई के फैलने का एक और भी जरिया है। बड़े घरों में बच्चे अक्सर नौकरों के पास ही ज्यादा रहते हैं। नौकरों में सदाचार की मात्रा की हमें उतनी आशा नही करनी चाहिए। कहीं-कहीं नौकरो द्वारा भी इन अबोध बालकों में ये बुराइयाँ फैली हुई पाई जाती हैं।

(३) तीसरे कारण पर विचार करते हुए दिल थर्रा जाता है। जिन गुरुदेव के पास हम अपने बालकों को विद्याध्ययन करने के लिए भेजते हैं, कभी कल्पना में भी उनके चारित्र्य पर शक करना पाप होगा, किन्तु अब वह आदर्श कहाँ रहा! कितनी ही पाठशालाओं में हमारे दुर्भाग्य से दुश्चरित्र

अध्यापक भी होते हैं। वे अपने विद्यार्थियों की नम्रता और आज्ञाकारिता का दुरुपयोग करते है। आप गिरते हैं और उन अबोध बालकों को भी गिराते है। यही हाल कहीं-कहीं सभ्य, देश-सेवा की डींग मारनेवाले नर पुरुषों का भी होता है, जो छात्रालयों के संचालक या व्यवस्थापक होते हैं। विवाह देश-सेवा में बाधक होता है इसलिए वे अपनी शादी नही करते; किन्तु इस तरह अपने विकारों के गुलाम बनकर स्वयं गिरते हैं और दूसरो को भी गिराते है। यह उन पाठशाला या छात्रालयों का वायु-मण्डल है जहाँ हम अपने बच्चों को सदाचार, नीति, देश-सेवा, और अनुशासन का वस्तुपाठ पढ़ने के लिए भेजते हैं।

मेरे कहने का आशय यह कदापि नहीं कि प्रत्येक पाठशाला या छात्रालय का यह हाल है। किन्तु *गृहस्थों, माता-पिताओं और पाठकों को सावधान करने के लिए मैं यह ज़रूर कह देना चाहता हूँ कि ऐसी बहुत कम संस्थाएँ होंगी जो इन बुराइयों से मुक्त हों। अतः अपने बच्चों को छात्रालय में रखते समय, इस विषय पर अच्छी तरह सोच-विचार लें और फिर उनकी ओर से निश्चिन्त तो कभी न हो जायँ। सदा आँखों में तेल डालकर उनके स्वास्थ्य और सदाचार आदि पर नज़र रक्खें।*

(४) चौथा कारण है समाज के इर्द-गिर्द का वायु-मण्डल। हमारा समाज प्रगतिशील अवश्य होता जा रहा है। किन्तु अभी इसमें सुधार के लिए बहुत गुंजाइश है। अभी तो उसमें विकार का मानो साम्राज्य है। समाज, साहित्य और रंगभूमि तीनों तरफ से

बच्चों और युवकों के कोमल अन्तःकरणों पर 'शृङ्गार-विष' के फ़ौवारे छोड़े जाते हैं। समाज में भी भाषा और व्यवहार ऐसे दो अंग किये जा सकते हैं। निचली श्रेणी के लोगों की तो कौन कहे, मंझले दरजे के गृहस्थों के यहां भी अश्लील शब्दों का प्रयोग मामूली बात-सी हो गई है। कई लोगों के लिए ते शब्द तकिया-कलाम बन बैठे हैं। निःसन्देह अधिकांश उदाहरणों में ऐसे शब्द उनके प्रयोग करनेवालों के दिल में कोई भाव जागृत नहीं करते। किन्तु सुननेवाले पर अपने विष का असर छोड़े बिना वे रह नहीं सकते। कई बार युवक और बालक सरल भाव से इन शब्दों का विश्लेषण और अर्थ का पृथक्करण करते हैं।

व्यवहार में तो हम और भी आगे बढ़े हुए हैं। वेश्यानृत्य, वेश्यागमन, छिपा व्यभिचार तथा बहु-विवाह की प्रथाएँ हमारे समाज के कलंक हैं—(इनके विषय में आगे पढ़िए) किन्तु फिर भी समाज में इनकी काफ़ी निन्दा नहीं हो रही है। वीर्यनाश की बीमारी के कीटाणुओं को उत्पन्न कर उन्हे फैलानेवाली बुराइयां यही हैं। किन्तु फिर भी समाज में इनके प्रति घोर घृणा उत्पन्न नही हुई है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है उनका "अकुतोभय" अस्तित्व। कब हमारे दिल के अन्दर इतना चारित्र्यबल और पवित्रता जागृति होगी कि हम इन बुराइयों को, इन चलती-फिरती सजीव बुराइयो को एकबारगी रसातल को पहुँचा दें?

जब हमारे घर में, हमारे समाज में विकार का ऐसा साम्राज्य है, तब हम अपने बालको को उससे मुक्त रखने की आशा कैसे कर सकते है? वीर्य-नाश की बीमारी फैलने का समाज मे एक और भी कारण है। यह बीमारी प्रायः उन शहरों या प्रान्तों में

अधिक पाई जाती है जहाँ मुसलमान जनसंख्या अधिक तादाद में है। अतः मुसलमान माता-पिताओ तथा उन प्रान्त, विभाग या शहरों में रहने वाले हिन्दू गृहस्थों को इसके विषय में अधिक सावधान रहना चाहिए। यों भी आहार-विहार, रहन-सहन आदि को देखते हुए इस विकार के लिए पोषक सामग्री मुसलमान समाज मे अधिक पाई जाती है।

अब आप साहित्य का अवलोकन करे। संस्कृत साहित्य जहाँ ऊँचे से ऊँचे आध्यात्मिक ग्रन्थों से भरा पड़ा है तहाँ जन-साधारण के पढ़ने के काव्यो मे शायद ही एक-आध काव्य ऐसा हो जिसमें शृंगार रस के एक-दो कटोरे न भरे हों। वास्तव मे महाकाव्य की व्याख्या में इन विषय-विलास की कथाओ को एक ख़ास स्थान है। और पीछे होनेवाले कवियों मे से किसी को यह हिम्मत न हुई कि उस व्याख्या की परवा न करके ऐसे काव्य बना देता जो निर्मल-हृदय बालक-बालिकाओ के हाथो में भी रक्खा जा सके।

यही हाल मध्य-कालीन प्राकृत या हिन्दी साहित्य का भी है। मालूम होता है इस साहित्य की रचना करते समय रच-यिताओं को निर्दोष-चित्त युवकों का ख़याल ही नही रहता था। वे अपनी रचनाएँ प्राय: गृहस्थो के मनो-विनोद और काल-यापन के लिए ही बनाते थे। और अपने विकारों को सह्य बनाने के लिए, समाज के सुरुचि-सम्पन्न अंतःकरणों की भर्त्सना से बचाने के लिए परमात्मा पर अपने विकारों का आरोप करते थे। श्रीकृष्ण और उनकी अनन्य भक्ता राधाजी के प्रति उन्होंने कितना अन्याय किया है! आज उनकी मूक आत्माएँ हमें इस घृणित पाप के लिए कितना शाप देती होंगी? और कितना शाप देती है

हिन्दू-जाति की यह आत्मा जो इन विकार-मय वर्णनों से उत्साहित हो अपने विकारों को सह्य और क्षम्य समझने लग गई ? हमारी वर्तमान कायरता, विलासिता तथा गुलामी के लिए क्या ये विकार और विलासिता का कायर वायु-मण्डल बनानेवाले काव्य-ग्रन्थ कम जिम्मेदार हैं ?

और अब उनके अधूरे काम को हमारे आजकल के मासिक तथा साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाएँ और उपन्यास पूर्ण कर रहे हैं। लोक-शिक्षक के ऊँचे स्थान से उतर कर जनता के अधम विकारो को उत्तेजित करके वे लोक-कल्याण करने का दावा कर रहे हैं! इनके मुख पृष्ठों पर, तथा भीतर सुंदर कामिनियों के लुभावने चित्र होते हैं। सन्तान-शास्त्र, दम्पती-रहस्य, गृहस्थ-धर्म आदि के नाम पर कोकशास्त्रों को भी लज्जित करनेवाली भाषा में स्त्री-पुरुषों के विषय की विकारोत्तेजक बाते लिखते हैं! और ऐसे साहित्य का प्रचार करते हैं जो ब्रह्मचर्य का तो दूर, गृहस्थधर्म का भी अपमान करता है! क्या यही साहित्य हमें कल्याण की ओर लेजायगा ?

निर्दोष युवको के हृदयो में विकारों को बढ़ानेवाला एक और भी महत्वपूर्ण कारण है, रंगभूमि—सिनेमा और नाटक। सिनेमा और नाटको में जो कितने ही अश्लील दृश्य दिखाये जाते हैं उनके कुपरिणामो से हम अपने बालकों को कैसे बचा सकते हैं ? *यथार्थ में पूछा जाय तो शृंगार—पातक शृंगार—ही हमारे समाज के मनोरंजन का एक-मात्र साधन रह गया है। देश को वीर्यशाली, स्वतंत्र बनाने, सुविद्य बनाने के महत्वपूर्ण साधन हमारे हाथों से छिन जाने पर एक पराधीन समाज के*

पास: सिवा इसके और रह ही क्या जाता है कि वह अपनी रही-सही शक्ति को भी बरबाद करे ? और इस काम में विदेशी सत्ता यथासम्भव उसकी सहायता ही करती है ! दूर खड़े रहकर वह प्रसन्नता-पूर्वक देखती रहती है कि इस दौड़ में वह कितनी तेजी से दौड़ सकता है ?

परन्तु ये तो वे कारण हैं जिनसे नासमझ लड़के अज्ञान-वश पतित होते है। कॉलेजो और स्कूलो के समझदार युवकों मे यह बुराई फैलने का सबसे बड़ा कारण तो एक घोर अज्ञानमय कल्पना है। और वह यह है कि अधिक समय तक जबर्दस्ती ब्रह्मचारी रहने से शरीर को हानि पहुँचती है। दिमाग़ मे गरमी चढ़ती है इत्यादि। कितने ही युवक इस भ्रम-मूलक कल्पना के चक्कर में आकर अपने जीवन-सत्व को नष्ट करने लग जाते हैं।

कहना न होगा कि यह कल्पना केवल नाशकारी भ्रम से परिपूर्ण है। यह कल्पना तो अधम मस्तिष्को की उपज है। इसे न आयुर्वेद में स्थान है न आधुनिक वैद्यक-शास्त्र मे। यह तो बुद्धि और युक्ति के विपरीत है।

जिस समाज में और शासन मे लड़को को गिराने के लिए ऐसी-ऐसी सामाग्रियाँ मौजूद है, आश्चर्य होगा यदि उसमें पैदा होने वाले बालक तेजस्वी, सदाचारी, बुद्धिमान तथा बलिष्ट हों। और, सचमुच यदि हमारे समाज में जाति और देश का सिर अभिमान से ऊँचा कर देनेवाले बालक अब भी पैदा होवे हैं तो उसका कारण वर्तमान सामाजिक या शासन-विषयक अनुकूलता नहीं; बल्कि भारतीय संस्कृति की आन्तरिक श्रेष्ठता, और उन बालको की जन्म-जात महत्ता ही है।

आज इस समय जब कि राष्ट्र की सारी शक्तियों के संचित और संगठित करने की सबसे अधिक ज़रूरत है, हम अपने आते राष्ट्र के इस वीर्यनाश की ओर कभी उदासीनता की दृष्टि से नहीं देख सकते। यह वीर्यनाश बल-बुद्धि, प्रतिभा और स्वातंत्र्य-भावना का नाशक है। इसके विनाश से मनुष्य मनुष्य ही नहीं रहेगा।

अपने वीर्य का नाश करनेवाले लड़के की प्रायः अचूक पहचान यह है कि उसकी पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है। भूख कभी लगती है, कभी नहीं। पर ऐसे लड़के खाने-पीने में बड़े पेटू होते हैं। सीधा-सादा भोजन उन्हे पसन्द नहीं होता। उनकी जबान के सारे स्वाद-तत्त्व कमजोर हो जाते हैं। इसलिए चरपरी और मसालेदार चीजों को वे अधिक पसन्द करते हैं। फिर भी क़ब्ज़ हमेशा बनी रहती है। सरदर्द, बदहजमी, रीढ की बीमारी, मिरगी, कमज़ोर आँखें, हृदय की धड़कन का बढ़ जाना, पसलियों का दर्द, बहुमूत्र, पक्षाघात, अनिच्छापूर्वक और अनजान में रात को तथा दिन को भी वीर्य का गिर जाना, नपुंसकता, क्षय और पागलपन इत्यादि अस्वाभाविक वीर्यनाश के पुरस्कार हैं। हमारे कहने का मतलब यह नहीं कि इन सब रोगो का एकमात्र कारण वीर्यनाश ही है परन्तु इन रोगों के रोगियो में वीर्यनाश के अपराधी बहुत बड़ी संख्या में होते हैं। अपने जीवन-सत्व के नष्ट करनेवाले इस अपराधी के स्वभाव पर भी बड़ा भारी असर पड़ता है। अपनी शक्ति और बुद्धि पर से उसका विश्वास उठ जाता है। मनोबल तो उसके होता ही नहीं। डॉ० कावेन लिखते हैं—

"इस घृणित पाप के अपराधी में उदारता, प्रतिष्ठा सम्मान और पौरुष का अभाव प्रत्यक्ष दृष्टि-गोचर होने लगता है। उसमें न धैर्य होता है न निश्चय। महत्वाकांक्षा उसके मनोमंदिर में झांक कर देखती तक नहीं। वह अपनी शक्तियों को भूल जाता है, अनिश्चय उसकी ख़ासी पहचान है। पद-पद पर उसे अपने पतन और ऐकान्तिक पाप का ख़याल दबाता रहता है। उसकी दृष्टि विशाल नहीं होती। काम में वह चतुर नहीं होता। एकाग्रता नष्ट हो जाती है। उसके निर्णय ठीक नहीं होते। उसका दिमाग़ ख़ाली विचार-शून्य रहता है, उसके किसी काम में बुद्धि-कौशल नहीं दिखाई देता। उसका मिलने-जुलने का ढंग विचित्र और अटपटा-सा मालूम होता है। उसका बर्ताव उदार नहीं होता और न होती है उसमें स्त्रियों के प्रति वीरोचित व्यवहार की क्षमता ही। वह समाज में एक पोस्ती की तरह भार रूप बन कर रहता है।"

जिस प्रकार लड़के एकान्त में वीर्य-पात अथवा ऐसे ही घृणित तरीक़े से अपना सर्वनाश करते हैं उसी प्रकार यूरोप और अमेरिका की लड़कियों में भी कृत्रिम मैथुन की बीमारी बहुत बड़े पैमाने पर फैली हुई है। वहाँ तो लड़कियों की शादी बहुत देर से होती है। वे पढ़ती रहती हैं या वैवाहिक जिम्मेदारियों और कष्ट से डरकर अविवाहित ही रहना चाहती हैं और किसी व्यापार-व्यवसाय में पड़कर या कहीं नौकरी करके अपना जीवन-निर्वाह करती रहती हैं। ऐसी कुमारिकाएँ इस ऐकान्तिक

पाप का शिकार बन जाती हैं और कृत्रिम मैथुन से अपने स्वास्थ्य को नष्ट करती रहती हैं। बाल-विवाह की प्रथा के कारण भारत मे ऐसी कुमारिकाएँ नहीं दिखाई देती। पर बाल-विधवाएँ तो हैं न। और उनकी दशा से परिचित हर एक मनुष्य जानता है कि कुछ हद तक उनमें भी यह बुराई है ही। कहीं-कहीं से आवाज सुनाई देती है कि लड़कियो को उच्च शिक्षा देनेवाली संस्थाओ में भी यह बुराई मौजूद है। ऐसी लड़कियों या स्त्रियों के विषय में डॉ० कावेन आगे लिखते हैं :—

So too the female diseased here, loses proportionately the amiableness and gracefulness of her sex, her sweetness of voice, disposition and manner, her native enthusiasm, her beauty of face and form, her gracefulness and elegance of carriage, her looks of love and interest in man and to him, and becomes merged into a mongrel neither male nor female but marred by the defects of both without possessing the virtues of either.

इसी प्रकार इस ऐकान्तिक पाप की अपराधिन लड़की या स्त्री भी अपनी आकर्षकता को खो बैठती है। उसकी आवाज, स्वभाव और व्यवहार मे वह मधुरता नही होती जो रमणी का भूषण है। अपने स्वाभाविक उत्साह, शरीर सौंदर्य, उसकी खूबी और कोमलता से वह हाथ धो बैठती है। स्वभाव में रूखापन भद्दापन, नीरसता और कटुता उत्पन्न होजाती है, जिसके कारण वह एक ऐसा जीव बन जाती है जिसमें न पुरुषोचित गुण होते हैं न स्त्रियोचित। हाँ दोष जरूर दोनों के होते हैं।

डॉ० लेमण्ड कहते हैं—"यदि हम देखते हैं कि एक बुद्धिमान लड़का अच्छी स्मरण शक्ति और पढ़ाई के होते हुए भी दिन-ब-दिन पढ़ी-पढ़ाई बातों को जल्दी समझता नहीं और समझ लेने पर याद नहीं रख सकता तो हमे समझना चाहिए कि इसमें अनिच्छा और सुस्ती की अपेक्षा कोई गहरा दोष है। उसका दिन-ब-दिन गिरता हुआ स्वास्थ्य और काम करने की शक्ति का ह्रास, ढीलापन, झुककर चलना, खेल-कूद से जी चुराना, सवेरे देरी से उठना, धँसी हुई और निस्तेज आँखें प्रत्येक बुद्धिमान और सावधान पालक को चिन्ता में डाले बिना न रहेंगी।"

डॉ० ओ० एस० फौलर लड़कों के वीर्य-नाश के लक्षण यों बताते हैं:—

"ऐकान्तिक पापी को उसके निस्तेज और रक्तहीन चेहरे से भी पहचाना जा सकता है। उसकी आँखें गहरी और कुछ मुर्दे की सी भयानक मालूम होंगी। अगर वह इस बुराई में बहुत दूर आगे बढ़ गया है तो उसकी आँखों के नीचे हरे और काले अर्धवर्तुलाकार निशान हो जावेंगे। देखते ही उसके चेहरे पर थकावट झलकेगी। मालूम होगा नींद न आने के कारण यह मरा जा रहा है। उसके होटों पर जंगली, विलासी और मूर्ख मुसक्यान होगी। और खास ऐसे समय जब वह किसी स्त्री की ओर देखता हो। वह कुछ जल्दबाज होगा पर होगा अनिश्चयी ही। एक काम शुरू करेगा फिर उसे छोड़ देगा और दूसरे में हाथ डालेगा। फिर दूसरे को भी छोड़कर पहले को करने लगेगा। और सो भी लकड़ी या टोपी रखने जैसी छोटी-छोटी बातों मे भी वही असम्बद्धता और अ-निश्चय की झलक दिखाई देगी।

छोटी-छोटी बातें उसे घबड़ा देने के लिए काफी होंगी। निश्चय, फुर्ती, धीरज, और शक्ति का उसमें अभाव होगा। वह कायर होगा। हर बात करते हुए डरेगा। उसकी चाल में पौरुष न होगा। दिल मे महत्वाकांक्षा न होगी। उसमें स्वाभिमान और आत्मगौरव का अभाव होगा। मतलब यह कि उसकी प्रत्येक नज़र से और प्रत्येक कार्य से यह प्रकट होगा कि वह गुप्त रीति से कोई बुरा काम कर रहा है और इसका उसे भान है।

वह बातो को जल्दी समझ न पायेगा, ग़लतियाँ करेगा, भूलेगा और असावधान होगा। उसके विनोद जितने होंगे वे सब रस-हीन होंगे। इशारों को न समझेगा। वह उदास होगा, झट से डर जायगा और ज़रा-सी बात से हतोत्साह हो जायगा। उसके विचार सुलझे हुए न होंगे। दिमाग़ में कल्पनाएँ भी नही आवेगी।"

यह सब भयंकर है। एक खिलते हुए फूल की भांति युवक अपने जीवन के बसंत में ही कुम्हलाकर सूख जाय, यह तो बड़े दुर्दैव की बात है। ऐसे युवकों से क्या तो अपना भला होगा और क्या देश का? धीरे-धीरे जीवन का आनन्द उनके लिए दुर्लभ हो जाता है। लोभी और धूर्त वैद्य और डाक्टरो के विज्ञापनों के धोखे में आकर वे अपना रहा-सहा स्वास्थ्य और भी बिगाड़ डालते हैं।

तब हम इसे कैसे रोक सकते हैं? इसका सब से सरल उपाय है—

(१) अपने जीवन में क्रांति कर देना। घर के वायु-मण्डल को पवित्र कर देना।

(२) उन तमाम उत्सवों को बन्द कर देना—कम से कम उनके पालन में परिवर्तन कर देना *जिनके कारण बालकों में विकार जागृत होने की बहुत भारी सम्भावना है।*

(३) बालकों और अविवाहित नवयुवकों को ऐसे स्थानों पर रखना जिनसे वे नव-विवाहित वधू-वरों के क्रीड़ा-कौतुकों को न देख पावें। दूसरों को भी इन नव-विवाहितों से बच्चों तथा कुमारों के सामने अनुचित हंसी-मजाक नहीं करनी चाहिए।

(४) माता-पिता तथा दम्पतियों को अपने आचरण में विशेष सावधान रहना चाहिए। बच्चों पर सब से अधिक असर अपने ही घर के वायु-मण्डल का पड़ता है। खासकर उन स्त्री-पुरुषों का उत्तरदायित्व और भी महान है जिनकी कोई बहन, भाई, लड़का या लड़की अविवाहित है, या बहन, भौजाई विधवा है। सब से भारी सावधानी इस बात की रखना जरूरी है कि हमारे आचार-विचार या व्यवहार से किसी प्रकार भी उनके संस्कार-ग्राही कोमल हृदयों में विकार की उत्तेजना जागृत न होने पावे।

समाज को भी शुद्ध बनाने के लिऐ प्रत्येक गृहस्थ को कोशिश करनी चाहिए। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। व्यक्ति और समष्टि का सम्बन्ध आदान-प्रदान का है। हम जैसे होंगे हमारा समाज भी वैसा ही होगा और जैसा हमारा समाज होगा वैसे ही संस्कार हमारे भावी नागरिकों पर पड़ेंगे। इस लिए यह आवश्यक है कि हम अपने सुधार के साथ-साथ सामाजिक सुधार को भी अपना कर्तव्य समझें। नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना बहुत जरूरी है—

(१) हमेशा शिष्ट और सभ्य भाषा का प्रयोग करें। हमारे हास-विलास, हमारे अनर्गल आमोद-प्रमोद उस विष के फौवारे हैं जो जाति के जीवन की जड़ को ही खोखला कर देते है।

(२) तमाम अश्लील दृश्यों से बच्चो को बचावें।

(३) विकारोत्तेजक साहित्य तथा कहानियों से भी उन्हे दूर रखे।

स्मरण रहे कि इन प्रस्तावों के मानी यह नही कि जीवन में आनन्द लेने के तमाम मार्गों को बन्द कर दें। जिनमें बुद्धि और प्रतिभा होगी वे आनन्द प्राप्त करने के कई नवीन और निर्दोष साधन ढूँढ सकेंगे, जिनके द्वारा सचमुच मनुष्य की बुद्धि और बल बढ़ सकता है। परन्तु हाँ, इस में सन्देह नही कि उपर्युक्त साधन हैं ज़रा कष्ट-साध्य ही। इनका अवलम्बन करने में देर लगेगी। तब तक हम इस बुराई को दूर करने के लिए उस-पर प्रत्यक्ष प्रहार भी कर सकते है। नीचे लिखे उपाय अमल में लाये जा सकते हैं—

(१) अपने लड़कों के कार्यक्रम पर कड़ी नजर रक्खें।

(२) उनके साथियो के चरित्र और आचार पर भी ध्यान रक्खें। यदि हमारे लड़के के साथी में कोई बुराई है तो केवल उसकी संगति छुड़ाकर ही हम न रह जाएँ बल्कि उसपर भी अपने बच्चे के समान ही नजर रक्खें, जिससे वह बुराई अधिक न फैलने पावे। उस लड़के के पालकों को भी सावधान कर देना परम आवश्यक है।

(३) बार-बार उस पाठशाला या छात्रालय में जाकर वहाँ के वायु-मण्डल की भी जाँच करे। लड़को से हिल-मिलकर

उनका विश्वास-सम्पादन कर उस संस्था में फैली हुई बुराइयों और बीमारियों का पता लगावें। अध्यापकों, संचालकों तथा अन्य विद्यार्थियों के पालकों का ध्यान भी इस विषय की ओर आकर्षित करें।

(४) प्रत्येक शाला के पाठकों या संचालकों के चरित्र तथा उनके आचार-व्यवहार पर भी नज़र रक्खें। कितने ही अविवाहित पाठक या छात्रालय के संचालकों से ही बुराई फैलती है। उनका ठीक-ठीक पता लगाकर उन्हें ऐसे स्थानों से फौरन हटा देने की व्यवस्था करनी चाहिए। हर हालत में बच्चो को *पाठशालाओं में भेजकर ही निश्चिन्त न हो जावें।*

(५) अपने लड़कों को नौकरों की सोहबत में अधिक देर तक न रहने दीजिए। विशेष कर नौकरों के साथ उनका एकान्त में रहना तो एकदम बन्द ही कर देना चाहिए।

(६) कई बार लड़को में यह बुराई इतनी बढ़ जाती है कि इस तरह अप्रत्यक्ष रूप से प्रयत्न करने पर उनसे वह नही छूटती। इस हालत में ठीक यही है कि उसके पिता, पालक, शिक्षक या सन्मित्र शान्तिपूर्वक उसे इस बुराई के भावी परिणाम समझा दें और यह दिखा दें कि किस प्रकार इसके कारण उसका भावी जीवन दुःखमय और उसके लिए भारभूत हो जाने की सम्भावना है, और आगे चलकर किस प्रकार इससे व्यभिचार, वर्णसंकरता, आदि अन्य आनुषंगिक बुराइयाँ फैलने की सम्भावना है।

ऐसे युवकों और किशोरो का सुधार चाहनेवाले सन्मित्रों पाठकों तथा शिक्षको से एक बात और कह देना जरूरी है। वे जो कोई भी हों इस बुराई के *शिकार बने हुए युवकों को भय,*

धमकी, या बदनामी का डर कभी न दिखावें। वे उन्हें बिलकुल निर्भय कर दें, जिससे वे आपको अपने उद्धारक समझकर अपनी गुप्त से गुप्त भूल को भी आपके प्रति प्रकट कर सकें और उससे मुक्त होने मे आपकी सहायता ले सकें।

बच्चों के माता-पिता को चाहिए कि ज्योंही उनके बच्चे समझदार हो जायें उनको वे ऐसी पवित्र साहित्य पढ़ने के लिए दें जिससे वे ब्रह्मचर्य के पालन का महत्व और लाभ और उसके भंग से होनेवाली हानियाँ समझ जावे। पुस्तक की भाषा अत्यन्त पवित्र और लेखन-शैली बहुत शिष्ट हो। पुस्तक में चित्र भी न हों। अच्छा तो यही है कि उन्हे बाल्यावस्था से ही ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन करनेवाला वह विख्यात सूक्त पढ़ा दिया जाय। अनधिकारी लोगों या साथियों से बच्चे इन विषयों के सम्बन्ध मे अधूरी और अनर्थकर बातें सीखें इसकी अपेक्षा ठीक यही है कि वे पवित्र प्रामाण्य ग्रन्थों और अधिकारी पुरुषों से ही इस विषय को समझ लें। संसार में सारी बुराइयों की जड़ अज्ञान अथवा बुरी तरह प्राप्त किया अधूरा ज्ञान ही है।

इस स्थान पर उन भूले हुए भाइयो को भी एक-दो शब्द कह देना अनुचित नही होगा।

यौवन के प्रभात में आपके शरीर के अन्दर अभिनव-शक्ति और भावो का संचार होना अस्वाभाविक बात नही है। संसार मे प्रत्येक पुरुष-तत्त्व और स्त्री-तत्त्व का उचित समय आने पर पारस्परिक आकर्षण शुरू हो जाता है। यह आपके पौरुष के परिपाक की अवस्था होती है। इसके मानी यह नहीं कि आपको

उसका व्यय शुरू कर ही देना चाहिए। सच तो यह है कि *इस शक्ति को जितना भी संचय किया जाय, वह आपके जीवन को अधिकाधिक तेजस्वी और उन्नत ही बनावेगी। संसार के प्रत्येक क्षेत्र में अगर सबसे अधिक सफलता कोई प्राप्त कर सकते हैं तो ब्रह्मचारी और संयमी ही।* महात्मा टाल्स्टाय के शब्दों मे हमारा पुण्यतम आदर्श है, मानव-जाति को सुखी बनाना। बेहतर यही है कि हम अपनी सारी शक्तियों को इसी काम मे लगा दे। परन्तु यदि किसी कारण हम ऐसा न कर सकें तो हमारे अधूरे काम को पूर्ण करने के लिए अपने प्रतिनिधि उत्पन्न करने की इच्छा से अपनी शक्तियों के कुछ हिस्से का उपयोग हम कर सकते हैं। स्मरण रहे कि हम उसका उपयोग इसी ख्याल से करें। और शेष शक्तियों को अपने प्रतिनिधियों को हमारे योग्य या हमसे अधिक सुयोग्य बनाने के काम में लगाने के लिए सुरक्षित रक्खे।

यही परमात्मा का उद्देश दिखाई देता है जैसा कि महापुरुषों ने उसे समझा है। *अतः यौवन के प्रभात-काल में ही वीर्य को नष्ट करना अत्यन्त घातक है जिसकी सज़ा परमात्मा हमें दिये बिना कभी न रहेंगे।*

जिस क्षण ही आप इस अज्ञान से जाग जाएँ दृढ़ता-पूर्वक प्रतिज्ञा कर लीजिए कि आप यह भूल करने का पाप कभी न करेंगे। अपनी करुण आवाज उस दयानिधि तक पहुँचाइए और उससे प्रार्थना कीजिए कि वह आपको इस पाप से मुक्त होने मे सहायता करे। अपनी भूल का ज्ञान होने पर भी जो युवक उसे जारी रक्खेंगे वे निश्चय-पूर्वक अपना सर्वनाश कर लेंगे।

[३]

पत्नी-व्यभिचार

पाप के अनेक रूप होते हैं। अविवाहित युवकों में वीर्य-नाश और लड़कियों में कृत्रिम विषय-भोग के अलावा समाज में यह पाप कई गन्दे रूपो मे फला हुआ है। इसका सब से सभ्य रूप है पत्नी-व्यभिचार।

पत्नी-व्यभिचार आज-कल के लोगो को तो एक विचित्र बात मालूम होगी। यह तो वदतो-व्याघात (Contradiction in Terms) सी प्रतीत होगी। लोग समझते हैं—"विवाह जीवन का द्वार है। उसके द्वारा मनुष्य अपने जीवनोपवन में प्रवेश कर और मनमाना विषय-विलास लूटे। पति-पत्नी के बीच भला भोग की कोई सीमा रूपी क़ैद क्यों हो? वहाँ तो सब कुछ न्याय्य है—नहीं, वहाँ तो एक दूसरे की तृप्ति के लिए अपना शरीर अर्पण कर देना प्रत्येक का धर्म है। पति का पत्नी पर अधिकार है और पत्नी का पति पर।" पर यह तो उदार मत-वादी लोगों का खयाल है। स्त्रियों को तो अपने अधिकार का पता तक नहीं। अधिकार की भाषा तो पुरुषो ही के मुख में शोभा देती है। वे कहते हैं "हमारी इच्छाओं की पूर्ति करना स्त्रियो का धर्म है। जो ऐसा नहीं कर सकती वे दुष्टा हैं।" ऐसे नर-पशुओ को अपनी पत्नी की बीमारी और गर्भावस्था का भी खयाल नहीं रहता। वे तो विकार के कारण पागल और अंधे हो जाते हैं। संसार में सिवा विकार-तृप्ति के उन्हे और कुछ नहीं दिखाई देता!

परन्तु क्या कभी किसी ने इस विकारांधता की बुराई से होने वाले भयंकर परिणामों का भी खयाल किया ? पत्नी-व्यभिचार का सब से पहला बुरा परिणाम है दोनों के स्वास्थ्य का गिर जाना। विवाह या चिरवियोग के बाद जब पति-पत्नी मिलते हैं तो इस तरह विलास में कूद पड़ते हैं जैसे अकाल-पीड़ित अन्न पर। इसका परिणाम होता है दोनों का स्वास्थ्यनाश। और यह नाश ऐसा होता है कि जिसके दुष्परिणाम से दोनो उठ नही सकते। वे खिले हुए कमल जो पहले समाज की शोभा थे, दो-चार महीने में ऐसे हो जाते हैं कि जिनसे अपने मुख पर की मक्खियाँ भी नही उड़ाई जा सकतीं। स्वयं मेरी नज़र में ऐसे कई युवक हैं जिनका स्वास्थ्य सदा के लिए गिर गया है,—कितने ही मरते-मरते बमुश्किल बचते हैं, और कुछ तो इस विषय-विलास के चक्कर मे मर भी जाते हैं।

हम आजकल समाज मे देखते हैं कि गृहस्थाश्रम और विद्यार्थी अवस्था स्वास्थ्य के लिए दोनों एक-सी है। इन दोनो के मानी है शक्ति का दिवालियापन ! पवित्र चरित्र और ब्रह्मचारी विद्यार्थी बहुत कम मिलेगे और संयमी गृहस्थी तो हज़ार मे एक-आध भले ही हो। जहाँ पश्चिमी शिक्षा, ग़रीबी, और गृहस्थी इन तीनो का त्रिवेणी-संगम हो, वहाँ की लाजें तो भगवान ही रक्खें। बाजीगर के आम के पेड़ की तरह देखते ही देखते वह पौदा उगता है, लह-लहाता है और फल लाकर बूढ़ा भी हो जाता है। आजकल के युवकों में वय कम होने पर भी बूढ़ों के से निर्बल, निःसत्व और रक्त-हीन शरीर देखने को मिलते हैं।

सारा राष्ट्र निस्तेज नर-कंकालों की भूमि हो रहा है। एक तो खाने का पहले ही से घाटा है, इस पर यह असंयम उनकी और भी दुर्गति कर देता है। इन ग़रीब दीन-हीन लोगों को धन-वैभव अथवा खान-पान सम्बन्धी अन्य सुख नसीब नहीं होते। सुख-सम्भोग के क्षेत्र की परिसमाप्ति उनके लिए विषय-भोग ही में हो जाती है। पत्नी को वे सबसे सस्ता सुख-साधन समझते हैं। सस्ता इसलिए कि वह सुलभ है। पातिव्रत का आदर्श पुरुषों ने किसी तरह, उन बेचारियों के हृदयो पर अङ्कित कर रक्खा है। इसलिए पति की प्रत्येक बात के सामने उन्हे अपना सर झुकाना ही पड़ता है। पर इसका असर महा भयकर होता है।

अति विषय-भोग का दूसरा दुष्परिणाम है सन्तान-वृद्धि। सन्तान-वृद्धि दो कारणों से अनिष्ट है। एक तो इसलिए कि बार-बार प्रसूति-पीड़ा के कारण स्त्रियों का शरीर बहुत जर्जर और निःसत्व हो जाता है। उनके शरीर में कोई शक्ति नही रह जाती। और दूसरे, परिवार का बोझ बढ़ जाता है! भारत मे एक जमाना ऐसा था जब लोग सौ-सौ पुत्रों की कामना करते थे। अब तो "अष्ट पुत्रा सौभाग्यवती भव" वाला आशीर्वाद भी भारी मालूम होता है। समझदार लड़कियों में अगर साहस हो तो अब तो वे यहां तक कह देती हैं कि अब इन आठो को अपने पास रखिए महाराज। हमें तो यही आशीर्वाद दीजिए कि "सुपुत्रा सौभाग्यवती भव।" और पुत्र की भी ज़रूरत इसलिए है कि आगे वृद्धावस्था में सहारा हो जाय। पर

दिन-ब-दिन देश में जो गरीबी बढ़ती जा रही है उसको देखकर कितने ही पुरुष और पढ़ी-लिखी लड़कियाँ विवाह करना नहीं चाहतीं। इसका कारण क्या है? यही कि वे देखते हैं कि *विवाहित स्त्री-पुरुषों का जीवन सुखमय नहीं रहता। हम न जाने कितनी योजनाओं, भावनाओं, एवम् आदर्शों को लेकर जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। पर गृहस्थी की चक्की में पिसते-पिसते हमारा कचूमर निकल जाता है। न वे महत्वाकांक्षाएँ पूरी होतीं हैं, न जीवन सुखमय होता है।* पाया तो यह गया है कि जीवन उलटा दुःखमय हो रहा है। प्रत्येक बार पुरुष की और स्त्री की भी शक्ति कम हो जाती है। स्त्री-पुरुष का शरीर जितना निःसत्व और निर्बल होगा वैसी ही उसकी सन्तान भी होगी। वह बुद्धिशाली भी नहीं हो सकती। घर में बालक बढ़ते ही उनके पालन-पोषण और शिक्षा आदि की जिम्मेदारियाँ आ ही जाती हैं। इन बातों में प्रत्येक मनुष्य की शक्ति परिमित होती है। यदि वह असंयम के कारण आवश्यकता से अधिक सन्तान पैदा कर लेता है तो वह तिगुना पाप करता है।

(१) *अपनी शक्तियों पर अनुचित भार ले लेता है।* एक ऐसा काम अपने सिर पर ले लेता है जिसको वह निबाह नहीं सकता। इस हालत में उसे अपने उदर-पोषण के काम में कपट से काम लेना पड़ता है। वह सत्य आचरण से गिर जाता है। और चूंकि पुण्य की तरह पाप भी एक संक्रामक वस्तु है, वह अपनी गन्दगी से समाज में भी गन्दगी फैला देता है। शारीरिक और नैतिक दोनों दृष्टि से वह पतित होता है।

(२) अपनी विकार-वशता द्वारा अपनी जीवन-सहचरी धर्म-पत्नी के जीवन को वह संकटापन्न कर देता है। उसपर इतने अधिक बालकों के पालन-पोषण का भार आ पड़ता है कि जिसको वह उठा नहीं सकती। उसका प्रसन्न स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। जो एक समय देवदूत-सी प्रभामयी और आनन्दमयी मालूम होती थी, पुरुष की विकार-वासना के कारण कर्कशा-सी हो जाती है। स्त्री को भी शारीरिक और मानसिक शक्तियों का ह्रास हो जाता है।

(३) गृहस्थाश्रम जीवन की दूसरी सीढ़ी है। वास्तव में विद्यार्थी दशा की अपेक्षा मनुष्य का गृहस्थ-जीवन अधिक सुखमय और उन्नत होना चाहिए। मनुष्य की ज्ञान और बुद्धि की सम्पत्ति बढ़ जानी चाहिए। स्वभाव की मधुरता अधिक उत्कट होनी चाहिए; परन्तु विकाराधीन मनुष्य उस जीवन को जो कि स्वर्गोपम होना चाहिए था, नरक बना लेता है।

(४) और इस सारे व्यापार में अगर सबसे अधिक अन्याय किसी के साथ होता है, तो वह है इस दम्पति की अबोध सन्तान।

हम शराब वाले भाग में बता चुके हैं कि बालक के कुछ जन्म-सिद्ध अधिकार होते हैं। यह दम्पति अपने व्यभिचारी जीवन द्वारा उन बेचारों के ये सारे अधिकार छीनकर संसार में उन्हें निःशक्त, निर्बुद्धि और ऐसी अवस्था में छोड़ देते है जिसमें वे सदाचार का भी पालन नहीं कर सकते। ये बालक आगे चलकर खरी कमाई से अपना पेट नहीं भर सकते। फिर

उन माता-पिता का पेट भरना तो दूर की बात है। समाज-सेवा और देश-सेवा का तो फिर इन पामरो के दिमाग़ में खयाल भी कैसे आ सकता है ?

इन सब झंझटों से बचने के लिए कितने ही ना-समझ स्त्री-पुरुष गर्भ को ही गिरा देते हैं, दूसरे शब्दो मे भ्रूण-हत्या कर डालते है। (ख़ास कर भारत की विधवाओ मे यह पाप अधिक फैला हुआ है। इस पर हम आगे चलकर विचार करेंगे) मुझे ठीक-ठीक पता नही कि भारत मे यह पाप किस मात्रा में फैला हुआ है। सन्तति-निरोध के कृत्रिम साधनों का आविष्कार होने से पहले पश्चिमी देशों मे यह पाप बहुत बड़े पैमाने पर फैला हुआ था। परन्तु जब से इन कृत्रिम साधनों का आविष्कार हुआ है तब से यद्यपि यह प्रत्यक्ष भ्रूण-हत्या तो बन्द होगई तथापि व्यभिचार की बुराई तो बहुत भारी पैमाने पर फैल गई है। पहले तो यह डर था कि कही गर्भ रह गया तो डाक्टर से कुछ दवा लेकर उसे गिराने की व्यवस्था करनी होगी; और इस तरह गर्भ गिराने में बहुत भारी कष्ट होता है। इसलिए पुरुषो के दिल मे नहीं तो स्त्रियों के चित्त मे तो अवश्य ही उस कष्ट का डर बना रहता था। परन्तु अब तो वह डर भी जाता रहा। व्यभिचार के लिए राज-मार्ग खुल गया। अब तो सब के लिए पाप सुलभ, और अदृश्य हो गया। पाप करके भी समाज की नज़र में अविवाहिता कुमारी और विधवा पवित्र बनी रह सकती है।

आजकल भारत में भी सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनों का बड़ी ही तेजी से प्रचार हो रहा है। मैं इस विषय

पर पहले टॉल्स्टॉय की 'स्त्री और पुरुष' और महात्माजी का लिखा 'संयम या विलास' नामक ग्रन्थ पढ़ चुका था, जिनमें इन कृत्रिम साधनों के उपयोग से होनेवाले कुपरिणामों को बताया गया है। इनके पढ़ते हुए किसी भी भारतीय को संतति-निग्रह के कृत्रिम साधनों की बुराई से इन्कार नहीं हो सकता। पर इधर मुझे इस विषय पर अनेक ग्रन्थ पढ़ने का और अवसर मिला, उससे अब मुझे यह कहना पड़ता है कि दुर्भाग्यवश मैं उन्हे पढ़ने के अपने मोह को रोक नहीं सका। उन्हे पढ़ने पर मुझे मालूम होता है कि मैं उन्हें न पढ़ता तो अच्छा होता। इनमें से कई ग्रन्थ तो इतने गन्दे थे कि उन्हें आगे पढ़ने की हिम्मत ही नहीं हुई। विकार का इस तरह खुलेआम राज्याभिषेक करते हुए मैंने किसी को नहीं देखा था। साहित्य-क्षेत्र में जिन शब्दों और कामों के उच्चारण मात्र से भारतीय पुरुषों के चित्त को भी आघात पहुँचता है उनके वर्णनो से एक पश्चिमी महिला अपनी किताब में निर्लज्जतापूर्वक अध्याय के अध्याय लिखती चली जाती है। जिस विकार से दिन-रात जागृत रहकर बचने के लिए हमारे शास्त्रो और पुराणों में कहा गया है, उसी को वह परमात्मा की पवित्र आज्ञा बताकर यथेष्ट उपभोग करने की आज्ञा देती है, और उसकी आवश्यकता बताती है। उसके हूबहू वर्णनो को पढ़कर लेखिका के स्त्री-हृदय पर आश्चर्य होता है। इस बात को सिद्ध करने के लिए कि विकार-तृप्ति मनुष्य के लिए फायदेमन्द है, वह इन विकारी जीवों को उनके फलों से बचाने के लिए संतति-निग्रह के कृत्रिम साधनो को बताती है। उसकी युक्तियाँ बड़ी ही मोहक और घातक हैं।

विषय-विलास के नतीजे को टालने की युक्ति का आविष्कार करके आज पश्चिम ने संसार के लिए पतन का दर्वाजा खुला कर दिया है। (वह कहती है, इस आविष्कार ने संसार का बड़ उपकार किया है !) धर्म-ग्रन्थों में जो संयम की आवाज़ है, उसे वह 'अन्धी चिल्लाहट' के नाम से पुकारती है और इन पापों से संसार को सचेत करनेवाले टाल्स्टाय जैसे द्रष्टाओं को, इस आन्दोलन का समर्थन करनेवाले, 'मूर्ख संन्यासी' कहते हैं। विषय-विलास के ये पुरस्कर्ता यदि शीघ्र न सम्हले, तो निःसन्देह प्रकृति इन्हें दिखा देगी कि सचमुच मूर्ख कौन है। सन्तति-निग्रह के लिए इस पक्ष ने जितनी दलीलें पेश की हैं सब उचित और विचारणीय हैं। और वे ब्रह्मचर्य की आवश्यकता और महत्व को प्रकट करती हैं। अन्य देशों की बात छोड़ दें, हम उन्हें अपने देश की परिभाषा में ही, संक्षेप में यों कह सकते हैं:—

(१) पुरुष अक्सर स्त्रियों की इच्छा-अनिच्छा का और समय-असमय का विचार नहीं करते और जबर्दस्ती अपनी विषय-क्षुधा को शांत करने के लिए उन्हे मजबूर करते हैं।

(२) फलतः स्त्रियों को पहले ही से अनिच्छा-पूर्वक मातृत्व प्राप्त होता है। अधिक विषय-भोग के कारण बच्चों की संख्या बढ़ जाती है।

(३) आजीविका के साधन तो जल्दी-जल्दी नहीं बढ़ते। इसलिए अनावश्यक बच्चों की संख्या बढ़ते ही दारिद्र्य भी अवश्य ही बढ़ता है।

(४) परन्तु दारिद्र्य के साथ-साथ स्त्री-पुरुषों की काम करने की शक्ति अर्थात् रोजी कमाने की शक्ति तो घट जाती है।

(५) इस शक्ति के घटते ही घर पूरा नरक बन जाता है। पुरुष और स्त्री दोनों कमजोर, और चिड़-चिड़े हो जाते हैं। पोषक भोजन न मिलने से बच्चों का लालन-पालन भी ठीक नहीं होता। इससे चिन्ता उत्पन्न हो जाती है। चिन्ता को भुलाने के लिए निचली श्रेणी के लोग शराब पीने लगते हैं और शराब से व्यभिचार शुरू होता है।

(६) व्यभिचार से गुप्त रोग आदि गुह्य रोगों के कारण सन्तति ही नहीं होती, या होती है तो रोगी, अंधी, कमजोर आदि।

(७) इधर इन रोगी और कमजोर माता-पिता के बच्चे भी कमजोर, अन्धे, लूले, बदसूरत और बुद्धिहीन होते हैं।

(८) जिस समाज मे ऐसे स्त्री-पुरुष और बच्चे अधिक संख्या मे होने लगते हैं उसके विनाश में भी कहीं सन्देह हो सकता है ?

यह कारण-कार्य-परम्परा बिल्कुल निर्दोष है। और भारतीय समाज का ध्यान इस बुराई की ओर जितना जल्दी आकर्षित होगा उतना ही अच्छा। पश्चिमी लेखकों ने अनेक अङ्कों द्वारा इस विचार-परम्परा को अधिक विशद करके दिखा दिया है। किन्तु हमारा देश तो पराधीन है। यहाँ इन बातों की खोज करने की किसे पड़ी है? किंतु अङ्कों की जरूरत ही क्या है, जब समाज का प्रत्यक्ष जीवन ही हमारे सामने मौजूद है ?

यहाँ तक सब ठीक है। पर इस तरह समाज का भीषण से भीषण चित्र खींचकर पश्चिम के लेखक सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनों का उपदेश करते हैं। वे उसके लिए ये दलीलें पेश करते हैं:—

(१) इस साधन-द्वारा स्त्री-पुरुष जितने बच्चे चाहेंगे उतने ही पैदा कर सकेंगे, उससे ज्यादा नहीं हो पायेंगे।

(२) और संतति-निग्रह की यह ताली हाथ लगते ही न उनके (अ) आवश्यकता से अधिक बच्चे बढ़ेंगे, (आ) न दारिद्रथ बढ़ेगा, (इ) न स्त्रियाँ कमजोर होंगी, (ई) न पुरुष शराबी और व्यभिचारी होगा, (उ) न उसे तथा स्त्री को गुप्त रोग होंगे, (ऊ) न रोगी, विकलांग, बुद्धि-हीन बच्चे पैदा होंगे, (ए) न गृह-सौख्य नष्ट होगा, और (ऐ) न समाज निर्धन और पराधीन होगा।

यह भी सब अनेक अंशों में सत्य है। ये फ़ायदे तो संयम से होते ही हैं, परन्तु इनके अलावा और भी अनेक लाभ हैं।

(१) संयम से माता और पिता दोनो की शक्ति और तेजस्विता बनी रहेगी।

(२) पुरुष इसी शक्ति को अन्य क्षेत्रों में परिवर्तित करके उससे अपने देश को अनेक फायदे पहुँचा सकते हैं।

(३) यदि यह संयम धार्मिक होगा तो उसके द्वारा मनुष्य की असाधारण आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है, जो सच्चे सुख और शांति का सीधा मार्ग है।

(४) जिस देश के स्त्री और पुरुष संयमी होंगे, आत्म-विजयी होंगे, उसके लिए सुख-सम्पति बायें हाथ का खेल है।

(५) इस मनोविजय में मनुष्य को जो तालीम मिलती है, वह अमूल्य होती है।

(६) इस संयम के कारण हम अपने आस-पास एक पवित्रता का वायु-मण्डल उत्पन्न कर देंगे, जिससे सारा समाज ऊँचा

उठ जायगा और हमारे बच्चों पर भी उन उच्च संस्कारों का असर पड़ेगा।

(७) समाज में सन्तोष और भक्ति की वृद्धि हो जायगी, क्योंकि ऐसा संयम केवल भक्ति की सहायता से ही सुरक्षित रह सकता है।

कृत्रिम सन्तति-निग्रह द्वारा इनमें से एक भी फ़ायदा नहीं होगा। उल्टे उससे यह हानियां होंगी—

(१) चारों ओर स्वच्छन्दता और विकार का साम्राज्य फैल जायगा।

(२) स्त्री-पुरुष तेज-हीन, लम्पट और कमजोर होंगे।

(३) उनसे ऊँचे पारमार्थिक काम नहीं होंगे।

(४) समाज में आध्यात्मिकता का लेश भी न रहने पायगा।

(५) मनुष्य का जीवन उच्छृंखल और अनियमित होगा।

(६) विषयी वायु-मण्डल में बच्चे भी शीघ्र ही विषयी हो जावेंगे। अर्थात् भावी उन्नति, विजय या स्वाधीनता की आशा पर पानी फिर जायगा।

(७) विधवाओं, अविवाहित लड़कियों और घर-बार छोड़ कर विदेश में रहनेवाले स्त्री-पुरुषों में तथा धार्मिक सम्प्रदायों में भी व्यभिचार बेहद फैल जायगा। क्योंकि पाप के प्रकट होने का डर दूर होते ही मानवी अधमता समाज में बे-रोक-टोक फैलने लग जायगी, और गुप्त रोगों को फैलायगी।

(८) यह एक निश्चित बात है कि गर्भ-धारण का डर दूर होते ही पति-पत्नी अत्यन्त विषयी होजावेंगे। इस समय अधिक

संतति होने से परिवार की वृद्धि का डर उन्हें रहता है। पर इसके बाद तो उनके लिए कोई रोक-टोक न रहेगी। अधिक विषय-भोग से देश के स्त्री-पुरुषों का स्वास्थ्य बिगड़ेगा और राष्ट्र निर्बल तथा निस्तेज होजायगा।

कृत्रिम साधनों के समर्थक कहते हैं—यह सब ठीक है। पर इतना संयम करने के लिए मनुष्य को कितने ज्ञान और मनोबल की जरूरत होती है ? वह देश के इने-गिने लोगों में भले ही कुछ अंशों में हो, पर सर्व-साधारण के लिए तो यह असम्भव ही है।"

पर, किसी काम के केवल मुश्किल होने भर से उसे छोड़ देना तो बुद्धिमानी न होगी। श्रेय का मार्ग हमेशा मुश्किल होता है। पर जिस मनुष्य को अपने सच्चे कल्याण की इच्छा होती है वह तो उसी को पसंद करेगा। पतन का मार्ग हमेशा ढालू और सुगम होता है। गिरते हुए नहीं, गिरजाने पर मनुष्य को अपनी चोट का खयाल होता है। और कई बार यह चोट इतनी भयंकर होती है कि वह मनुष्य को जीवन-भर के लिए पंगु बना देती है। अतः मनुष्य को चाहिए कि पहले ही से जरा सोच-सम्हल कर चले।

अपनी शक्ति और सदाचार को क़ायम रखते हुए बल्कि दूसरी भाषा में कहे तो *सन्तति-निग्रह को उद्देश्य न बनाकर सदाचार, वीर्य-रक्षा, बुद्धि, बल-तेज आदि के बढ़ानेवाले ब्रह्मचर्य को अपना उद्देश्य बनाकर के संयमपूर्ण जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्तियों के लिए संयमशील जीवन उतना कठिन*

नहीं होगा जितना केवल सन्तति-निग्रह को लेकर चलने वालों के लिए होता है।

सन्तति-निग्रह मे विषय-वासना को दबाने की इच्छा नहीं होती बल्कि उसके उपभोग के साथ-साथ उसके फल से बचने की इच्छा रहती है। और इसका फल भी वैसा ही मिलता है। ब्रह्मचर्य का आदर्श प्रेरक अधिक होता है, सन्तति-निग्रह तो उसमें अनायास हो ही जाता है। परन्तु उसके अतिरिक्त और भी मनुष्य की कितनी ही ऊँची शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं, जो मनुष्य को प्रत्येक क्षेत्र में विजयशाली बना देती हैं।

इस संयम का सब से सरल उपाय है पृथक शय्या। पति-पत्नी कभी एकान्त में न रहे। अपने इष्ट देवता या श्रद्धेय, आदरणीय पूजनीय व्यक्ति की मूर्ति को सामने रख कर संयम-शील जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा लें। और प्रतिज्ञा-भंग पर दोनों २४ घंटे का उपास करने का दृढ़ निश्चय कर ले। स्मरण रहे कि ऐसे प्रसंग पर उपवास करने में कभी शिथिलता न की जाय। प्रायः देखा यह गया है कि प्रतिज्ञाभंग हो जाने पर पति-पत्नी इस संकोच से उपवास नहीं करते कि घर के अन्य लोग पूछेंगे तब उन्हें उपवास का कारण क्या बतावेंगे। आज नहीं, फिर कभी जब अकेले होंगे तब कर लेंगे, यह वृत्ति बड़ी घातक है। व्रत अथवा प्रतिज्ञा में एक बार शिथिलता आते ही वह कमज़ोरी आदमी को धर दबाती है। पाप या अपराध पर मनुष्य को स्वेच्छापूर्वक या किसी अन्य मनुष्य द्वारा जब दण्ड नहीं दिया जाता तब उसके लिए वह पाप सह्य हो जाता है। उसे

उत्तेजना मिल जाती है। वह फिर बार-बार वही बात करने को उत्साहित होता है। *अपने साथ रिआयत करनेवाले लोग कभी ऊपर नहीं चढ़ सकते। मनुष्य अपनी प्रतिज्ञा को इसी-लिए नहीं निबाह सकता कि वह अपने साथ रिआयत करने लग जाता है।* अपने साथ रिआयत करना मनुष्य के पतन की कुञ्जी है। *उत्थान का मूल-मन्त्र है कर्तव्य-कठोरता, प्रत्येक ग़लती पर स्वशासन और स्वेच्छापूर्वक अपने आपको दण्डित करने की वृत्ति।*

पर इस संयम-शील जीवन के लिए पति-पत्नी दोनों के सम्पूर्ण सहयोग की जरूरत है। यह तब और भी अधिक अच्छी तरह निबाहा जा सकता है जब दोनो इसके महत्व को भली-भाँति जानते है।

केवल सन्तति से पिंड छुड़ाने का उद्देश्य जब तक रहेगा, तबतक मनुष्य संयमी जीवन में कभी सफल नहीं हो सकता। जैसा आदर्श होगा वैसा फल मिलेगा। यह निश्चित समझिए।

हाँ, एक बात और है। इस विषय में असफल होने का एक खास कारण है स्त्रियो के चित्त की कोमलता। संयमी पति-पत्नी को जहाँ तक हो सके अलहदा कमरों मे सोना चाहिए। कम से कम शैया तो जरूर अलग-अलग हो। परन्तु कितनी ही स्त्रियो के लिए इतना छोटा-सा वियोग (?) भी असह्य हो जाता है, और पति से भी अपनी पत्नी का यह दुःख देखा नही जाता! नतीजा होता है संयम का भंग।

संयम का एक और बढ़िया उपाय है कार्यशीलता—किसी काम को अपना प्रिय विषय बना करके उसे पूरा करने में पति-पत्नी दोनों को जुट पड़ना चाहिए। यह कार्य जितना पवित्र निःस्वार्थ होगा उतने ही हम ऊपर उठेंगे। वह जितना स्वार्थ-पूर्ण और नीचा होगा उतना ही हम नीचे गिरेंगे। शहरों मे रहनेवाले सेठिया तथा व्यापारी लोग भी यों कहने-भर को दिन-रात काम मे निमग्न रहते हैं। धन इकट्ठा करने के पीछे बावले हो जाते हैं। दिन-रात दूकान पर रहते हैं। यह कार्य स्वार्थ-पूर्ण होने के कारण इसमे उच्च स्फूर्ति का अभाव है। वह स्त्रियो के कोमल चित्त पर प्रभाव नही डाल सकता। न वे स्त्रियों को अपने साथ मे लेते ही हैं। इसीलिए हम देखते हैं कि उन दोनो पति-पत्नी का जीवन पापमय होता है। पत्नी के दिल को ऊँचा उठानेवाला दिन भर काम मे लगाये रखने का कोई साधन न रहने के कारण वह अतृप्त रहती है। वह पतित हो जाती है। फिर वहाँ शुद्ध प्रेम कैसे हो ? यह खजाना लुटते ही वह व्यवसायी पति भी मारा-मारा फिरने लगता है।

इसके विपरित हम दूसरे वर्ग को देखे। उन लोगों को देखें जिनके चित्त मे उच्च आदर्शों को स्थान मिल गया है। हम देखते हैं कि इस वर्ग के लोग हमारे देश में धीरे-धीरे बढ़ते जाते हैं। एक निश्चित आदर्श ने उनको आकर्षित कर लिया है। पति-पत्नी दोनों उस सुवर्ण-सूत्र में बँधे हुए उस दिशा में बढ़ते ही चले जाते है। सेवामय जीवन में विकार-चिन्ता के लिए अवसर ही नहीं मिलता। कहीं विकार प्रबल हुआ भी तो एकान्त का

अभाव। फलतः विकार को अपने आप शान्त हो जाना पड़ता है। वह जीवन शान्त है, भव्य है, अपने आपको अपने पारिवर्ती लोगों को ऊँचा उठानेवाला है। इस दारिद्रता में भी स्वर्गीय सुख है।

[४]

गुप्त और प्रकट पाप

समाज एक विशाल सागर है। इसमें नाना प्रकार की बुराइयाँ भी भरी हुई हैं। ऐकान्तिक पाप, और पत्नी-व्यभिचार के अतिरिक्त गुप्त व्यभिचार भी समाज में बहुत बड़े पैमाने पर फैला हुआ है। यह पाप जिस तरह समाज को छिन्न-भिन्न कर रहा है उसे देखकर बड़ा दुःख होता है। कैसा दैव-दुर्विपाक! क्या हमारे देश के पुरुषों को अपनी कर्तृत्व-शक्ति और पुरुषत्व दिखाने के लिए कोई क्षेत्र ही नहीं दिखाई देता? व्यभिचार हमारे देश के पुरुषों के लिए एक मनोविनोद की सामग्री है। जब आदमी अपनी जीवन-शक्ति और नैतिक सम्पत्ति को आग लगाने ही में आनन्द मनाने लगें तब समझना चाहिए कि उसका नाश निकट है। हमारे देश का नीति-शास्त्र बहुत उच्च है। परन्तु आज समाज की अवस्था देखकर लज्जा से सिर झुकाना पड़ता है। जब कोई दूसरा आदमी × आकर हमें अपनी बुराइयाँ बताने लगता है तो हम उसका मुँह बंद करने भर को भले ही कह सकते हैं कि अरे पापी! अपने देश को तो जरा देख! तू कहाँ दूध का धुला हुआ है? पर वास्तव में इससे हमारी आत्मा को सन्तोष नहीं हो सकता वह तो तभी होगा जब हम स्वयं शुद्ध हो जावेंगे।

× मसलन "गटरों की जमादारिन" मिस मेयो।

अपने देश की भलाई और बुराई का ख़याल दूसरे देशों की बुराई-भलाई की तुलना से करना हमेशा फ़ायदेमन्द नहीं है। दूसरे के बुरे लड़के को बताकर उससे अपेक्षा-कृत कुछ अच्छे अपने लड़के को देख कर यदि हम सन्तोष करने लगेंगे तो वह आत्मवंचना होगी—हम अपने आपको ठगेंगे। जो बुराई हमारे अन्दर है, वह महज़ इसलिए सह्य नहीं की जानी चाहिए कि वह दूसरे देशों की अपेक्षा यहाँ पर कम मात्रा में है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए इस व्यभिचार के प्रश्न पर भी हमें विचार करना है।

हम देखते हैं कि समाज में कितने ही स्त्री-पुरुषों के आपस में गुप्त-रूप से बड़े गन्दे सम्बन्ध हैं। इसका कारण है विकार की अधिकता। जब स्त्री अथवा पुरुष विकाराधीन हो जाते हैं तो उन्हें औचित्य, जात-पांत, सगे-रिश्ते नीच-ऊँच आदि का कोई ख़याल नहीं रहता। इसमें प्रायः लोग स्त्रियों को ही दोष देते हैं। परन्तु यह (पाप-रूपी) राक्षस किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। हाँ, जहाँ संस्कार उच्च होते हैं वहाँ इसकी दाल एका-एक नहीं गलती। समाज में आजकल इसने जो अनर्थ मचा रक्खा है उसे दूर करने के लिए सब से अच्छा उपाय यही है कि हम उन कमजोर स्थानों को ही दूर कर दें जहाँ इसे प्रहार करने का मौका मिलता है।

समाज-शरीर को देखते हुए मुझे हमारे अज्ञान और कुप्रथाओं में ही ये कारण दिखाई देते हैं। संक्षेप में उनको यों रख सकते हैं:—

१—सदोष विवाह-पद्धति (बाल, वृद्ध और बेमेल विवाह)

२—स्त्रियों के वास्तविक गौरव को न जानना।

३—पौरुष की मिथ्या कल्पना।

४—परदा, ग़रीबी, अन्ध धार्मिकता।

५—हमारी परिस्थिति, जड़वादिता, प्रेरक आदर्श का अभाव।

अब इन पर संक्षेप में क्रमशः विचार करें—

(१ अ) सब से पहले विवाह-पद्धति को ही लें। यद्यपि अधिकांश शिक्षित लोग अब बाल-विवाह को अनिष्टकर और अनर्थकर मानने लग गये हैं, तथापि हमारे विशाल समाज में अभी इस विषय मे काफी प्रचार करने की जरूरत है। अपढ़-अज्ञानी लोग तो अब भी लड़के-लड़कियों की शादी जल्दी ही कर दिया करते हैं। बच्चो को यह ख़याल भी नहीं होता कि विवाह के मानी क्या होते हैं। लड़के-लड़कियों में स्वभावतः कम अन्तर रक्खा जाता है। समाज के विकारमय वायु-मण्डल में वे पलते हैं और असमय ही अपनी जीवन-शक्ति बहाने लग जाते हैं। लड़के की अवस्था छोटी होने के कारण उसका स्वास्थ्य फ़ौरन गिर जाता है। वह निःसत्व या नपुंसक हो जाता है। पहली अवस्था में बदहज़मी, संग्रहणी, प्रमेह या क्षय का रोगी होकर जल्दी यमराज के यहाँ जा पहुँचता है और दूसरी अवस्था में मृत मनुष्य का-सा यह अपना जीवन व्यतीत करता है। वह मारे लज्जा के मरा जाता है। धूर्त्त और बदमाश हकीमों तथा वैद्यों के भुलावे में आकर अपने तथा अपने पिता के धन को भी बरबाद कर देता है। निष्पौरुष और निर्धन पति के प्रति स्त्री में कोई आकर्षण नहीं रह जाता। दूसरे धूर्त और बदमाश स्त्री

की ताक में रहते ही हैं और इस तरह गुप्त रूप से पाप शुरू हो जाता है।

छोटी उम्र में पति के मर जाने से लड़कियाँ सांसारिक अनुभवों से वंचित रहती हैं। घर में उनकी कोई पूछ-ताछ भी नही करता, और शिक्षा के अभाव के कारण उनके सामने कोई उच्च आदर्श भी नही रहता। फिर समाज में तो विकार का साम्राज्य होता ही है। इस अवस्था मे अगर वे पतित हो जावे तो इसमें कौन आश्चर्य की बात है ? एक पत्नी मर जाने पर चार-चार और दस-दस क्या, अपने लिए असंख्य विवाह करने की स्वतंत्रता का समर्थन करनेवाला पुरुष उन्हे किस मुँह से झिड़क सकता है ? प्रतिदिन बाहर की बीसों नालियों की गन्दगी में नहानेवाले पामर पतित पुरुष की झिड़की और भर्त्सना का असर भी क्या हो सकता है ? किसी व्यक्ति के महज़ पुरुष या स्त्री होने से पाप की मात्रा बढ़ या घट नहीं जाती। पाप की तो शकल ही ख़राब है। वह सबके लिए एक-सा निन्द्य होना चाहिए। जितना स्त्री के लिए उतना ही पुरुष के लिए भी।

(१ आ) जो बुराई बाल-विवाह में है वही, बल्कि उससे भी अधिक बुराई वृद्ध-विवाह में है। बाल-विवाह की कुप्रथा का आरम्भ भले ही अज्ञानमय कहा जा सकता है, परन्तु वृद्ध-विवाह का तो आरम्भ, मध्य और अन्त तीनों पापमय हैं। पहले लड़की का पिता अपनी प्यारी लड़की की शादी वृद्ध के साथ करके पाप कमाता है और वह बेवकूफ़ वृद्ध वर भी।

बाद में जब वृद्ध पति मृत या मृतवत हो जाता है तब वह लड़की भी पाप कमाकर अपने पिता और पति के पापों की पूर्ति करती है। वृद्धों के साथ में या अधिक उम्रवाले विधुरों के साथ में अपनी लड़की की शादी करनेवाला पिता कैसा पापी होता है? क्या कोई बीस साल का युवक चालीस या पैंतालीस वर्ष की वृद्धा से विवाह करना पसन्द करेगा? फिर एक अबोध बालिका को एक ऐसे अधेड़ या बूढ़े के साथ जबर्दस्ती जीवन भर के लिए बाँध देना कैसी निघृण दुष्टता है? वह इन वधू-वरो के बीच निर्मल प्रेम की आशा कैसे करता है? पहले तो कभी पुरुष ऐसे बेमेल विवाह करने पर राजी ही न होगा और यदि लोभ-वश या अन्य किसी कारण से राजी भी हो गया तो या तो वह फौरन दूसरी या तीसरी शादी कर लेता है या अन्य प्रकार के गुप्त व्यभिचारों में प्रवृत्त हो जाता है।

(१ इ) व्यभिचार का तीसरा कारण है बेमेल विवाह। हम लोगों ने अपनी विवाह-पद्धति में प्रायः क़वायद को तो बनाये रखने की कोशिश की है। धूम-धड़ाका भी खूब करते हैं। परन्तु जो सब से अधिक महत्वपूर्ण बात है, वधू-वरों का चुनाव, उसकी तरफ़ बहुत कम ध्यान देते हैं। आधुनिक शिक्षा या सभ्यता का जिन पर असर पड़ गया है उनकी बात को अगर छोड़ दें, तो कहा जा सकता है कि लड़के-लड़कियों के माता-पिता वधू-वरों की जोड़ी मिलाने की अपेक्षा अपनी आर्थिक स्थिति की तुलना की तरफ़ ही अधिक ध्यान देते है। विवाह करने के पहले वधू-वरों के रूप, रंग, गुण

शील, स्वास्थ्य आदि को मिला लेना परम आवश्यक है। कभी-कभी लड़के-लड़कियों की उम्र में काफी अन्तर होता है, परन्तु एक का शरीर दुर्बल होता है तो दूसरे का हृष्ट-पुष्ट। एक सुन्दर है तो दूसरा कुरूप। एक शिक्षित और चतुर है तो दूसरा अपढ़ और बेवक़ूफ़। एक को चटक-मटक और ठाठ-बाट का शौक़ है, तो दूसरा सरल स्वभाव वाला है। इस तरह जब वधू-वरों के बीच इतनी विषमता होती है, तो उनमें काफी आकर्षण नहीं होता। इस अवस्था में यदि वे प्रेमपूर्वक रहते हैं तो इसका कारण है उनका शील और भारतीय धर्म-शास्त्रों की मर्यादा यह स्त्रियों की महत्ता है। ऐसी अवस्था में पुरुष तो फ़ौरन् दूसरा विवाह कर लेते हैं। वे स्त्रियों के हृदय की अवस्था का ज़रा भी ख़याल नहीं करते। जैसे एक भैंस दूध नहीं देती और हम दूसरी भैंस ले आते हैं। उसी तरह वे दूसरी शादी कर लेते हैं और इसपर मतलबी समाज एक अक्षर नहीं बोलता, बल्कि बड़ी ख़ुशी से लड्डू खाने को उस पापी के यहाँ चला जाता है। किन्तु यदि यही बात किसी स्त्री के द्वारा होती है तो समाज में हाहाकार मच जाता है।

इन सब पापाचारों को देखकर भारत का सारा युवक-समाज काँप रहा है। वह इन सब बेहूदी बातों के विरुद्ध बग़ावत का झण्डा उठाने के लिए तैयार खड़ा है। अगर पुराण-प्रिय (Conservative) दल को अपने देश और समाज की रक्षा करनी है तो वह इस दिन-प्रति-दिन बढ़ते हुए पापाचार को रोकने के लिए नीचे लिखी बातों पर फ़ौरन अमल करने लग जायँ।

(१) बाल और बेमेल विवाह की बन्दी ।

(२) जो विधवायें विवाह करना चाहें उन्हें विवाह की इजाजत दी जाय ।

(३) एक पत्नी के जीवित रहते हुए पुरुष दूसरा विवाह न करें ।

(४) विधुर विधवाओं से ही विवाह करें ।

(५) स्त्री-पुरुषों की विवाह-मर्यादा बीस और पच्चीस वर्ष हो ।

(२) दूसरे कारण की विवेचना करते हुए मुझे बड़ी लज्जा मालूम होती है । पुरुषो ने स्त्रियों के नम्र, विनय-शील और कोमल स्वभाव का कितना दुरुपयोग किया है ! उनके अज्ञान से कैसा अनुचित लाभ उठाया है ? पुरुषों ने तो स्त्रियो को अपनी उपभोग्य-सामग्री ही समझ रक्खा है । एक तरफ स्त्रियो को अज्ञान में रखकर पुरुषो ने पातिव्रत धर्म की व्याख्यां और आख्यायिकायें लिखी और दूसरी तरफ उन्होंने स्त्रियों के उपभोग-शास्त्र की रचना की । इसपर नाना प्रकार के काव्य-ग्रन्थ तैयार किये । फल-फूलो की जातियों के समान स्त्रियों की जातियाँ बनाई गई । उनके नख, शिख, स्तन, आँख आदि का वर्गीकरणात्मक एक शास्त्र तैयार हुआ ।

राजाश्रित पण्डित लोग अपने आश्रय-दाता को वीरता भरे काव्य सुनाने के बदले ऐसी हीन और पातक रचनायें सुनाकर पाप में डुबोने लगे ।

जिस समाज के पण्डित लोग, राजाश्रित बुद्धिजीवी अपने समाज और मालिक के सामने व्यभिचार को देववाणी में प्रति-

ष्ठित करके उसे शास्त्र की दीक्षा देने लगा वह स्वाधीन कैसे हो सकता है ! कैसे उसके नरेन्द्र वीर-वृत्ति हो सकते हैं ? क्या इन तमाम चेष्टाओं का परिणाम घोर अधःपतन नहीं होगा ? और दुर्भाग्य की बात तो यह है कि यही कुत्सित कर्म आजकल के कुछ साहित्य-सेवी कर रहे हैं। कई पत्र-पत्रिकाओं में जैसे चित्र, कहानिया और विज्ञापन छप रहे हैं वे इस बात को स्पष्टतया प्रकट करते है कि भारत के पुरुष अपनी माताओं, वहनों और गृहिणियों के गौरव को नहीं समझ सके।

(३) व्यभिचार का तीसरा कारण है पौरुष की मिथ्या कल्पना। पौरुषवान् (?) पुरुष वर्ग कहता है "पुरुष को प्रकृति का यह आदेश है कि वह अनेक स्त्रियों के साथ उपभोग करे। क्योकि गृहिणी तो बेचारी गर्भवती होने पर बेकाम हो जाती है। पुरुष की वह शक्ति भी यदि गृहिणी के गर्भवती होने के साथ उसके गर्भकाल और शिशुसंवर्धन के दिनो में दब जाती तब तो कोई सवाल ही न था। पर प्रकृति ने यह नहीं किया। इसके स्पष्ट मानी यही हैं कि पुरुष अपनी वासना को अन्य स्त्रियो के उपभोग द्वारा शान्त करे। ऐसी दलील पेश करनेवालो के लिए तो संसार के सभी कर्तव्य और सारा पुरुषार्थ विषयोपभोग ही है। पर यह रास्ता ग़लत है, बड़ा ही खतरनाक है। विनाश इसका अवश्यम्भावी परिणाम है। सौभाग्य-वश समाज में अधिकांश स्त्री-पुरुष स्वभावतः सत्प्रवृत्त होते हैं। अन्यथा मनुष्य-जाति का अस्तित्व इस पृथ्वी पर से कभी का

उठ गया होता। वे जानते हैं कि मनुष्य का ध्येय तो धर्म-साधन और सच्चा पुरुषार्थ प्राणि-मात्र की सेवा करना है। वास्तव में विषय-भोग तो अपनी शक्ति का सब से निकृष्ट उपयोग है। मनुष्य के लिए अपनी शक्ति और पौरुष का उपयोग करने के लिए अनंत क्षेत्र पड़ा हुआ है। करोड़ों अभागे आपकी सहायता के भूखे हैं। आप जिसे विषय-क्षुधा कहते हैं वह इन्हीं सत्कार्यों को करने के लिए प्रकृति का आपको निमन्त्रण है। पर हमारा वासना लोलुप हृदय उसे उलटा ही समझता है। यदि प्रकृति के इस पवित्र आदेश को आदमी समझने लग जायँ तो राष्ट्रों के बीच अखण्ड शान्ति और प्रेम निवास करने लगे।

(४ अ) गुप्त-व्यभिचार को बढ़ाने में परदा, ग़रीबी और अंध-धार्मिकता का भी कम हिस्सा नहीं। परदा अन्धकार का प्रतिनिधि है और अन्धकार पाप का जनक है। जिस समाज में परदा है वह जानता है कि परदे की ओट में कैसे-कैसे अनर्थ होते रहते हैं। परदा के मानी लाज अथवा मान-मर्यादा नही। यह तो सदैव इष्ट ही है। परदा के मानी हैं अज्ञान की दीवार। यह दीवार कृत्रिम भी होती है और असली भी। पर है दोनो रूपो मे घातक। परदा स्त्रियो को स्वाभाविक स्वतंत्रता के उप-भोग से वंचित करता है। पर स्वाधीनता तो जीव-मात्र का स्वभाव है। इसलिए जब घर के लोग स्त्रियो या लड़कियों को यह स्वाधीनता नही देते, तब वे अन्य अपरिचित लोगो के सामने और साथ में इस स्वाधीनता का उपभोग करने की चेष्टायें

करती हैं। और चूंकि जीवन भर परदे के अन्दर रहने के कारण वे धूर्त लोगो की बदमाशी समझ नहीं पातीं, अतः फौरन उनके जाल मे फँस जाती है। इधर घर वाले, इस बात को तो गवारा कर लेते है कि उनकी बहू-बेटियाँ मेले-तमाशों में ग़ैर लोगों के बीच मे जिनमें बहुत बदमाश भी होते हैं, मुँह खोलकर चलें; परन्तु वे इसे सहन नहीं कर सकते कि वे अपने ही घर के आदमियो में, जो उनके भाई, तथा पिता के सदृश होते है, मन खोलकर रहे और उनसे बोलें-चालें। इस प्रकार इस मिथ्या परदे की आड़ मे अनाचार तथा घोर पाप होते रहते हैं।

(४ आ) ग़रीबी पाप का दूसरा कारण है। कितने ही लोग इतने ग़रीब होते है कि अपने गॉव में रहकर आजीविका प्राप्त नही कर सकते। पुरुष शहरो मे कमाने के लिए चले जाते हैं। तनख्वाहें कम होने के कारण वे बार-बार घर को लौट नही सकते। स्त्रियो का पेट भरने के लिए भी काफी रुपये नही भेज सकते। तब वे क्या करें? स्त्रियॉ मजूरी करने जाती हैं या वैसे ही कोई धनिक आदमी उन्हें फँसा लेता है। लोग ग़रीबी में इस पाप के शिकार बहुत जल्दी और आसानी से बन जाते हैं। उधर शहरों में पुरुष भी कही फँस जाते हैं। विदेशी ढंग के कारखाने आदि मे यह पाप बहुत बड़े पैमाने पर फैला हुआ है।

अंध धार्मिकता भी इस पाप को एक हद तक पोषण दे रही है। योगीश्वर श्रीकृष्ण की लीला-कथाओं का इस तरह बहुत बुरा असर फैल रहा है। *बदमाश पौराणिक और गुरु लोग इन कथाओं द्वारा भोली-भाली स्त्रियों को आये दिन ठगते हैं।* तीर्थ-स्थानों में यह विशेष रूप से फैला हुआ है। जिन बड़े-बड़े

मन्दिरों का भारत भर में नाम फैला हुआ है उनमें से बहुत से व्यभिचार को उत्पन्न करने और पोषण देनेवाले स्थान हैं। वहाँ पर भगवानजी पुजारियों और पण्डों के क़ैदी होते हैं। जब चाहते हैं वे अपनी सुविधा और मतलब के अनुसार दिन को और रात को पट खोलते और भगवान को भोग लगाते हैं। उस समय दर्शकों की भीड़ लग जाती है। बस इस भीड़ में बदमाश और गुण्डों की बन आती है। कितनी ही स्त्रियो के पतन का आरम्भ यहीं से होता है। कई तीर्थ-स्थान व्यभिचार के लिए मशहूर हैं। इसीलिए आजकल के सुशिक्षित लोगों की इन तीर्थ-स्थानों पर से बहुत-कुछ श्रद्धा उठ गई है। कम से कम वे मेले वग़ैरा के प्रसंग पर तो कभी वहाँ जाना पसंद नही करते।

भारत की गुरु-प्रणाली मे भी यह पाप घुस गया है। हाल ही मे ऐसे ही एक विख्यात "भक्तिभवन" का रहस्य-स्फोट हुआ है। उसकी पाप-कथाएँ सुनकर दिल दहल उठता है। उसपर अपने विचार प्रकट करते हुए पू० महात्माजी लिखते हैं:—

"कलकत्ते के" गोविन्द-भवन में जयदयाल जी की प्रेरणा से भक्ति-रस उत्पन्न करने के लिए एक भाई रखे गये थे। उन्होंने भक्ति के नाम पर विषय-भोग किया। स्त्रियो द्वारा अपनी पूजा स्वीकार की। स्त्रियाँ उनको भगवान समझकर पूजने लगी। उन्होंने स्त्रियों को अपना जूठन खिला-खिलाकर व्यभिचार में प्रवृत्त कर दिया। भोली-भाली स्त्रियों ने समझ लिया कि 'आत्म-ज्ञानी' के साथ शरीर-संग व्यभिचार नहीं कहा जाता। यह घटना दुःखदायक है, पर इससे मुझे आश्चर्य नही हुआ। भक्ति के नाम पर विषय-भोग चारों ओर होता दिखाई पड़ता है। और, जबतक भक्ति का

असली रहस्य समझ में न आवे, तबतक यदि धर्म के नाम पर अनर्थ हो तो इसमें नवीनता क्या है ? बगुला-भक्तों द्वारा जो अनर्थ न उत्पन्न हो वही आश्चर्य है । मैं राम-नाम का द्वादश-मन्त्र का, पुजारी हूँ, किन्तु मेरी पूजा अन्धी नहीं है । जिनमें सत्य है, उनके लिए रामनाम नौकारूप है । पर मै यह नहीं मानता कि जो लोग ढोंग से रामनाम का उच्चारण करते हैं, उनका उद्धार रामनाम से हो सकता है । अजामिल आदि का उदाहरण दिया जाता है, पर वे काव्य हैं और उनमें रहस्य है । उनके विषय में शुद्धभाव का आरोपण है । जो मानता है कि 'रामनाम से मेरे विषय शान्त होंगे', उसको रामनाम फलता है किन्तु जो ढोंगी यह विचार कर रामानाम का उच्चारण करता है कि 'रामनाम से मैं अपने कर्मों को ढकता हूँ' वह तर नहीं सकता । ... ...

अस्तु, बहनो के लिए मुझे दो बातें कहनी है । जो पुरुष अपनी पूजा कराता है वह तो भ्रष्ट होता ही है; पर बहनें भी उन के साथ क्यों भ्रष्ट हों ? जिन बहनों को मनुष्य की ही पूजा करनी हो वे क्या किसी आदर्श स्त्री की पूजा नहीं कर सकतीं । जो जीवित नहीं हैं उनकी पूजा नही कर सकतीं ? जो जीवित हैं उनकी पूजा किस प्रकार अच्छी कही जा सकती है ? ज्ञानी सोलन का यह वाक्य हृदय में अच्छी तरह धारण कर लेने योग्य है कि, "किसी जीवित मनुष्य के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि वह अच्छा है । इसीलिए पूजा केवल भगवान की ही होती है ।"

हमें आशा है कि पाठक और पाठिकाएँ ऐसे छिपे कूओं से अपने आपको और अपने प्रिय जनों को अवश्य बचाये रखने की कोशिश करेंगे।

इस पाप के अनेक कारणों मे से देवदासी प्रथा भी एक है। यह प्रायः मद्रास और उड़ीसा प्रान्त में अधिक है। पुराने विचार के लोग मन्नते मांगते हैं और उसके बदले में अपनी लड़की की भेंट मंदिर के उस देवता को चढ़ा देते हैं जिससे कि मन्नत मांगी गई थी। यह छोटी-सी बच्ची मंदिर मे रहनेवाली उन औरतों के सुपुर्द कर दी जाती है जो इसी तरह देवता की भेंट चढ़ाई हुई होती हैं। इनका काम मंदिर में देवता के सन्मुख नाचना-गाना होता है। इनके सामने न तो कोई उच्च आदर्श होता है और न इन्हे उच्च शिक्षा ही मिलती है। इसी कारण धूर्त्त लोग इन्हें अपने चंगुल में फँसा लेते हैं और इस प्रकार धर्म के नाम पर पाप करते हैं। सब से प्रथम तो मन्दिर के पुजारी दूषित वातावरण मे रहने के कारण इन्हें भ्रष्ट करते हैं। फिर तो ये देवदासियाँ धनिक यात्रियो और दर्शकों की सेवा-सुश्रूषा के लिए भी भेज दी जाती हैं। इस प्रकार ये लोगों के अन्दर व्यभिचार की प्रचारिका बन जाती हैं। अगर देवदासी को प्रथा को बन्द कर दिया जाय तो व्यभिचार का यह सरेआम प्रचार बहुत-कुछ रुक जाय।

इस तरह हम देखते हैं कि समाज में गुप्त रूप से बहुत बड़े पैमाने पर व्यभिचार फैला हुआ है।

शहरों में जो हमें व्यभिचार के प्रकट अड्डे और बाज़ार दिखाई देते हैं वह तो इस पाप की तलछट-मात्र हैं। जिन

भूली-भटकी स्त्रियों को दुराचार के कारण सगे-सम्बन्धी त्याग देते हैं, समाज जिन्हें घृणा की नज़र से देखता है, और जिनके लिए अपने गाँव या आसपास के प्रदेश में जीवन कष्ट-मय हो जाता है वे अन्त में ऊबकर सरेआम अपने शरीर का हाट लगाकर शहरों में बैठती हैं; और पेट के लिए पाप कमाती हैं। समाज में गुप्त रूप से जितना पापाचार फैला हुआ है उसकी तुलना में यह प्रकट वेश्या-व्यभिचार नगण्य-सा है। जैसी ये स्त्रियाँ होती हैं वैसे ही इनके पास जानेवाले पुरुष भी समाज की तलछट होते हैं। उनके न प्रतिष्ठा होती न लज्जा। यह वेश्या-व्यभिचार की बुराई मध्यभारत और दक्षिण भारत की अपेक्षा उत्तर भारत में अधिक फैली हुई है। गुजरात-काठियावाड़ में और भी कम है।

वेश्या-व्यभिचार के विषय में विशेष लिखना व्यर्थ है। यह एक गन्दी प्रथा है। मनुष्य-जाति के लिए यह अत्यन्त लज्जा-जनक वस्तु है। इसकी जड़ में स्त्रियों के वास्तविक गौरव-सम्बन्धी हमारा अज्ञान है। अगर हम उनके गौरव को जानते होते, संयम के महत्व का हमें ख़याल होता, वैवाहिक बन्धनों में एक दूसरे को बाँधते समय विषय की अपेक्षा पारस्परिक कल्याण का हम ख़याल रखते होते तो समाज में न इतना गुप्त व्यभिचार बढ़ता और न समाज के कलंकरूप आज इतनी वेश्याएँ दिखाई देतीं।

व्यभिचार को रोकने का सबसे सरल तरीक़ा यही है कि पति-पत्नी एक दूसरे से संतुष्ट हों। पति-पत्नी में रूप, रंग, गुण, शील, स्वास्थ्य और शक्ति आदि में उचित समानता होनी चाहिए।

परन्तु ये सब बातें दो व्यक्तियों में एक-सी कभी नहीं रह सकतीं। अतः जितनी अधिक समानता मिले प्राप्त की जाय और शेष बातों मे पारस्परिक सहानुभूति और सहन-शीलता से काम ले लिया जाय। इन सब बातों में स्वभाव का मेल सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। समान स्वभाव अर्थात् गुण-शीलवाले भिन्न-भिन्न जाति तथा देश वाले व्यक्ति भी भाई-भाई की तरह रह सकते हैं। परन्तु असमान गुण-शीलवाले भाई-भाई भी साथ-साथ नहीं रह सकते। अतः पति-पत्नी के लिए समान गुण-शीलवाला होना बहुत जरूरी है। फिर भी शिक्षा और संस्कार बहुत-कुछ सहायता करते हैं।

इस सारे व्यभिचार के लिए हमारे ख़याल से स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष ही अधिक ज़िम्मेदार है। पुरुषों ने अपने आपको स्त्रियों का भाग्य-विधाता बना लिया है। जिन बातों को वे इष्ट समझते है वही समाज में प्रचलित हो सकती है जिन्हें वे बुरी समझते हैं उनकी निन्दा होती है। पुरुषों ने अपने लिए व्यभिचार सह्य बना कर बहुत भारी ग़लती की है। स्त्रियों के लिए व्यभिचार जितना निन्द्य बताया गया है; व्यभिचारिणी स्त्री के साथ जितनी कड़ाई के साथ व्यवहार होता है, उतनी ही कड़ाई पुरुषों के साथ भी हो, वैसे ही कठोर दण्ड पुरुषों को हों तो यह पाप बहुत-कुछ कम हो सकता है। स्त्री अपना पेट भरने में प्रायः परावलम्बिनी रहती है। इसलिए एक-आध बार ग़लती हो जानेपर यदि वह समाज की नज़र में आ जाती है तो उसके लिए आजीविका प्राप्त करना कठिन हो

जाता है। सदाचारी समाज उसे उबारने की क़ोशिश करने के बजाय सदा के लिए त्याग देता है तहाँ पापी लोग उसे और भी गिराने के लिए दौड़ पड़ते हैं। ऐसी हालत में उनका सुधार असम्भव हो जाता है।

भारतीय समाज के इस भीषण पतन का आख़िरी कारण है उसकी पराधीनता। यह इस पतन का कारण और परिणाम दोनों हैं। परकीय सत्ता की अधीनता में समाज इतना पामर, आदर्श-हीन, निकम्मा और ग़ैर ज़िम्मेदार बन गया है, उसके वीर्य-विकास के स्वाभाविक मार्ग या साधन इतने दुर्गम, दुर्लभ और अनाकर्षक कर दिये गये हैं, और उसके सामने पतन की ऐसी-ऐसी लुभांवनी सामग्री प्रतिदिन पेश की जा रही है, साथ ही उसे इतना अकर्मण्य भी बना दिया है कि स्त्री-पुरुषों को अपनी शौर्योत्कर्ष की क्षुधा शान्त करने के लिए कोई मार्ग ही नहीं दिखाई देता। धन, वैभव और यौवन मिलते ही इनके सदुपयोग का कोई अच्छा-सा मार्ग ही उन्हें नहीं मिलता। शासक प्रभुओं से मिलकर कोई काम करने से (Humiliation) अवमानना होती है, साधारण समाज में हिल-मिलकर काम करने के लिए हृदय की असाधारण विशालता की ज़रूरत है और स्वतंत्र रूप से किसी काम को करने की इन धनीमानियों में क्षमता नहीं होती। तब सिवा विषय-विलास के इन्हें सूझे ही क्या? ऊँचे दर्जे के लोग अपने मनोरंजन के लिए विषय-विलास में मग्न हैं और निम्न

श्रेणी के लोग अपने दुःखों को भुलाने की ग़रज़ से शराब-ख़ोरी और व्यभिचार में फँस जाते है। इस तरह सारा राष्ट्र क्षीण हो रहा है !

[५]

गुप्त रोग

अनीति मूलक विषयोपभोग से स्त्री-पुरुषों को अनेक प्रकार के और भीषण गुप्त रोग हो जाते हैं। शरीर में अगर कोई सब से अधिक क़ीमती चीज़ है तो वह है वीर्य ! वीर्य ही मनुष्य का आधार है। शरीर मे अगर वीर्य है तो मनुष्य अथक परिश्रम कर सकता है। खूब अध्ययन कर सकता है। वह वीर और प्रतिभाशाली भी होता है। उसमें उत्साह-शक्ति का ख़ज़ाना होता है। परन्तु *वीर्य के नष्ट होते ही मनुष्य की शक्ति, साहस, उत्साह और प्रतिभा में ज़मीन-आस्मान का अन्तर हो जाता है। ऐसी अमूल्य शक्ति को खोना एक महान अपराध है। परमात्मा उस मनुष्य को और कोई अलहदा दण्ड नहीं देते। उस शक्ति का स्वयं अभाव ही अनेकों दुखों, कष्टों, अवमाननाओं और रोगों का कारण होता है।*

अनीति-मूलक सम्बन्धों से दो प्रकार की हानि होती है।

१ सामाजिक अव्यवस्था

२ गुप्त रोग

यदि विवाहित पुरुष अपनी प्रतिज्ञा को तोड़कर अनीतिमय आचरण करने लग जायँ तो उसका नतीजा घोर सामाजिक

अशान्ति होगा। प्रत्येक स्त्री और पुरुष दिल से चाहता है कि अपने मनुष्य के प्रेम का उसे सम्पूर्ण उपभोग मिले। अतः जब कभी वह अपने प्रेमी को दूसरे व्यक्ति द्वारा उपभुक्त होता हुआ देखता है तो उसे वह असह्य हो जाता है। यह वृत्ति मानव स्वभाव मे जन्मजात-सी प्रतीत होती है। वह मनुष्य की मनुष्यता का एक महत्वपूर्ण अंग है। जिसमें वह वृत्ति नहीं है वह मनुष्य नहीं कहा जा सकता। इस प्राकृतिक नियम का भंग करनेवाला मनुष्य-समाज का अपराधी समझा जाता है। फिर यह बात एक इसलिए भी अपराध समझी जाती है कि गुप्त व्यभिचार द्वारा एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की स्त्री से विषयोपभोग करके उसके गृह-सौख्य को नष्ट करता है और उसके बोझ को बढ़ाता है। क्योंकि इस अनुचित सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाले बालक और उस विश्वास-घातिनी स्त्री का पालन-पोषण तो उस पति को ही करना पड़ता है। इधर अपनी पत्नी से विश्वासघात करनेवाला शख्स भी तो उसके निर्मल प्रेम को खो बैठता है। *व्यभिचारी पुरुष की स्त्री का निर्मल बना रहना एक आश्चर्य की ही बात है। वह मनुष्य जो खुद पाप करता है अपनी पत्नी को पाप करने से कैसे रोक सकता है?* इसके मानी यह नही कि व्यभिचारी पुरुष की पत्नी अवश्य ही व्यभिचारिणी होती है या उसे ऐसा हो जाना चाहिए। परन्तु बात यह है कि जहाँ किसी मनुष्य को दिल भरकर प्रेम नही मिलता, अगर वह प्यासा अपनी प्यास अन्यत्र बुझाने की कोशिश करे तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं है। अतः व्यभिचारी पुरुष सावधान हो जायँ! वे याद रक्खें कि अपने आचरण-द्वारा वे सारे घर का आचार भ्रष्ट करते हैं। *व्यभिचारी*

पुरुष की स्त्री, लड़की, और लड़के का इस कुसंस्कार से पूरी तरह बचना असम्भव है।

पर यह मामला केवल आचार-भ्रष्टता और सामाजिक अव्यवस्था तक ही सीमित नहीं रहता। इस आचार-विषयक गन्दगी से मनुष्य को कई भीषण रोग भी हो जाते है।

दूषित पुरुष अथवा स्त्री से विषयोपभोग करने से या मासिक धर्म की अवस्था मे स्त्री के साथ भोग करने से सूजाक के जन्तु कुपित हो जाते हैं और पुरुष की मूत्र-नलिका में सूजन पैदा हो जाती है। स्त्रियों का मूत्र-द्वार तो अत्यन्त क्षुद्र होता है इसलिए उन्हे इससे उतना कष्ट नहीं होता। इस रोग के कीटाणु उनकी योनि से पुरुष की जननेन्द्रिय में घुस जाते हैं और मूत्र-नलिका को रोककर उसमें सूजन पैदा करके उसे कड़ा बना देते हैं। इसके कारण अस्वाभाविक लिंगोद्रेक होने लगता है। इस अवस्था को अंग्रेजी में कॉर्डी कहते हैं। जब लिगोद्रेक होता है तो सूजा हुआ हिस्सा तन जाता है। इस क्रिया से अंदर की मुलायम चमड़ी फट जाती है और उसमें घाव हो जाता है। घाव मूत्र-मार्ग में होने के कारण पेशाब करते समय मनुष्य को भयंकर कष्ट होता है।

अब प्रकृति घाव को भरना शुरू करती है। जब कोई घाव भरता है तो घाव भरने के बाद वहाँ पर एक गूथ पड़ जाती है। गूथ पड़ने पर मांस कुछ बढ़ जाता है। मूत्र-मार्ग पर हुआ घाव जब भर जाता है तब उस घाव के स्थान पर पड़ी हुई गूथ और गूथ के चमड़े से मूत्र-मार्ग बिलकुल बन्द हो जाता है। (इसको "स्टिक्चर" कहा जाता है) इसे दूर करने के लिए भयंकर पीड़ा होती

है। लोहे की एक टेढ़ी सलाई जननेन्द्रिय में डाली जाती है। मरीज को उस समय जो वेदनाएँ होती हैं उनको यहाँ लिखकर बताना असम्भव है। इसकी असह्य वेदना के कारण रोगी उस समय इतने जोर से अपने दांत दबाता है कि उनके टूटने का भय रहता है। इसी ख़याल से डॉक्टर लोग मरीज़ के मुँह में चमड़ा या ऐसा ही कोई नरम पदार्थ रख देते है। पथरी के और स्ट्रिक्चर के ऑपरेशन मे फ़र्क़ सिर्फ़ इतना ही है कि पथरी के ऑपरेशन की अपेक्षा इसमें समय कुछ कम लगता है। पर सूज़ाक के रोगी को यह रोग बार-बार होता रहता है। जब स्ट्रिक्चर के कारण मूत्र-मार्ग बन्द हो जाता है तब पेट मे एक अलग छेद करके उस रास्ते से कई दिन और महीनो तक मूत्र को निकालना पड़ता है। इसके अलावा इसी के कारण, मनुष्य के गुप्त अंगों के आस-पास अर्थात् रोग और शरीर के जोड़ के स्थान की ग्रंथियाँ भी बढ़ जाती हैं इनको "बद" कहा जाता है। मनुष्य को इससे भी बड़ा कष्ट होता है। कभी-कभी तो इसका दर्द बिना आपरेशन के कम नही होता।

कॉर्डी अर्थात् अस्वाभाविक लिंगोन्द्रिक की अवस्था में घावो से खून भी बहने लगता है। इससे रोगी की अवस्था और भी गंभीर हो जाती है। आगे चलकर जब यह रोग अधिक बढ़ जाता है तब उसे लिंगक्षय नामक रोग होकर पुरुष की तमाम जननेन्द्रिय सड़कर नष्ट हो जाती है।

सूज़ाक का विष बड़ा तीव्र होता है। मरीज़ को अपने रोग की दवा करते हुए तथा मामूली अवस्था में भी खूब सावधान रहना चाहिए। भूल से भी यदि इस विष का स्पर्श कहीं आँखों

को हो गया तो समझ लेना चाहिए कि वह आदमी हमेशा के लिए अन्धा हो गया। इस रोग *की भयंकर* संक्रामक*ता* के विषय में डॉ० सिलवानिस स्टॉल नीचे लिखे उदाहरण देते हैं—

एक पचास साल का बूढ़ा किसी आँख के डॉक्टर के पास गया और अपनी दुखी हुई आँख दिखाने लगा। डाक्टर ने कहा—"आपकी आँखो को गनोरिया का विष लग गया है।" बूढ़े ने कहा—"यह असम्भव है।" डाक्टर साहब ने कहा कि मेरा निदान गलत नहीं हो सकता। और हुआ भी यही। एक साल बाद बूढ़ा फिर आया और बोला—"डाक्टर साहब आपने सच कहा था। जब मैं पिछली बार आपके पास आया था, उस समय मेरा लड़का, जो बाहर नौकरी पर रहता है, यहाँ आया हुआ था। एक दिन जब उसने स्नान कर लिया तो मै स्नान-गृह मे गया। और मैंने स्नान करने पर उसी अंगोछे से अपना चेहरा पोंछा जिससे वह अपना शरीर पोंछकर गया था। मुझे बाद में मालूम हुआ कि उन दिनों वह गनोरिया से पीड़ित था।"

और एक परिवार का हाल सुनिए। शनिवार की शाम कारखानों में काम करनेवाले के लिए बड़ी आनन्द-दायक होती है। किसी व्यभिचारी गृहस्थ ने कारखाने से आते ही शनिवार की शाम को अपने स्नान-गृह में स्नान किया। उसके बाद उसके लड़के, लड़कियाँ, स्त्री, बहन आदि सब ने स्नान किया और सब के बदन पर सूजाक के फोड़े हो गये यद्यपि प्रत्येक मनुष्य ने स्नान करते समय पानी बदल दिया था।

इस तरह कई बार एक *का पाप* अनेक *को कष्ट देता* है। *यदि इस प्रकार किसी व्यभिचारी* पुरुष ने *अपनी स्त्री*

को सूज़ाक का शिकार बना दिया और दुर्भाग्यवश उसी समय वह गर्भवती भी हो गई तो बच्चे के लिए यह बड़ी घातक होती है। इस हालत में पति-पत्नी को चाहिए कि प्रसूति के पहले-पहले माता को वे किसी तरह नीरोग कर दें। प्रसूति के समय यदि स्त्री की योनि दूषित रही तो बालक निश्चय ही अन्धा होगा। हाँ, बाहर आते ही यदि उस विष को साफ धो दिया जाय तो उसकी आँखें बच सकती हैं।

इस प्रकार व्यभिचारी पुरुष केवल नैतिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि संघ-दृष्टि से भी एक भयंकर जन्तु है। पता नहीं, वह कब जान में या अनजान में अपने विष से हमारे शरीर और मन को विषाक्त बना दे।

डॉ० निसर ने सन् १८७९ में इस विष के जन्तुओं का पता लगाया। इसके पहले लोगों का ख़याल था कि गनोरिया छः-सात सप्ताह में पूर्ण रूप से दूर हो सकता है। आजकल मामूली मरीज़ों को नीरोग होने मे छः महीने लग जाते हैं। खास तरह पर बिगड़े हुए मामलों में तो एक से लगाकर चार-चार वर्ष तक लग जाते हैं।

पहले लोगो का ख़याल था कि यह रोग स्त्री-पुरुषों के जननेन्द्रियों तक ही सीमित रहता है। पर अब यह पाया गया है कि इसका जहर शरीर के अंग-प्रत्यंग मे घुस जाता है। यह तो मस्तिष्क, फेफड़े, जिगर, गुर्दों, यकृत तथा शरीर के तमाम जोड़ों तक ख़ून के साथ पहुँचकर धावा कर देता है।

डॉ० गर्नसी अपनी (Plain Talk on Avoided Subjects नामक) पुस्तक में लिखते हैं—

जब किसी आदमी को सूज़ाक होता है तो आप भले ही रुग्ण-स्थान पर कुछ लगा-लगाकर या इन्जेक्शन लगाकर उसे बार-बार दवा दें पर वह हमेशा के लिए कभी नहीं जाता। वह विष तो गुप्त रूप से शरीर में जीवन-भर बना रहता है, और स्ट्रिक्चर, डिसूरिया, ग्लीट आदि रूपों में प्रकट होता रहता है। इससे आदमी का दिल घबड़ा जाता है। इसीके कारण वृद्ध अवस्था में मरीज़ की बड़ी दुर्दशा होती है और शनैः शनैः मरीज प्लास्टिक न्यूमोनिया से ग्रसित होकर मर जाता है।

शेष दो गुप्त रोगों के नाम कंक्राइड और सिफलिस (गर्मी) हैं। पहले दोनों एक-से मालूम होते हैं। पर उनकी प्रकृति में महान अन्तर है। कंक्राइड केवल जननेन्द्रिय का और केवल बाह्य चर्म-रोग है! उससे खून दूषित नहीं होता। दूषित स्त्री-पुरुष से सम्पर्क होने पर ९ दिन में इसकी फुन्सी दिखाई देती है। औषधि करने पर जल्दी अच्छी भी हो जाती है। इसका शरीर पर कोई स्थायी परिणाम भी नहीं होता और न यह कोई आनुवंशिक संस्कार छोड़ता है।

पर कैंसर व सिफलिस, जिसे संस्कृत में फिरंगी रोग कहते हैं, बहुत ही भयंकर है। इसके नाम से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में यह रोग पहले था ही नहीं और यदि होगा भी तो इस परिमाण में नहीं। चौदहवीं और पंद्रहवीं सदी में यूरोप के यात्रियों द्वारा भारत में इसका बहुत फैलाव हुआ। यह रोग बड़ा धोखा देता है। शरीर में इसके विष का प्रवेश हो

जाने पर भी तीन से लेकर छः सप्ताह तक मनुष्य को इसके अस्तित्व का पता भी नही चलता। और जब सकी पहली फुन्सी दिखाई देती है, जो कि एक आलपीन की टोपी से बड़ी नहीं होती, सारे शरीर में इसका विष फैल जाता है।

फिरंगी रोग अथवा सिफलिस (गर्मी) से कंक्राइड की तुलना करते हुए कंक्राइड बिलकुल मामूली मालूम होता है परन्तु वह भी इतना मामूली नहीं। इन दोनो रोगो की आश्चर्यजनक समानता रोगी को घोर चिन्ता में डाल देती है। और जो सिफलिस की भयंकरता को जानता है उसे तबतक अत्यंत मानसिक कष्ट उठाने पड़ते हैं जबतक कि रोग का ठीक-ठीक निदान नही हो जाता। इन दोनों को पहचान इस तरह है। कंक्राइड की फुन्सी जल्दी—कुछ ही दिनों में दिखाई देने लगती है। सिफलिस की फुन्सी कई सप्ताह तक प्रकट नही होती। बाह्य रूप में दोनो एक-सी होती हैं परन्तु सिफलिस की फुन्सी जरा कड़ी होती है और कंक्राइड की फुन्सी अपेक्षाकृत नरम। बस इन दोनों रोगों की खास पहिचान यही है। कंक्राइड फुन्सो जरा बड़ी होती है। सूजन भी उसमें अधिक होती है। परन्तु शरीर के खून पर उसका कोई असर नही होता। औषधोपचार से वह जल्दी जाती भी रहती है। पर सिफलिस की फुन्सी तो तभी दिखाई देती है जब उसका विष सारे शरीर मे फैल जाता है। सिफलिस की फुन्सी तो भीतरी और फैले हुए रोग का एक लक्षण-मात्र है। इस फुन्सी को देखते ही रोगी और डॉक्टर को भी अधिक भीषण चिन्हों वाली दूसरी अवस्था के लिए तैयार रहना चाहिए।

सिफलिस की नीचे लिखी तीन अवस्थाएँ होती हैं।

प्रथमावस्था

प्रथमावस्था में वह छोटी-सी फुन्सी दिखाई देती है। उसका नीचे का हिस्सा कड़ा होता है। कुछ दिनों बाद वह बढ़कर एक खुले मुंह वाला फोड़ा हो जाती है। इसके आस-पास की चमड़ी सुर्ख रहती है। गनोरिया की भांति कंक्राइड और सिफलिस के रोगी को भी बद तो होती ही है। पर औषधोपचार से कुछ दिनों बाद दोनों अच्छे हो सकते हैं। पर इससे मनुष्य को निर्भय नहीं हो जाना चाहिए। क्योंकि सिफलिस का राक्षस रह-रह कर और हर समय पिछली बार से अधिक डरावना रूप लेकर आता है और मनुष्य पर आक्रमण करता है।

द्वितीय अवस्था

दूसरी अवस्था में विष सारे शरीर में भीषण रूप से प्रकट होने लगता है। इस अवस्था को एक महीने से लेकर कोई चार-छः महीने भी लग जाते हैं। शरीर पर फुन्सियां ताम्बे के रंग के चकत्ते और चिट्ठे दिखाई देते हैं। बदें बढ़ जाती हैं। जबान पर, मुँह में और कण्ठ में फोड़े हो जाते हैं। पेट, जिगर, आदि तक में विष फैल जाता है। बालों की जड़ें ढीली हो जाती हैं, और बाल गिरने लग जाते हैं। आदमी का उत्साह मर जाता है। विष दिमाग़ तक भी पहुँच जाता है। जिस के फल-स्वरूप आदमी पागल और मृगी का रोगी हो जाता है। ये हैं द्वितीय अवस्था के कुछ लक्षण। इसकी आयु कुछ निश्चित नहीं। एक से लेकर तीन वर्ष तक यह अवस्था रहती है।

तीसरी अवस्था

इस अवस्था को पहुँचने पर रोग बाह्य अंग को छोड़कर शरीर के भीतर और भी गहरे घुसकर हड्डियों पर आक्रमण करता है। पहले-पहल गठिया की तरह तीव्र वेदना होती है। सिफलिस की पीड़ा संधियों में नहीं बल्कि दो संधियों के—खासकर घुटने और टखनों के बीच और कुछ सिर पर भी होती है। रात को वह इतनी बढ़ जाती है कि रोगी को बिस्तर पर पड़े रहना भी मुश्किल-सा हो जाता है। हड्डियाँ अर्थात् Brittle इतनी कमजोर हो जाती हैं कि वे ज़रा से जोर लगने पर टूटने लग जाती हैं। नाक भी गल जाती है। ऐसे कई अभागों को हम शहरो की सड़कों पर देखते हैं, जिनकी नाक, पाँव और हाथ की हड्डियाँ गल गई हैं। डॉक्टर नफीज एक ऐसे आदमी का हाल लिखते है जो अपने पैर से बूट खींचने लगा तो जांघ से पूरी टाँग ही उखड़ कर अलग हो गई! एक औरत की खोपड़ी में ऊपर से छेद ही हो गया। इस तरह एक नहीं हजारों उदाहरण दिये जा सकते हैं और हम ऐसे अभागों को समाज में घूमते हुए तथा अपना दुःखमय जीवन व्यतीत करते हुए रोज़ देखते हैं। सिफलिस का बीमार कभी इस डर से मुक्त नहीं हो सकता कि उसके भी हाथ-पैर या नाक इसी तरह कभी गल के नष्ट हो जायँगे।

यह रोग अत्यन्त भयंकर है। इसका शिकार होने पर आदमी का जीवन दयनीय और दुःखमय हो जाता है। मरीज़ को जो अपार दुःख होता है उसकी तो बात ही अलग है; परन्तु यों भी उसकी सूरत और शरीर ऐसा गन्दा और घिनौना हो जाता है कि उसे स्पर्श करना तो दूर उसकी तरफ देखने को भी

जी नहीं चाहता। उसके कीटाणुओं में संक्रामकता भी भयंकर होती है।

एक युवक एक डॉक्टर के पास इस रोग का इलाज कराने के लिए गया। डॉक्टर ने इसकी भयंकरता को दिखाते हुए युवक को खान-पान, रहन-सहन आदि के विषय में इतनी हिदायतें दीं कि युवक ने घबड़ा कर कहा "तब तो, डाक्टर साहब, मेरा मर जाना ही भला है।" डाक्टर ने कहा "बिलकुल ठीक है; तुम अपने आप को मरा हुआ समझलो तो अच्छा हो। इसी मे अब तुम्हारा और समाज का कल्याण है।

पर जीते-जी इस तरह मरे के समान रहना कौन पसंद करेगा?"

डॉक्टरों में इस बात पर बड़ा मतभेद है कि सिफलिस पूर्णतया निर्मूल हो सकता है या नहीं। किन्तु इसकी भयंकरता के विषय में तथा आनुवंशिक संक्रामकता के विषय में दो मत नहीं है। डाक्टर सिल्वानस स्टॉल लिखते हैं—"अगर प्रारम्भिक अवस्था में ही अच्छा इलाज हो गया और बराबर दो-तीन वर्ष तक इलाज जारी रक्खा तो शायद मनुष्य को वह आगे कोई कष्ट न भी दे। परन्तु इसका कुछ निश्चय नहीं। कभी-कभी चार-छः वर्ष तक मनुष्य बिलकुल अच्छा हो जाता है और एकाएक फिर वही बीमारी भीषण आक्रमण कर देती है। इसलिए जहाँ एक ओर इस रोग का शिकार बने हुए युवक के लिए उसकी पीड़ा से बचने की कुछ आशा है तहाँ कोई यह समझकर इस पाप के चक्कर में न पड़े कि "उंः क्या है। एक-दो इन्जेक्शन लगवा लेंगे।"

कलकत्ता के इण्डियन मेडिकल रेकार्ड ने व्यभिचार-जन्य महारोगों पर एक विशेषांक प्रकाशित किया है। उसमें नड़ियाद के डाक्टर पुराणिक लिखते हैं :—

"सिफलिस और गनोरिया से जो भयंकर परिणाम निकलते हैं उन सबको यहाँ लिखना कठिन है। सिफलिस पागलपन का एक मुख्य कारण है। हाय ब्लड प्रेशर के मरीजो मे से अधिकांश सिफलिस के रोगी निकलेंगे। संसार में जितने अधूरे गर्भपात होते हैं और मरे बच्चे पैदा होते हैं, उनमें से फीसदी ९० का कारण सिफलिस है। हम संसार मे जितने बदसूरत और विकलांग लोगो को देखते है उनमे से अधिकांश के पैदा करनेवाले माता-पिता सिफलिस के मरीज थे। स्त्रियो की प्राय: सारी गुप्त बीमारियो का कारण सिफलिस या गनोरिया या दोनों होते हैं। जो लोग बचपन मे अंधे होते हैं उनमें से ८० फी सदी के अंधेपन का कारण खोजने पर गनोरिया पाया जायगा।"

गुप्त रोग उन लोगों में सब से अधिक पाये जाते है जो वेश्या-व्यभिचार और शराब-खोरी के शिकार हैं। ये दोनो गुप्त रोगों के मुख्य कारण है। बल्कि सच तो यह है कि जितनी भी कामोत्तेजक चीजे हैं, वे सब मनुष्य को व्यभिचार मे प्रवृत्त करके समाज मे गुप्त रोगो को बढ़ाती हैं।

यद्यपि इस भयंकर रोग के शिकार बने हुए लोगों की ठीक-ठीक संख्या मिलना कठिन है, तथापि जो कुछ भी जानकारी अबतक प्राप्त हुई है उसके आधार पर यही कहा जा सकता है

कि यह रोग समाज की प्रत्येक जाति और वर्ग मे फैला हुआ है।×

बम्बई के गुप्तरोग-निवारक-संघ से नीचे लिखे अंक प्राप्त हो सकते हैं—

	दवा ले जाने वाले मरीज	वही इलाज कराने वाले
जे जे हास्पिटल	३० फी सैकड़ा	१८ फी सैकड़ा
मोती बाई स्त्री औषधालय	२९	—
जनरल प्रेक्टीशनर्स	११	—

पर यह संख्या तो बिलकुल अपूर्ण है। कितने ही युवक लज्जा के मारे शफ़ाखाने जाते ही नहीं। बदमाश और बेईमान विज्ञापन बाज़ वैद्यो और हकीमों के लुभावने और धोखा देनेवाले विज्ञापनों के चक्कर मे आकर वे खराब दवाइयाँ खाते है और अपने शरीर और धन को यों ही बरबाद करते रहते हैं।

शहरों मे गुप्त रोगो के विशेष प्रचार का कारण यह है कि वे पश्चिमी उद्यम के केन्द्र हो रहे हैं। यहाँ पर आस-पास के प्रदेशों के लोग धन कमाने के लिए आ जाते हैं। परन्तु शहर में खर्चा अधिक पड़ता है इसलिए अपने बाल-बच्चों को नहीं लाते। भारत के कुछ मुख्य-मुख्य शहरों में १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार फ़ी एक हज़ार पुरुषो के पीछे स्त्रियों की संख्या इस प्रकार थी।

× पश्चिमी देशों में ये रोग कहीं अधिक भयंकर परिमाण में फैले हुए हैं।

शहर का नाम	फी एक हजार पुरुषों के पीछे स्त्रियो की संख्या
कलकत्ता	५००
बम्बई	५२४
लाहोर	५७१
रंगून	४४४
रावलपिंडी	४४१
दिल्ली	६७२
अहमदाबाद	७६३
सूरत	९०२
त्रिचनापल्ली	९८८

इस तरह अकेले पुरुष शैतान के चक्कर में जल्दी आ जाते हैं।

देश मे विवाह-संस्था जबतक सुव्यवस्थित नही हो जाती तबतक व्यभिचार और व्यभिचार से गुप्त रोग बराबर बढ़ते ही रहेगे। इस समय देश की जन-संख्या इस तरह बंटी हुई है—

	पुरुष	स्त्रियाँ
अविवाहित	८.०	५.४
विवाहित	७.१	७.१
वैधव्य या विधुरा अवस्था में	१.०	२.६
	१६.१	१५.१

संख्या करोड़ो में है। धनाभाव के कारण कितने ही युवकों को अविवाहित ही रहना पड़ता है। सो उधर कई लड़कियाँ धन के

लोभ में आकर बूढ़ों से ब्याह दी जाती हैं और विधवा हो जाती हैं ! इन कुँआरों और विधवाओं में पापाचार बढ़ना अस्वाभाविक नहीं है ।

फौजों के सिपाहियों में यह रोग बहुत फैला हुआ रहता है । बहुत दिन तक नीतिशील वायु-मण्डल के अभाव अथवा जबरदस्ती संयम से रहने के कारण जब सिपाही फौज से छुट्टी लेकर कहीं इधर-उधर जाते हैं, तो व्यभिचार के कुएँ में आँखें मूंदकर कूद पड़ते हैं और गुप्त रोगों के शिकार बनकर लौटते हैं । यही जब समाज में सम्मिलित होते हैं तब इन रोगों को स्वभावतः फैलाने के कारण बन जाते हैं ।

१९२५ में सरकारी फौज के सिपाहियों में यह रोग नीचे लिखे परिमाण में था:—

	कुल संख्या	गुप्तरोग के रोगी	फी सहस्र
अंगरेजी सोल्जर	६०,०००	४,१३९	७२
फौज के देशी सिपाही	१,३६,०००	२,४७५	१८

पर इस भयंकर रोग के दो अंग और भी अधिक हृदय-विदारक हैं । एक तो वे निर्दोष गृहिणियाँ जो अपने पापी पति के संसर्ग से इसका शिकार बनती हैं और दूसरे वे नन्हे-नन्हे कोमल बच्चे जो अपने माता-पिता से यह भीषण प्रसाद विरासत में पाते हैं ।

बम्बई के गुप्त-इन्द्रिय-रोग-निवारक संघ में इलाज करानेवाले मरीजों में फी सैकड़ा ४८ युवक विवाहित थे और फी सैकड़ा ५० महिलाएँ ऐसी थीं जो पति की कृपा से इस रोग का शिकार

बनी थीं। इन निर्दोष गृहिणियो को इन भयंकर रोगो के प्रहार से जो कष्ट होता होगा उसकी कल्पनामात्र से रोमांच हो जाता है।

अब हम बालको की दशा का और अवलोकन करे। केवल बम्बई मे ९००० बच्चे एक वर्ष की उम्र होने के पहले ही इस लोक की यात्रा को समाप्त कर देते हैं। इनमें से ३००० अपनी माता के उदर से ही किसी न किसी रोग को साथ लेते आते हैं। अलावा इसके बम्बई में प्रतिवर्ष कई हजार गर्भ-पात होते हैं, जिनकी निश्चित संख्या जान लेना बहुत कठिन है। इनमे से फी सैकड़ा ६० इसी जंघन्य रोग से होते है। प्रतिवर्ष २००० मरे बच्चे बम्बई में पैदा होते हैं। बम्बई की द्वारकादास डिसपेन्सरी में, जो बम्बई में बच्चों का सबसे बड़ा शफाखाना है, प्रति पाँच बच्चों में एक प्राप्त-सिफलिस का शिकार है। डॉ॰ सॉक्रेटिस का कथन है कि हमारी अन्धशालाओ में फी सैकड़ा ३०, मूकशालाओं मे फी सैकड़ा २५, और मूढ़ तथा पागलों में से, जो कि हमारे अस्पतालो में मरीजों की संख्या बढ़ाते हैं, फी सैकड़ा ५० इसी रोग के जीते-जागते परिणाम हैं।

इन निर्दोष जीवो के इस अकथनीय कष्ट और दुःख के अतिरिक्त इस भयंकर रोग से देश के शारीरिक, राजनैतिक और आर्थिक सम्पत्ति पर कितना बुरा प्रभाव पड़ता है? देश की जन-संख्या में कितनी घोर हानि है?

और इन सब बुराइयों की जड़ है व्यभिचार। प्रतिशत ९९ वेश्याएँ फिर वे पेशेवाज़ हों या सभ्य-परदानशीन, इस भीषण रोग से विषाक्त होती हैं।

प्रत्येक विवाहित, अविवाहित तथा विधवा स्त्री जो इस पाप मार्ग पर पैर रखती है। गुप्तरोग रूपी सांप के मुँह में अपना पैर देती है। वह पुरुष भी जो कि इस भयंकर मार्ग पर लापरवाही या शौक के लिए पैर रखता है अपनी अकाल-मृत्यु, भीषण रोग और अपनी स्त्री, बच्चों तथा सारे घर भर के लिए अनन्त कष्टों को निमन्त्रण देता है।

अब संक्षेप में हमें यह देखना है कि इन भयंकर रोगों से मानव-जाति कैसे बच सकती है? गुप्त रोगों से मानव-जाति के बचाने के मानी हैं व्यभिचार की बन्दी। व्यभिचार की बन्दी की बातें करनेवाले को कितने ही लोग एक कोरा आदर्शवादी कहेंगे। उनके खयाल से जबतक संसार में मानवजाति है तबतक व्यभिचार बराबर बना रहेगा पर यहां तो स्वभाव-भेद की बात है। संसार मे दो प्रकार के लोग है। एक पक्ष यह मानता है कि मनुष्य स्वभावतः सत्प्रवृत्त है, और दूसरा यह कि मनुष्य स्वभावतः दुष्ट है; वह अभ्यास से थोड़ा-बहुत सुधर सकता है किन्तु बुराई के कीटाणु उसके अन्दर से कभी नष्ट नही होते। मै यह मानता हूँ कि मनुष्य स्वभावतः सत्प्रवृत्त है। वह परमात्मा की एक विभूति है। इसलिए उसमें अनंत शक्ति भरी हुई है, बुराई उसका गुण-धर्म नहीं बाह्य विकार है। इसलिए घोर से घोर पतित अवस्था से भी वह केवल एक निश्चय-मात्र से मुक्त हो सकता है। हां, उसका शरीर भले ही कुछ काल तक कृत-कर्मों का फल भुगतता रहे परन्तु उसकी आत्मा तो उसी क्षण मुक्त हो जाती है। अजामिल जैसे भारी व्यभिचारी की मुक्ति की कथा में यही रहस्य है।

सदियों से पराधीनता के पाश में पड़ा हुआ देश स्वाधीनता का निश्चय-मात्र करते ही ग़ुलामी से मुक्त हो जाता है; उसका कारण यही है। एक-एक क्षुद्र घटना ने मनुष्यों के चरित्र में अद्भुत परिवर्तन कर दिया है। एक मानिनी पत्नी के ताने ने विषय के दास बने हुए तुलसीदास को परमात्मा का अप्रतिम भक्त बना दिया। जरूरत तो मानसिक परिवर्तन की है। शरीर तो जड़ वस्तु है। लोग मानव-स्वभाव के स्वार्थीपन और दुष्टता की चाहे कितनी ही चिल्लाहट क्यों न मचाते रहें परन्तु संसार का अधिकांश व्यापार-व्यवहार इसी सत्प्रवृत्ति के आधार और विश्वास पर होता है। इसलिए निश्चय है कि सुशासन और संत पुरुषों की दया से पृथ्वी से व्यभिचार उठ सकता है। आज हम भले ही उस आदर्श से सैकड़ों कोस दूर हों, पर यह दूरी हमें उसके नज़दीक पहुँचने के प्रयत्न से नहीं रोक सकती। फिर यदि शारीरिक मानसिक और आत्मिक पवित्रता संसार में कुछ मूल्य रखती है, यदि वह प्राप्त करने योग्य वस्तु है, तो हमें उन तमाम बातों को बन्द करना ही होगा जो इसकी प्राप्ति में बाधक है।

दूसरे, सारे संसार को पापमय समझने की इस विचार-शैली में क्या सार है—कौनसी प्रेरणा और स्फूर्ति है, क्या आश्वासन है और ऊँचे उठने को कौनसी आशा है? मनुष्य को पापी, स्वार्थी और विकारी जीव कहने से तो मनुष्य अपनी कमजोरियों का समर्थन करना सीखता है। अनेक पापियों को अपने पाप के समर्थन में विश्वामित्र, पाराशर, नारद, आदि की पतन—कथाएँ कहते हुए सुना गया है। वे कहते हैं कि जो बात ऋषि-मुनियों के लिए असम्भव थी उसे हम कैसे कर सकते हैं। यह कह कर

वे और भी पतित होते है और अपने जीवन को दुःखमय बना लेते हैं। अस्तु।

इसलिए अच्छा तो यही है कि मनुष्य पहले निश्चय-पूर्वक समझ ले कि संसार से व्यभिचार बराबर नष्ट हो सकता है और फिर उस दिशा में प्रयत्न शुरू कर दे।

इसमे सब से पहले ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि इन मामलो मे मनुष्य सारे संसार का विचार करने की अपेक्षा पहले अपना ही विचार करे। पहले अपने-आपको इस बुराई से दूर करे। यदि वह पर-स्त्री-गमन का पाप कर रहा है तो पहले पत्नी-व्रती बने। फिर शनैः-शनैः अपने आपको गार्हस्थ्य जीवन में भी ब्रह्मचारी जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार करे। यदि मनुष्य सच्चा साधक होगा, अपने विकारो और आदर्श के साथ यदि वह खिलवाड़ नहीं कर रहा होगा तो उसे यह सुधार करने में देर न लगेगी।

दुर्भाग्यवश जो युवक गुप्त रोगों के शिकार बन गये हैं, वे जीवन की आशा न छोड़ें। धीरज के साथ किसी साधु-स्वजन से अपने दुर्भाग्य की कहानी कह दे, और उसपर अपने सुधार और उद्धार का भार छोड़ दे। वह जैसा कहे उसी के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करे। *जब तक इस बीमारी से वे पूर्णतया नीरोग न हो जायँ, अपने आपको धर्म-भावपूर्वक* अछूत समझे रहें। *अपने उपयोग की चीज़ें दूसरों को न दें उन्हें अलग ही रक्खें। क्योंकि वे स्मरण रक्खें कि इस महारोग के कीटाणु इतने भयंकर होते हैं कि ज़रा से संसर्ग-मात्र से ये दूसरे मनुष्य पर आक्रमण कर देते हैं।* एक बात खास तौर से ध्यान में

रक्खें। कभी इश्तिहारबाज़ वैद्य, डॉक्टर या हकीमों के चंगुल में फँसकर वे अपने धन और स्वास्थ्य को बरबाद न करें। जहाँ तक हो अच्छे अनुभवी डाक्टर या वैद्यों से ही इलाज करावें।

पर समाज से बीमारी को मिटाने के लिए क्या किया जा सकता है।

सब से पहली और निहायत ज़रूरी बात तो यह है कि जनता में *व्यभिचार की बुराई और गुप्त रोगों की भयंकरता को प्रकट करने के लिए खूब प्रचार होना ज़रूरी है।* यह काम वैद्य और डॉक्टर बड़ी अच्छी तरह कर सकते हैं। पाठशालाओं और महाविद्यालयों में विद्यार्थियों को भी इस विषय का ज्ञान करा दिया जाय तो बड़ा अच्छा हो।

(२) विद्यालयों में धार्मिक और नैतिक शिक्षा पर अधिक ज़ोर दिया जाय। *विद्यार्थियों के चित्त पर चारित्रिक पवित्रता का महत्व खूब अंकित कर दिया जाय।* इसके लिए प्राचीन गुरुकुल पद्धति सर्वश्रेष्ठ है।

(३) फिर हमें उन समस्त असमानताओं को मिटाना होगा जो आज-कल हमारी वैवाहिक प्रथाओं में हैं। यह कोशिश करनी होगी कि प्रत्येक पति और पत्नी एक दूसरे से संतुष्ट रह सके।

(४) संयम का आदर्श रखते हुए भी समाज में किसी पुरुष अथवा स्त्री की यह अवस्था नहीं होनी चाहिए जिससे उसे अपने विकार की तृप्ति के लिए अनुचित मार्गों का अवलम्बन करना पड़े।

(५) पतित मनुष्यों का त्याग करने की अपेक्षा उन्हें सुधारने की कोशिश होनी चाहिए। इसके लिए आश्रम-संस्थाएँ बड़ी उपयोगी होंगी।

(६) गुप्त-इन्द्रिय-रोग के तमाम रोगियों को समाज से अलग करके उनका इलाज होना चाहिए। धनिक लोगो और सरकारो को चाहिए कि वे इन लोगो के लिए अलग औषधालय बनावे। क्योंकि यह रोग इतना भयंकर है कि मामूली औषधालयों में इसके रोगियो को रखना दूसरों के लिए बड़ा खतरनाक है। साथ ही इस रोग का इलाज कराना भी इतना खर्चीला है कि मामूली हैसियत का आदमी इसका इलाज नहीं करा सकता

यह काम बहुत विशाल है। यह पूर्णतया तभी हो सकता है जब वैद्य-डाक्टर, समाज-सुधारक, अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ आदि सब मिलकर इस काम के पीछे पड़ जायँ।

सरकार तो इस काम में सबसे अधिक मदद कर सकती है। कानून-द्वारा यह गुप्त रोग के रोगियों के लिए बड़े-बड़े औषधालय बनवा सकती है; जबतक डाक्टरी परीक्षा-द्वारा यह सिद्ध न हो जाय कि रोगी अच्छा हो गया है, उस मनुष्य को विवाह करने और अन्य प्रकार से समाज में उस रोग को फैलाने से रोक सकती है। और भी नानाप्रकार के क़ानून बनाकर तथा अन्य उपायों से अच्छी संस्कृति का प्रचार करके व्यभिचार तथा गुप्त रोगों को रोक सकती है! परन्तु अभी हमारे देश में सरकार से यह आशा करना व्यर्थ है। इसलिए सहृदय पुरुषों को चाहिए कि वे अपने प्रयत्न स्वतंत्र रीति से जितनी जल्दी हो सके शुरू कर दें। यह एक ऐसा विषय है जिसमे मत-भेद के लिए गुंजाइश नहीं है। इसलिए देश के प्रत्येक सत्पुरुष का कर्तव्य है कि इस बुराई को भारत से दूर करने के काम मे लग जाय।

भारत में

व्यसन और व्यभिचार

परिशिष्ट

१. लोग नशा क्यों करते हैं

२. सुख, सिद्धि, और समृद्धि के नियम

३. मदिरा

४. तम्बाकू

५. क्या सोम शराब है ?

[१]

लोग नशा क्यों करते है ?

[रूस के विख्यात महात्मा टॉल्सटॉय ने नशेबाज़ी पर एक बहुत बढ़िया निबन्ध लिखा है। यद्यपि यह लम्बा तो है तथापि हम अपने पाठकों के लाभ के लिए उसका मुख्य अंश यहाँ उद्धत कर देते हैं। हिन्दी अनुवाद श्री जनार्दन भट्ट एम. ए का है, और टाल्सटॉय के सिद्धान्त नामक पुस्तक मे श्री शिवनारायण मिश्र द्वारा प्रताप पुस्तकालय कानपुर से प्रकाशित हुआ है। इसके लिए लेखक और प्रकाशक के हम अनुग्रहीत हैं। निबन्ध यों है—]

लोग शराब, गांजा, भांग, ताड़ी इत्यादि क्यों पीते हैं ? लोग अफीम इत्यादि नशीली चीजें क्यों खाते हैं ? जहाँ शराब इत्यादि का अधिक प्रचार नहीं है वहाँ भी तम्बाकू का इस्तेमाल इतना ज्यादा क्यों होता है ? नशा करने की आदत लोगों में किस तरह से शुरू हुई और सभ्य तथा जंगली हर तरह के लोगों में यह आदत क्यों इतनी फैली हुई है ? लोग नशे में अपने को क्यों रखना चाहते हैं ? यह सब प्रश्न हैं जिन पर इस लेख में विचार किया जायगा।

किसी से पूछिए कि भाई तुम्हे शराब पीने की लत किस तरह से लगी और तुम शराब क्यों पीते हो, तो वह जवाब देगा कि सब लोग पीते हैं इसीसे मैं भी पीता हूँ और इसके अलावा शराब पीने से एक मजा भी मिलता है। कुछ लोग तो यहाँ तक कह

डालते हैं कि शराब तन्दुरुस्ती के लिए बहुत मुफ़ीद है और उसके पीने से एक मजा भी मिलता है। किसी तम्बाकू पीनेवाले से पूछिए कि भाई तम्बाकू तुम क्यों पीते हो तो वह जवाब देगा कि हर एक आदमी पीता है, इसीसे मैं भी पीता हूँ, इसके अलावा तम्बाकू पीने से समय अच्छी तरह कट जाता है। अफ़ीम, चरस, गाँजा, भाँग इत्यादि खानेवाले लोग भी शायद इसी तरह का जवाब देंगे।

तम्बाकू, शराब, अफ़ीम इत्यादि के तैयार करने में लाखों आदमियो को मेहनत खर्च होती है और लाखो बीघा, बढ़िया से बढ़िया जमीन इन सब चीजों के पैदा करने में लगाई जाती है। हरएक आदमी इस बात को क़बूल करेगा कि इन नशीली चीजों के इस्तेमाल से कैसी-कैसी भयानक बुराइयाँ लोगो मे पैदा होती हैं। इसके अलावा इन *नशीली चीज़ों की बदौलत जितने आदमी दुनिया मे मौत के शिकार होते है उतने कुल लड़ाइयों और छूत वाली बीमारियों की बदौलत भी नहीं होते।* लोग इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं इसलिए उनका यह कहना कि "सब लोग पीते हैं इससे मैं भी पीता हूँ" या "समय काटने के लिए पीता हूँ" या "मजे के लिए पीता हूँ" बिलकुल ग़लत है। लोगो के नशा करने का सबब कोई दूसरा ही है।

मनुष्य के जीवन में प्रधानतया दो प्रकार के कार्य दिखलाई पड़ते हैं। एक तो वे कार्य हैं *जिन्हें अन्तरात्मा स्वीकार करता है,* और जो उसीके अनुसार किये जाते हैं और दूसरे प्रकार के कार्य वे हैं *जिन्हें अन्तरात्मा स्वीकार नहीं करता* और जो बिना अन्तरात्मा की राय के किये जाते हैं।

कुछ लोग पहले प्रकार के कार्य करते हैं और कुछ लोग दूसरे प्रकार के। पहले प्रकार के कार्यों में सफलता पाने का सिर्फ एक उपाय है और वह यह है कि हम अपनी आत्मा को उन्नत करें, अपने आत्मिक ज्ञान की वृद्धि करे और अपने आत्मिक सुधार की ओर दत्तचित्त हो। दूसरे प्रकार के कार्यों में सफलता पाने के दो उपाय हैं—बाह्य और आंतरिक। बाह्य उपाय यह है कि हम ऐसे कामो में अपने को लगायें जिनके कारण हमारा ध्यान अन्तरात्मा की पुकार की ओर न जाने पाये और आन्तरिक उपाय यह है कि हम अपनी अन्तरात्मा को ही अन्धा और प्रकाशहीन बना दे।

अगर कोई आदमी अपने सामने की चीज को न देखना चाहे तो वह दो प्रकार से ऐसा कर सकता है—या तो वह अपनी नजर किसी चीज पर लगा दे जो ज्यादा तड़क-भड़कदार है, या वह अपनी आँखों को ही बन्द कर ले। इसी तरह मनुष्य भी अपनी अन्तरात्मा के संकेतो को दो प्रकार से टाल सकता है—या तो वह अपने ध्यान को खेल-कूद, नाच-रंग, थियेटर, तमाशे और तरह तरह की फ़िक्रों और कामो में लगा दे, या अपनी उस शक्ति ही पर पर्दा डाल दे जिसके द्वारा वह किसी बात पर ध्यान लगा सकता है। जो लोग बड़े ऊँचे चरित्र के नहीं हैं, और जिनका नैतिक भाव बहुत परिमित है, उनके लिए खेल-कूद, तमाशे वग़ैरह इस बात के लिए काफी होते हैं। लेकिन जिनका चरित्र बहुत ऊँचा और जिनका नैतिक भाव बहुत प्रबल है, उनके लिए यह बाहरी उपाय अकसर काफी नही होते। इसलिए वे शराब, गाँजा, भांग, तंबाकू इत्यादि से अपने दिमाग़ को जहरीला बना देते हैं, जिससे उनकी अन्तरात्मा

अन्धकारमय हो जाती है और तब वे उस विरोध को नहीं देख सकते जो उनकी अन्तरात्मा और उनके असली जीवन के बीच में पैदा हो गया है।

दुनिया में लोग गांजा, भांग, चरस, शराब, तम्बाकू वगैरा इसलिए नही पीते कि उनका जायका बढ़िया होता है या उनसे कोई खुशी हासिल होती है, बल्कि इसलिए लोग नशा करते हैं कि वे अपनी अन्तरात्मा की आवाज को सुनना नही चाहते। लोग नशा इसलिए करते हैं कि जिसमे अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध किसी काम को कर लेने के बाद शरम न मालूम पड़े। या लोग नशा इसलिए करते हैं कि जिसमें वे ऐसी हालत में हो जायँ कि अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध किसी काम के करने में उन्हे कोई हिचक न पैदा हो।

जब आदमी नशे में नही रहता तो वह किसी वेश्या के यहाँ जाने, चोरी करने या किसी की हत्या करने में शरमाता है। पर जो आदमी नशे में रहता है वह इन कामों को करते हुए नही शरमाता। इसलिए जो मनुष्य अपनी आत्मा और विवेक-बुद्धि के विरुद्ध कोई काम करना चाहता है, वह नशा पीकर अपने को बदहोश कर लेता है। मुझे याद है कि एक बार एक बावरची ने उस औरत को मार डाला जिसके यहाँ वह नौकर था। उसने अदालत के सामने अपने बयान मे कहा कि जब मै छुरा लेकर अपनी मालकिन को मारने के लिए उसके कमरे मे जाने लगा, तो मैने सोचा कि जब तक मैं अपने पूरे होश मे हूँ तबतक मै इस काम को नहीं कर सकता। इसलिए मै लौटा और दो गिलास भर कर शराब पी ली। तभी मैने उस काम के योग्य अपने को समझा और तभी मैने यह

हत्या की। दुनिया में ९० फ़ी सदी अपराध इसी तरह से किये जाते हैं। दुनिया में *जितनी पतित स्त्रियाँ हैं उनमें से आधी स्त्रिया शराब के नशे में ही पतित होती हैं। जो लोग पतित स्त्रियों के घरों में जाते हैं उनमें से आधे लोग तभी ऐसा करते हैं जब वे शराब के नशे में होते हैं। लोग अच्छी तरह से जानते हैं कि शराब पीने से अन्तरात्मा या विवेक-बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है और तब वे मनमाना--जो चाहें सो-- कर सकते हैं। वे इसी मतलब से जान-बूझकर शराब पीते हैं।*

लोग न सिर्फ अपनी ही अन्तरात्मा की आवाज को दबाने के लिए खुद शराब पीते हैं बल्कि जब वे दूसरों से उनकी अन्तरात्मा के विरुद्ध कोई काम कराना चाहते हैं तो उन्हें भी जान-बूझकर शराब पिला देते हैं। लड़ाइयों में सिपाही आम तौर पर शराब पिलाकर मस्त कर दिये जाते हैं जिससे कि वे खूब अच्छी तरह से लड़ सकें। जब लड़ाई में कोई क़िला या शहर दुश्मनों के क़ब्जे में आ जाता है तो दुश्मनों के सिपाही अरक्षित बुड्ढो और बच्चों को मारने से तथा लूटपाट करने से हिचकते हैं पर ज्यों ही उन्हे शराब पिला दी जाती है त्यों ही वे अपने अफसरों की आज्ञा के अनुसार अत्याचार करने लगते हैं। हर कोई यह देख सकता है कि जो लोग चरित्रहीन हैं और जिनका जीवन दुराचारमय है, वे नशों का व्यवहार बहुत अधिक करते हैं। हर एक को मालूम है कि लुटेरे, वेश्याएँ और व्यभिचारी मनुष्य बिना नशे के नहीं रह सकते।

ऐसा ख़याल किया जाता है कि तम्बाकू पीने से बदन में एक तरह की फुर्ती आ जाती है, दिमाग़ साफ़ हो जाता है, और उससे आत्मा को कुंठित करनेवाला वह असर भी नहीं पैदा होता जो शराब से होता है। लेकिन अगर आप ध्यान देकर इस बात को देखें कि किस हालत में तम्बाकू पीने की इच्छा आपको होती है तो आपको निश्चय हो जायगा कि तम्बाकू का नशा भी आत्मा को उसी तरह कुंठित बना देता है जिस तरह कि शराब का नशा बनाता है। ध्यान देने से आपको यह भी मालूम होगा कि लोग तम्बाकू तभी पीते हैं जब उन्हें अपनी आत्मा को कुंठित करने की ज़रूरत पड़ती है। लोग अक्सर यह कहते हैं कि हम चाहे बिना भोजन के रह जायँ, लेकिन बिना तम्बाकू के नहीं रह सकते। अगर तम्बाकू का इस्तेमाल सिर्फ दिमाग को साफ करने या बदन में फुर्ती लाने के लिए किया जाता हो तो उसके लिए लोग इतने उतावले न होते और न उसे भोजन से ज्यादा जरूरी समझते।

एक आदमी ने अपने मालिक को मारना चाहा। जब वह उसे मारने के लिए आगे बढ़ा तो एकाएक उसकी हिम्मत जाती रही। तब उसने एक सिगरेट निकालकर पिया। सिगरेट का नशा चढ़ते ही उसके बदन में फुर्ती आ गई और फौरन जाकर उसने अपने मालिक का काम ख़तम कर दिया। इससे साफ ज़ाहिर है कि उस समय उस आदमी में सिगरेट पीने की इच्छा इसलिए नहीं पैदा हुई कि वह अपना दिमाग़ साफ करना चाहता था, या अपना चित्त प्रसन्न करना चाहता था, बल्कि वह अपनी आत्मा को मूर्छित करना चाहता था जो उसे हत्या करने से रोक रही थी।

जब मैं स्वयं तम्बाकू पिया करता था उस समय की याद

मुझे है। मुझे तम्बाकू पीने की खास जरूरत उसी समय पड़ा करती थी जब मै किसी चीज को टालना चाहता था या उस पर विचार नहीं करना चाहता था। मैं बिना किसी काम के बैठा हुआ हूँ और जानता हूँ कि मुझे काम मे लगना चाहिए, पर काम करने की इच्छा न होने से तम्बाकू पीते हुए बैठे ही बैठे समय काट देता हूँ। मैने ५ बजे किसी के यहाँ जाने का वादा किया है पर बहुत देर हो गई है। मै जानता हूँ कि मुझे वहाँ ठीक वक्त पर जाना चाहिए था। पर मै उस पर विचार नही करना चाहता, इसलिए तम्बाकू पीकर उस बात को भुला देता हूँ। मै जुआ खेल रहा हूँ, उसमें मैं अपने बित्त से अधिक हार गया हूँ—बस उस दुःख को मिटाने के लिए सिगरेट पीने लगता हूँ। मैं कोई खराब काम कर बैठता हूँ। मुझे उस काम को स्वीकार कर लेना चाहिए, पर उसके बुरे नतीजे से बचने के लिए दूसरो पर उसका दोष मढ़ता हूँ और अपने चित्त को शांत करने के लिए सिगरेट का दो-एक कश पी-लेता हूँ। इसी तरह के सैकड़ो उदाहरण दिये जासकते है।

छोटे-छोटे लड़के तम्बाकू पीना कब शुरू करते हैं? आम तौर पर जब उनकी लड़काई का भोलापन जाता रहता है। क्या बात है कि तम्बाकू पीने वालो का नैतिक जीवन और उनका आचरण तब पहिले से अधिक सुधर जाता है ज्यो ही वे तम्बाकू पीना छोड़ देते हैं? पर ज्योही वे दुराचार में पड़ जाते हैं त्योही तम्बाकू पीना फिर शुरू कर देते हैं। क्या कारण है कि क़रीब कुल जुवारी तम्बाकू जरूर पीते हैं? क्या कारण है कि उन स्त्रियों मे तम्बाकू पीने की आदत बहुत कम पाई जाती है जो अपना जीवन बड़े नियम और सदाचार के साथ व्यतीत करती हैं? क्या कारण

है कि सभी वेश्याएँ तम्बाकू का नशा करती हैं ? कारण यह है कि तम्बाकू पीने से आत्मा मूर्छित हो जाती है और आत्मा मूर्छित होने से लोग दुराचार और पाप कर्म विना किसी हिचक के कर सकते हैं।

लोग अपने जीवन को अपनी अन्तरात्मा की अनुमति के अनुसार नहीं वनाते, वल्कि वे अपनी अंतरात्मा को जीवन की आवश्यकताओ के अनुसार मोड़ लेते हैं। जिस तरह व्यक्तियो के जीवन में यह वात दिखलाई पड़ती है, उसी तरह समाज या जाति के जीवन मे भी यह वात दिखलाई पड़ती है। क्योंकि समाज या जाति व्यक्तियों का ही एक समूह है।

लोग नशे के द्वारा अपनी अंतरात्मा को कुंठित क्यों कर देते हैं और उसका नतीजा क्या होता है इसे जानने के लिए हर एक मनुष्य को अपने आत्मिक जीवन की भिन्न-भिन्न दशाओं पर दृष्टि डालनी चाहिए। हर एक मनुष्य के सामने अपने जीवन के हर एक भाग में कुछ नैतिक प्रश्न ऐसे आते हैं जिनका हल करना उसके लिए वहुत जल्दी होता है और जिसके हल होने पर ही उस के जीवन की कुल भलाई निर्भर रहती है। इन प्रश्नो को हल करने के लिए वहुत ध्यान लगाने की आवश्यकता पड़ती ही है। किसी वात पर ध्यान लगाने में कुछ परिश्रम करना पड़ता है और जहाँ परिश्रम करना पड़ता है वहाँ खास कर शुरू में तकलीफ होती है और उसके करने मे वहुत कठिनता मालूम पड़ती है। जहाँ काम अखरने लगा कि फिर उसके करने की उसे इच्छा नहीं होती और हम उसे छोड़ देते हैं। शारीरिक कामों के सम्वन्ध मे जव यह वात है, तो फिर मानसिक वातों का क्या

कहना, जिनमें और भी अधिक परिश्रम पड़ता है। मनुष्य सोचता है कि इस तरह के प्रश्नों को 'हल करने में परिश्रम' करना पड़ता है, अतएव उस परिश्रम से बचने के लिए नशा पीकर वह अपने को बदहोश कर लेता है। अगर अपनी शक्तियो को बदहोश करने के लिए उसके पास कोई ज़रिया न हो तो वह उन प्रश्नो को हल करने से बाज़ नहीं रह सकता जिन का हल करना उसके लिए बहुत ही ज़रूरी है। लेकिन वह देखता है कि इन प्रश्नों से बचने के लिए एक ज़रिया उसके हाथ में है और वह उसे काम में लाता है। ज्योंही इस तरह के प्रश्न उसे पीड़ा देने लगते है त्योंही वह नशे का इस्तेमाल करके उस पीड़ा से बचने की कोशिश करता है। इस तरह से जीवन के अत्यन्त आवश्यक प्रश्न महीनों, वर्षों या कभी-कभी ज़िन्दगी भर तक बिना हल हुए पड़े रहते हैं।

जिस तरह से कोई मनुष्य गंदे पानी की तह में एक क़ीमती मोती को देखकर उसे लेना चाहता है, पर उस गंदे पानी के अन्दर घुसना नहीं चाहता और इसलिए उसे अपनी नज़र से दूर करना चाहता है। मिट्टी बैठ जाने से पानी ज्योंही साफ होने लगता है त्योंही वह उसे हिला देता है जिसमें कि मोती दिखलाई न पड़े। इसी तरह से हम लोग जीवन के प्रश्नों को हल करने से बचने के लिए, जब-जब वे प्रश्न हमारे-सामने आते हैं, तब-तब नशा पीकर अपने को बदहोश करते रहते हैं। बहुत से लोग ज़िन्दगी भर तक इसी तरह अपने को बदहोश करते रहते हैं और हमेशा के लिए अपनी आत्मा को कुंठित कर डालते हैं।

शराब, भांग, तम्बाकू इत्यादि नशो का परिणाम व्यक्तियों पर

जो होता है वह तो होता ही है, किन्तु समाज और जाति पर उसका बहुत बुरा असर पड़ता है। आजकल के अधिकतर लोग कोई न कोई नशा, कम हो या ज्यादा, जरूर करते हैं। यों तो वे थोड़ी शराब पीते हैं या थोड़ी भांग पीते हैं या थोड़ी तम्बाकू का सेवन करते हैं या सिगरेट इत्यादि पीते हैं। सभ्य से सभ्य और विद्वान से विद्वान लोग भी कोई न कोई नशा जरूर करते हैं। हमारे समाज या देश के राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक और कला-सम्बन्धी हर एक विभाग का कार्य और प्रबन्ध इन्हीं सभ्य शिक्षित और विद्वानो के हाथ मे है, जो किसी न किसी नशे के आदी हो रहे हैं इसलिए वर्तमान समय के समाज का हरएक काम प्रायः उन लोगों के द्वारा हो रहा है जो किसी न किसी नशे के प्रभाव में रहते हैं। आम तौर पर यह ख्याल किया जाता है कि जिस मनुष्य ने अगले दिन शराब या और कोई नशा पिया है वह दूसरे दिन काम करने के समय उस नशे के असर में बिल्कुल नहीं रहता। पर यह बिल्कुल ग़लत ख्याल है। जिस मनुष्य ने एक बोतल शराब अगले दिन पी है या अफ़ीम का एक अच्छा नशा अगले रोज़ जमाया है वह दूसरे दिन कभी गम्भीर और स्वाभाविक हालत में नहीं रह सकता। जो आदमी थोड़ी-सी शराब या थोड़ी-सी तंबाकू भी पीने का आदी है उसका दिमाग़ तबतक अपनी स्वाभाविक हालत में नहीं आ सकता जबतक कि वह कम से कम एक हफ़्ते के लिए शराब और तम्बाकू पीना बिल्कुल न छोड़ दे।

इसलिए जो कुछ हमारे चारों तरफ दुनिया में हो रहा है उसमें अधिकतर उन लोगो के द्वारा हो रहा है जो अपनी गम्भीर और स्वाभाविक दशा मे नहीं रहते। मैं यह पूछता हूँ

कि अगर लोग नशे में न होते अर्थात् वे अपनी स्वाभाविक दशा में होते तो क्या वे उन सब कामों को करते जो वे कर रहे हैं। मैं एक उदाहरण आपके सामने रखता हूँ। कुल यूरोप के लोग कई वर्षों से इस बात में मशगूल हैं कि कोई ऐसा तरीक़ा निकाला जाय जिससे कम से कम समय में अधिक से अधिक आदमी मारे जा सकें। वे अपने जवानों को, ज्यों ही, वे हथियार पकड़ने के क़ाबिल होते हैं, त्योंही दूसरों को क़त्ल-करने की शिक्षा देते हैं। हरएक आदमी यह जानता है कि किसी असभ्य या जंगली जाति के हमले से बचने के लिए यह तैयारी नहीं है। सब लोग यह जानते हैं कि अपने को सभ्य और शिक्षित कहनेवाली जातियां एक दूसरे को मारने के लिए ही यह तैयारियाँ करती हैं। सब लोग यह जानते हैं कि इन कामों से संसार में कितना कष्ट, कितनी दुर्दशा, कितना अन्याय और कितना अत्याचार हो रहा है पर तब भी सब लोग सेनाओं, हत्याओं, और युद्धों में शरीक होते हैं। क्या होश में रहने वाले लोग इस तरह का काम कर सकते हैं? नहीं सिर्फ वही लोग ऐसा कर सकते हैं जो हमेशा किसी न किसी नशे में रहते हैं।

मेरा ख्याल है कि आजकल जितने लोग अपनी आत्मा के विरुद्ध काम करते हुए जिन्दगी बिता रहे हैं उतने पहले कभी नहीं थे। इसका सब से बड़ा कारण यह है कि हमारे समाज के बहुत अधिक लोग शराब और तम्बाकू के आदी हो रहे हैं। शराब और तम्बाकू के आदी होकर वे अपने को नशे में डाले रहते हैं। इस भयानक बुराई से छुटकारा जिस दिन मिलेगा वह दिन मनुष्य-जीवन के इतिहास में सोने के अक्षरों से लिखने के योग्य होगा। वह दिन नज़दीक आता हुआ मालूम पड़ रहा है। क्योंकि अब

लोग इस बुराई को पहिचानने लगे हैं और यह समझने लगे हैं कि इन नशीली चीजों से कितनी भयानक हानियां हो रही है। जब इस भाव का प्रचार अधिकतर होगा तभी लोग अपनी आत्मा की आवाज को अच्छी तरह से सुनने लगेंगे और तभी वे अपने जीवन को अपनी आत्मा के संकेतो के अनुसार नियमित करेंगे।

[२]

सुख, सिद्धि और समृद्धि के नियम

(१) अगर आप विवाहित हैं तो याद रखिए कि पत्नी आप की साथिन, मित्र, और सहकारिणी है। विषय-तृप्ति का एक साधन नहीं!

(२) आत्म-संयम ही मनुष्य के जीवन का नियम है। अतः संभोग उसी हालत में उचित कहा जा सकेगा जब दोनों ही के अन्दर उसकी इच्छा पैदा हो और वह भी तब, जब कि वह उन नियमो के अनुसार किया गया हो, जिन्हें कि पति-पत्नी दोनों ने भलीप्रकार समझ कर बनाया हो!

(३) अगर आप अविवाहित हैं तो आपका अपने प्रति, समाज के प्रति और अपनी भावी जीवन-संगिनी के प्रति यह कर्त्तव्य है कि आप अपने को—अपने चरित्र को—पवित्र बनाये रक्खें। अगर आपके अन्दर सचाई और वफादारी की ऐसी भावना पैदा हो गई हो, तो यह भावना एक दुर्भेद्य कवच बनकर अनेक प्रलोभनों से आपकी रक्षा कर सकेगी।

(४) हमारे हृदय के अन्दर छिपी हुई उस परमात्म-शक्ति का हमें सदा स्मरण रखना चाहिए। चाहे हम उसे कभी देख न सकते हों, परन्तु हम अपनी अन्तरात्मा के अन्दर सदा यह अनुभव करते रहते हैं कि वह हमारे प्रत्येक बुरे विचार को भली-भांति देख रही है। यदि आप उस शक्ति का ध्यान करते रहे तो

आप देखेंगे कि वह शक्ति हमेशा आपको सहायता के लिए तैयार रहती है।

(५) संयमी जीवन के नियम, विलासी जीवन के नियमों से अवश्य ही भिन्न होंगे। इसलिए उचित है कि आपका मिलने-जुलने वाला समाज अच्छा हो, आप सात्विक साहित्य पढ़ें, आपके विनोदस्थल अच्छे वातावरण से परिपूर्ण हों और खान-पान में आप संयत हों।

आपको हमेशा सत्-पुरुषो और सच्चरित्र लोगों की ही संगति करनी चाहिए।

आपको दृढ़ता-पूर्वक उन पुस्तकों, उपन्यासों और मासिक-पत्रों का पढ़ना छोड़ देना चाहिए जिनके पढ़ने से आपकी कुवासनाओं को उत्तेजना मिले। आप हमेशा उन्हीं पुस्तकों को पढ़िए जिनसे आपके मनुष्यत्व की रक्षा तथा पुष्टि हो। आप को किसी एक अच्छी पुस्तक को अपना आधार और मार्ग-प्रदर्शक बना लेना चाहिए।

सिनेमा और नाटको से दूर ही रहना चाहिए। मनोविनोद तो वह है जिससे हमारे चरित्र का पतन न होकर, उसके द्वारा वह एक अच्छे साँचे में ढल जाता हो। अतः आपको उन्हीं भजन-मंडलियो में जाना चाहिए, जिनके भजनो का भाव और संगीत की ध्वनि आत्मा को ऊपर उठाती हो।

(६) आपको भोजन स्वाद-तृप्ति के लिए नहीं, बल्कि क्षुधा-तृप्ति के लिए करना चाहिए। विलासी पुरुष खाने के लिए जीता है किन्तु संयमी पुरुष जीवित रहने के लिए खाता है। अतः आपको सब तरह के उत्तेजक मसाले, शराब आदि नशीले पदार्थों से, जिन से

कि आदमी के अन्दर उत्तेजना पैदा होती है, परहेज करना चाहिए। और मादक-द्रव्य आदि से भी बिल्कुल बचना चाहिए जिनसे मस्तिष्क पर ऐसा कुप्रभाव पड़ता है कि भले-बुरे के पहचानने की शक्ति नष्ट हो जाती है। आपको अपने भोजन की मात्रा और समय भी निश्चित और नियमित कर लेना चाहिए जब आपको ऐसा मालूम पड़े कि आप विषय-वासनाओं के वशीभूत होते जा रहे हैं तो पृथ्वी पर सर को टेककर भगवान के दरबार मे सहायता के लिए पुकारिए। मेरे लिए तो ऐसे समय पर रामनाम ने अव्यर्थ दवा का काम दिया है। इसके अलावा बाहरी उपचार की आवश्यकता हो तो "कटि स्नान" (Hip. Bath) मुफीद होगा इसकी विधि इस प्रकार है।

ठंढे पानी से भरे हुए टब में, पैरों को तथा कमर से ऊपरी हिस्से को इस प्रकार रक्खे कि वे भीगने न पावें। कमर से नीचे का हिस्सा ही पानी में रहे। इस प्रकार पानी में बैठने से थोड़े समय में आपको यह अनुभव होने लगेगा कि आपके विकार शान्त हो गये हैं। अगर आप कमजोर हैं तब तो आपको पानी में कुछ मिनिट ही बैठना चाहिए जिससे कि कही सर्दी न हो जाय।

(७) प्रति दिन तड़के उठकर खुली हवा में, खूब तेजी के साथ घूमा कीजिए। रात को खाना खाने के बाद, सोने से पूर्व, टहलिए भी।

(८) "जल्दी सोना और जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ और बुद्धिमान बनाता है" यह एक अच्छी कहावत है। रात के नौ बजे सो जाना और सुबह चार बजे उठने का नियम बड़ा अच्छा है। ख़ाली पेट सोना हितकर है। इसलिए आपका शाम

का भोजन, सायंकाल के ६ बजे के बाद नहीं होना चाहिए ।

(९) याद रखिए कि मनुष्य ईश्वर का प्रतिनिधि है । उसका काम है कि वह प्राणी-मात्र की सेवा करे और उसके द्वारा परमात्मा के गौरव तथा प्रेम की झलक संसार को दिखावे। अतः सेवा को ही अपने जीवन का परम सुख बना लीजिए, फिर आपको जीवन में किसी दूसरे आनन्द-साधन की आवश्यकता न रहेगी ।

(Self-Restraint vs Self-Indulgence) — महात्मा गांधी

मदिरा

माध्वीकं पानसं द्राक्षं खार्जूरं ताल मैक्षवं ।
मैरेयं माक्षिकं टाङ्कं मधूकं नारिकेलजम् ।।
मुख्य मन्न विकारोत्थं मद्यानि द्वादशैव च ।। इतिजटाधरः

धातकीरसगुडादि कृता मदिरा गौडी; पुष्पद्रवादि मधुसारमयी मदिरा माध्वी; विविधधान्यजाता मदिरा पैष्ठी; तालादि रसनिर्यासकृता मदिरा सैन्धी हालाच; शालिषाष्टिकपिष्ठादि कृतं मद्यं सुरा स्मृता ।

पर्युषितमल्पमेलनमम्लंवा पिच्छिलं विगन्धमृवा ।
दोषावहमविशेषान्मद्यं हृद्यं विवर्जयेत् ।।
मद्य-प्रयोगं कुर्वन्ति शूद्रादिषु महार्तिषु ।
द्विजैस्त्रिभिस्तु न ग्राह्यं यद्यप्युज्जीवयेन्मृतम् ।।
अन्ये द्वादशधा मद्य-भेदान्याहुर्मनीषिणः ।
उक्तस्यान्तर्भवन्तीति नान्येषां पृथगीरितम् ।।
इति राज-निर्घण्टे मद्यप्रकरणम् ।

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरांपिबेत् ।
तथा सकाये निंदग्धे मुच्यते किल्विषात्ततः ।।
गो-मूत्रमग्निवर्णांवा पिबेदुदकमेववा ।
पयोघृतं वामरणात् गोसकृद्रसमेववा।।— मनुः
सुरापाने कामकृते ज्वलन्तीं तां विनिःक्षिपेत् ।
मुखेपि स विनिर्दग्धो मृतः शुद्धिमवाप्नुयात् ।।—बृहस्पतिः

सुरापानं सकृत्कृत्वा योग्निवर्णा सुरांपिबेत् ।
सपातयेदथात्मानमिह लोके परत्र च ॥—अङ्गिरा
असकृत् ज्ञानतः पीत्वा वारुणीं पतति द्विजः ।
मरणं तस्य निर्दिष्टं प्रायश्चित्तं विधीयते ॥—भविष्ये ।
अगम्यागमने चैव मद्यगोमांसभक्षणे ।
शुद्ध्यै चांद्रायणं कुर्यात् नदी गत्वा समुद्रगाम् ॥
चान्द्रयणे ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
अनडुत्सहितां गांच दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥—पराशरः
अग्रेयं चाप्यपेयंच तथैवास्पृश्यमेवच ।
द्विजातीनामनालोच्यं नित्यं मद्यमितिस्थितम् ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मद्यं नित्यं विवर्जयेत् ।
पीत्वा पतति कर्मभ्यास्त्वसंभाष्यो द्विजोत्तमः ॥
भक्षयित्वाप्यभक्ष्याणि पीत्वा पेयान्यपि द्विजः ।
नाधिकारी भवेत्तावद् यावत्तन्नजहात्यधः ॥
तस्मात्परिहरेन्नित्यमभक्ष्याणि प्रयत्नतः ।
अपेयानिच विप्रो वै पीत्वा तद्याति रौरवम् ॥

श्री कूर्म पुराण उपविभाग अध्याय १६

यस्तु भागवतो भूत्वा कामरागेण मोहितः ।
दीक्षितो पिबते मद्यं प्रायश्चित्त न विद्यते ॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुन्धरे ।
अग्निवर्णां सुरां पीत्वा तेन मुच्येत किल्विषात् ॥

वराह पुराण ।

अगम्यागमनं कृत्वा मद्यगोमांस भक्षणम् ।
शुध्यै चान्द्रायाणद् विप्रः प्राजापत्येन भूमिपः ।

वैश्यः सान्तपनाच्छूद्रः पंचाहोभिर्विशुध्यति ॥

गरुड़ पुराण अध्याय १२

सुरापानाद् वंचनां प्राप्य विद्वान्, संज्ञानाशं प्राप्य चैवाति घोरम् ।
दृष्ट्वा कचंचापि तथाभिरूपं, पीतं तथा सुरया मोहितेन ॥
समन्यु रुत्थाय महानुभावः, तदोशना विप्रहितं चिकीर्षुः ।
काव्यः स्वयं वाक्यमिदं जगाद, सुरापानं प्रति वै जातशङ्कः ॥
योब्राह्मणोऽद्य प्रभृतीह कश्चित, मोहात् सुरां पास्यति मन्दबुद्धिः ।
अपेतधर्मा ब्रह्महा चैव सस्यात्, अस्मिल्लोके गर्हितस्यात् परे च ॥
मयाचेमां विप्र धर्मोक्तसीमां, मर्यादां वै स्थापितां सर्वलोके ।
सन्तो विप्राः शुश्रुवांसो गुरूणाम्, देवालोकाश्चोपशृण्वन्तु सर्वे ॥

महाभारत आदि पर्व अध्याय ७९

कितवान् कुशीलवान् क्रूरान् पाषाणाऽस्थांश्चमानवान् । विकर्मस्था-न्छौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत पुरात् ॥२२५॥ एते राष्ट्रे वर्तमाना राज्ञः प्रच्छन्न–तस्कराः । विकर्मक्रियया नित्यं बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः ॥२२६॥

मनुस्मृति ९

ब्रह्महाच सुरापश्च स्तेयोच गुरुतल्पगः । एते सर्वे पृथग्ज्ञेयाः महापातकिनो नराः ॥ चतुर्णामपि चैतेषा प्रायश्चित्तमकुर्वताम् । शारीरं धन-संयुक्तं दण्ड-धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥ गुरु-तल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः । स्तेये चश्वपदं कार्यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान् ॥

असंभोज्या असंयोज्या असंपाठविवाहिनः । चरेयुः पृथिवी दीनाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ ज्ञाति सम्बन्धिनस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः । निर्दया निर्नमस्कारा स्तन्मनो रनु शासनम् ॥

मनुस्मृति ९-२३५-२३९

सुरां वै 'मलमन्नानां पाप्माच मलमुच्यते। तस्माद् ब्राह्मण-राजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥ गौड़ी पैष्टीच माध्वीच विज्ञेया त्रिविधा सुरा। यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥ यक्ष-रक्षः पिशाचान्नं मद्यंमासं सुरासवम्। तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवा-नामश्नेताहविः ॥ यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत्। तस्य व्यपैति ब्राह्मत्वं शूद्रत्वं च सगच्छति ॥

११ अध्याय मनुस्मृतिः (९१-९७)

सुरापाने विकलता स्खलनं वमने गतौ। लज्जामानच्युतिः प्रेमाधिक्यं रक्ताक्षता भ्रमः ॥

मदात्ययः मद्यपानादिजन्य रोगविशेषः इति राज निर्घण्टः अथ मदात्ययादीनां निदानान्याहः—

विषस्य ये गुणा दृष्टाः सन्निपातप्रकोपनाः।
त एव मद्ये दृश्यन्ते विषे तु बलवत्तराः ॥

निभक्तमेकान्तत एव मद्यं निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम्। उत्पादयेत् कष्टतमान् विकारान् उत्पादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन। व्यायाम भाराध्वपरिक्षतेन ॥ वेगावरोधाभिहतेन चापि। अत्यम्ल रुक्षावततो दरेण, साजीर्ण भुक्तेन तथा बलेन। उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं, करोति मद्यं विविधान्विकारान्।

पान विकार विवृण्वन्नाह-शरीरदुःखं बलवत् प्रमोहो हृदयव्यथा। अरुचिः प्रततं तृष्णाज्वरः शीतोष्ण लक्षणम्। शिरः पार्श्वास्थि-संधीनां वेदना विक्षते यथा ॥ जायतेति बलात् जृम्भास्फुरणं वेपनं श्रमः। उरोविबन्धः कासश्च श्वासो हिक्काप्रजागरः ॥ शरीर-कम्पः कर्णाक्षिमुखरोगस्त्रिकग्रहः। छर्दिविड् भेदाबुत् क्लेशो वात-

पित्तकफात्मकः ॥ भ्रमः प्रलापो रूपाणाम् असतांचैव दर्शनम् । तृणभस्मलतापर्णपांसुभिश्चावपूरितम् ॥ प्रधर्षणं विहंगैश्च भ्रान्तं चेताः समन्यते । व्याकुलानामशस्तानां स्वप्नानाम् दर्शनानिच ॥ मदात्ययस्य रूपाणि सर्वाण्यैतानि लक्षयेत् ।

ततश्च वातपित्तकफप्रधानमदात्ययानां विकारान् वर्णयित्वा सान्निपातिकस्य मदात्ययस्य निदानं लक्षणं चाहः—

"श्लेष्मोच्छ्रयोङ्ग गुरुता विरसास्यताच, विण्मूत्रसक्तिरथ तन्द्रिररोचकश्चः । लिङ्गं परस्यतु मदस्य वदन्ति तज्ञाः, तृष्णां-रुजा शिरसि सन्धिषु चापि भेदः ॥"

ततः पानाजीर्णमाह—

"आध्मान मुग्रमथवोद्गिरणं विदाहः ।
पाने स्वजीर्णमुपगच्छति लक्षणानि ॥"

पुनः पान विभ्रममाह—

"हृद्गात्रतोदक फसंस्रवकण्ठधूम, मूर्च्छावमीज्वर शिरो रुजन प्रदेहाः । द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु, तं पानविभ्रम मुषन्त्यखिलेषु धीराः ॥"

कण्ठधूमः कण्ठाध्दूम—निर्गम इव ।

असाध्यानां मदात्यया दीनांलक्षणान्याहः—

दीनोत्तरोष्ठमतिशीत ममन्ददाहं, तैलप्रभास्यमतिपान हतं त्यजेच्च । जिव्होष्ठदन्तमसितन्त्वथवापिनीलं, पीतेच यस्य नयने रुधिर-प्रभेच ॥ हिक्का ज्वरो वमथु वेपथु पार्श्व शूलाः, कासम्भ्र-मावमि च पानहतं त्यजेत्तम् ॥

ततो गुरु पुराणे १६० अध्याये

हाला हलाहलसमं भजते त्रियोगात्, सेव्यं नशिष्यमनुजैः कथितं मुनीन्द्रैः । तृष्णावमिः श्वसनमोहनदाहतृष्णा, संजायतेऽतिसरणं विकलेन्द्रियत्वम् ॥

ये नित्य सेवनाद्दुष्टा मद्यस्य मनुजा भृशम् ।
विषमाहार सदृशी सुरामोहनकारिणी ॥

[४]

तमाखू

भ्रातः कस्त्वं ? तमाखु र्गमनमिहकुतो ? वारिधेः पूर्वपारात्,

कस्यत्वं दण्डधारी ? न हि तव विदितं, श्रीकलेरेव राज्ञः ।

चातुर्वर्ण्यं विधात्रा विविधविरचितं पावनं धर्महेतो,

रेकी कर्तुं बलात्तन्निखिल जगति रे शासनादागतोस्मि ।

सुभाषितकार कहते हैं—

न स्वादु नौपधमिदं नचवा सुगन्धि

नोक्षिप्रियं किमपि शुष्क-तमाखु-चूर्णम् ॥

किंचाक्षि रोगजनकं च तदस्य भोगे ।

बीजं नृणां नहि नहि व्यसनं विनान्यत् ॥१॥

[५]

क्या सोम शराब है ?

जेनाइड रागोजिन, ज्यूलियल एगलिन और वॅट आदि कितने ही पश्चिमी विद्वान सोमरस को शराब समझते आये हैं। वॅट का कथन है कि सोम और कुछ नही अफग़ानिस्तान के अंगूरों का रस-मात्र है। मिस्टर हिलेब्रण्ट का कथन है कि सोम के जो गुण-धर्म बताये गये हैं वे न तो 'हॉप' (एक कडुवी वनस्पति जिसका शराब बनाने में उपयोग होता है) और न अंगूर मे पाये जाते हैं। पर मालूम होता है कि इन सभी विद्वानो ने वेदों में वर्णित उसकी बनाने की विधि तथा उसमे डाली जानेवाली चीजो पर ध्यान नही दिया है। साथ ही जहाँ सोम को पवित्र और अमृत के समान बताया है तहाँ मद्यपान को सप्त महापातकों मे गिनाया है।

"शुचिः पावक उच्यते सोमः" (ऋ० वे० ९.२४.७) सोमरस पवित्र है और मनुष्य को शुद्ध कर देता है। आगे चलकर कहा है *"दिवः पीयूषं पूर्व्यम्"* (ऋ० वे० ९. ११०-८.) सोम पुरातन स्वर्गीय अमृत है। अन्यत्र एक स्तोत्र में कहा है— *ये ब्राह्मणा त्रिसुपर्ण पठन्ति ते सोमं प्राप्नुवन्ति, आसहस्रात्पंक्तिं पुनन्ति* अर्थात् जो ब्राह्मण त्रिसुपर्ण नामक स्तोत्र का पठन करते हैं वे सोमरस को प्राप्त करते है। और अपने साथ-साथ सहस्रों ब्राह्मणों की पंक्ति को शुद्ध कर देते है (यह स्तोत्र

भोजन के समय बोला जाता है)। इस तरह वेदों में कई स्थानों पर सोम की प्रशंसा, बनाने की विधि आदि का उल्लेख पाया जाता है।

वास्तव मे सोम एक वनस्पति का नाम है। "प्रिय स्तोत्रो वनस्पतिः" "नित्य स्तोत्रो वनस्पति" इसका पौदा खास कर आर्यावर्त में ही पैदा होता था। परन्तु आजकल वह कही देखने में नहीं आता। सम्भवतः या तो हम लोग उसकी पहचान भूल गये हैं या वह किसी अज्ञात स्थान में होगा। हिमालय की घाटी और सुशोम तथा आर्जिकीय (सिंधु) नदी के तीरो पर इसका उत्पत्ति-स्थान ऋग्वेद मे वर्णित है। शर्यनावत् सरोवर पर भी इसके पाये जाने का उल्लेख है।

यह मुंजवान् नामक पर्वत पर भी (गिरे हिमवतः पृष्ठे मुंजवान् नाम पर्वतः) पाया जाता था। इसलिए सोम को कहीं-कहीं मौजवत भी कहा गया है। अथर्ववेद में कहा है 'एतुदेव-त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि। सकुष्ठो विश्वभेषजः। साकं सोमेन तिष्ठति। अर्थात् सोम कुष्ठ नामक वनस्पति के साथ उगता है। सोम की पैदायश के स्थान के विषय में तो ज़रा भी मत-भेद नही है। डॉ० मूर, रागोजिन, प्रोफेसर मॅकडोनेल तथा लोकमान्य तिलक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि सोमरस इसी वनस्पति का रस है। सोमः पवते। (पात्रेषु क्षरति)

सोम रस यूरोप की भाषाओं में नहीं पाया जाता। उसका तत्सम वा तद्भव शब्द भी नहीं है। हाँ, ईरानी साहित्य में ज़रूर 'होम' नामक एक शब्द पाया जाता है। वह भी एक पवित्र पेय था। कई विद्वान् इसीको सोम कहते है। धार्मिक

मत-भेद के कारण जब आर्यों के एक दल ने अपना नया उपनिवेश (ईरान मे) स्थापित किया तो वहाँ उन्हे यह सोम नही मिलता था। तब उन्होने उसी देश मे पैदा होनेवाले एक पौदे का नाम सोम रख दिया और उसी को सोम कहकर पीने लग गये। (डा० मार्टिन हॉग के Sacred Language, Writings and Religion of the Parsees पृ० २२० १८६२ के संस्करण और डॉ० विंडिस्किमन के Dissertation on the Soma Worship नामक प्रबन्धों को देखिए)

ऋग्वेद में सोम के जो गुण-धर्म बताये हैं उनमे और शराब के गुण-धर्मों में जमीन-आस्मान का अंतर है। उतना ही अंतर है जितना सूर्य तथा अंधकार के बीच मे। जहॉ सोम बल, वीर्य, बुद्धि, प्रतिभा को बढ़ाता है तहॉ शराब मनुष्य के तमाम अच्छे गुणो और शक्ति को नष्ट करती है।

ऋग्वेद में सोमरस बनाने की विधि का स्थान-स्थान पर जो वर्णन आया है उसका सार यो है:—

सोम के डंठलो को इकट्ठा करके उन्हे दो पत्थरो के बीच पीसा जाता था। डंठलों से अधिक रस प्राप्त करने के लिए उन-पर कुछ पानी भी छिड़क दिया जाता था। (अद्भिः सोम पपृचानस्य) दोनों हाथो से उसे निचोड़-निचोड़ कर भेड़ की ऊन के बने कपड़े से वह रस छान लिया जाता था। फिर उस पानी के अतिरिक्त, जो कि उसपर पहले छिड़का गया था, इस रस मे दूध, दही, घी, जौ का आटा और शहद मिलाया जाता था। तब कहीं वह यज्ञ के लिए तैयार समझा जाता था। यज्ञ-भाग के अवसर पर जब सोम बनता तो दिन में तीन बार वह इस तरह तैयार

किया जाता था।

पाठक देख सकते है कि कहाँ महीनों और बरसों की सड़ी-गली शराब और कहाँ यह दिन मे तीन बार शुद्ध सात्विक चीजों से बननेवाला सोमरस।

वेदो में सोम के तीन प्रकार ("त्र्याशिरः") बताये गये हैं जिसमें सिर्फ दूध डाला जाता वह "गवाशिरः" दही डाला जाता वह "दध्याशिरः" और जौ का आटा डाला जाता वह "यवाशिरः" कहा जाता। शुद्ध सोम जिसमें उपयुक्त सभी चीजे होती अत्यंत मधुर, स्वादु, आनन्दप्रद, सुगंधित किन्तु तीव्र तथा कुछ मादक भी होता था। ऋग्वेद मे उसके गुण-धर्म यो वर्णित हैं:—

(१) स्वादुष्किलायं मधुमानुतायं
(२) तीव्रः किलायं रसवानुतायं।—ऋ. वे. ६-४७-१
(३) अयं स्वादुरिह मदिष्ट आस „ ६-४७-२
(४) सहस्रधारः सुरभिः(सोमः) „ ९-९७-१९
सुरभिऽतरः (अत्यन्त सुगन्धिः सोमः) „ ९-१०७-२

श्री पावगी की Some juice is not Liquor नामक पुस्तिका से संकलित।

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर के प्रकाशन

३२—गंगा गोविन्दसिंह ॥=)
(अप्राप्य)
३३—श्रीरामचरित्र १।)
३४—आश्रम-हरिणी ।)
३५—हिन्दी-मराठी-कोष २)
३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)
३७—महान् मातृत्व की ओर— ।॥=)
३८—शिवाजी की योग्यता ।=)
(अप्राप्य)
३९—तरंगित हृदय ,, ॥)
४०—नरमेध १॥)
४१—दुखी दुनिया ॥)
४२—ज़िन्दा लाश ॥)
४३—आत्म-कथा (गांधीजी)
दो खण्ड सजिल्द १॥)
४४—जब अंग्रेज़ आये
(ज़ब्त) १।=)
४५—जीवन-विकास
अजिल्द १।) सजिल्द १॥)
४६—किसानों का बिगुल =)
(ज़ब्त)
४७—फाँसी ! ॥)
४८—अनासक्तियोग तथा
गीताबोध (श्लोक-सहित) ।=)
अनासक्तियोग =)
गीताबोध— -)॥
४९—स्वर्ण-विहान (नाटिका)
(ज़ब्त) ।=)
५०—मराठों का उत्थान
और पतन २॥)
५१—भाई के पत्र १॥)
सजिल्द २)
५२—स्वगत— ।=)
५३—युग-धर्म (ज़ब्त) १=)
५४—स्त्री-समस्या १॥)
सजिल्द २)
५५—विदेशी कपड़े का
मुक़ाबला ॥=)
५६—चित्रपट ।=)
५७—राष्ट्रवाणी ॥=)
५८—इंग्लैण्ड में महात्माजी १)
५९—रोटी का सवाल १)
६०—दैवी-सम्पद् ।=)
६१—जीवन-सूत्र ॥।)
६२—हमारा कलंक ॥=)
६३—बुद्बुद ॥)
६४—संघर्ष या सहयोग? १॥)
६५—गांधी-विचार-दोहन ॥।)
६६—एशिया की क्रान्ति १॥।)

अध्ययन किन पुस्तकों का ?
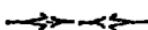
जीवन में अध्ययन का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। इसलिए अपने अध्ययन के लिए पुस्तकें चुनने में आप को सावधानी से काम लेना चाहिए।

जो पुस्तकें आर्थिक लाभ की दृष्टि से नहीं वरन् मानव-जाति के उत्थान में सहायक होने की दृष्टि से निकाली जाती हैं, मनुष्य को सच्चा रास्ता दिखाने में वे ही अधिक सहायक होती है।

अतः आप अपने जीवन को गढ़ने-वाली पुस्तकें चुनने में सावधानी से काम लीजिए। आपका भविष्य इस पर निर्भर रहता है।

इसी लक्ष्य को सामने रख कर 'सस्ता-साहित्य-मण्डल' ने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। आप उन्हें पढ़िए। उनका मनन कीजिए।

सूचीपत्र मुफ्त मँगाइए

Only Cover Printed at The Fine Art Printing Press